

प्रकाशक  
भातंड, उपाध्याय, मंत्री  
संस्कृत साहित्य मंडल, नई दिल्ली

---

---

तीसरी बार

नया संस्करण १९५०

मूल्य

अजिल्द . तीन रुपये

सजिल्द . साठे तीन रुपये

---

---

मुद्रक—  
कृष्णप्रसाद दत्त  
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस  
इलाहाबाद

## प्रकाशककी ओरसे

भारतको गांधीजीकी अनेक देनोमें से 'सत्याग्रह' उनकी एक विशेष देन है। इस शब्दका आविष्कार दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंके मान-मर्यादा और मानवोचित अधिकारोके लिए किये गये सभामके दिनोंमें हुआ था और वहीपर सबसे पहले राजनीतिके क्षेत्रमें बड़े पैमानेपर इसका प्रयोग किया गया था।

दक्षिण अफ्रीकाकी इस लड़ाईको हुए यद्यपि एक युग बीत चुका है, तथापि उसके अनुभव, उसकी शिक्षा, उसके निष्कर्ष आज भी ताजे हैं। इसी पुस्तकके द्वितीय खण्डकी प्रस्तावनामें गांधीजीने लिखा है, "मैं इस बातको अक्षरशः सत्य मानता हूँ कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने सपूर्ण जगतकी समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है। अहिंसाके साक्षिष्यमें वैर-भाव टिक नहीं सकता, इस वचनको भी मैं अक्षरशः सत्य मानता हूँ। कष्ट सहन करनेवालोके लिए कुछ भी अवाक्य नहीं होता, इस सूत्रका मैं उपासक हूँ। . "जीवनकी कठोरतम साधनासे उद्भूत ये मूल-मंत्र इतने वर्षों बाद आज भी ताजे हैं और हमेशा ताजे रहेंगे।

दक्षिण अफ्रीकासे आनेके बाद भारतमें गांधीजीने जो लड़ाइयाँ लड़ी, उन्हें गहराईसे समझनेके लिए दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास जानना आवश्यक है। कारण कि जिन मूलभूत सिद्धांतोपर बादकी लड़ाइया लड़ी गई, उनका मूलसूत्र दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमें मिलता है।

पुस्तकका अनुवाद मूल गुजरातीसे श्रीकालिकाप्रसादजीने किया है और अंग्रेजी-संस्करणके आधारपर बहुतसे परिवर्द्धन करके उसे यथा-सम्भव पूर्ण बनानेका प्रयत्न किया गया है ।

—मन्त्री

## विषय-सूची

### प्रथम खण्ड

१-२४०

प्रास्ताविक	३
१. भूगोल	६
२. इतिहास	१५
३. दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंका आगमन	३२
४. मुसीबतोंका सिंहावलोकन—१	३८
५. मुसीबतोंका सिंहावलोकन—२	४५
६. भारतीयोंने क्या किया ?—१	५३
७. भारतीयोंने क्या किया ?—२	६६
८. भारतीयोंने क्या किया ?—३	८६
९. बोअर-युद्ध	८९
१०. लड़ाईका बाद	१०४
११. भजनमसीका बदला—खूनी कानून	१२५
१२. सत्याग्रहका जन्म	१३३
१३. 'सत्याग्रह' बनाम 'पैसिव रेजिस्टेंस'	१४३
१४. विलायतको शिष्ट-मण्डल	१५०
१५. वक्तराजनीति अथवा क्षणिक हर्ष	१६०
१६. अहमद मुहम्मद काछलिया	१६४
१७. पहली फूट	१७३
१८. पहला सत्याग्रही कैदी	१७७
१९. 'इंडियन ओपीनियन'	१८३

	पृष्ठ
२०. पकड-धकड	१८५
२१ पहला समझौता	१९७
२२ समझौतेका विरोध • मुझपर हमला	२०१
२३ गोरे सहायक	२२१
२४ और भीतरी कठिनाइया	२३४

## द्वितीय खंड

२४१-४१८

प्रस्तावना	२४३
१ जनरल स्मट्सका विस्वासघात (?)	२४७
२ युद्धकी पुनरावृत्ति	२५८
३. ऐच्छिक परवानोकी होली	२६३
४. कौमपर नया सवाल उठानेका आरोप	३६७
५ सोरावजी शापुरजी अडाजनिया	२७२
६ सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लडाईमें शामिल होना	२७९
७ देशनिकाला	२८५
८ फिर शिष्ट-मण्डल	२९२
९ टाल्स्टाय फार्म—१	२९८
१०. टाल्स्टाय फार्म—२	३०१
११. टाल्स्टाय फार्म—३	३१०
१२. गोखलेकी यात्रा—१	३२९
१३ गोखलेकी यात्रा—२	३३९
१४ वचन-भंग	३४३
१५  ब्याह ब्याह नहीं रहा	३४९
१६. स्त्रिया जेलमें	३५६
१७. मजदूरोकी धारा	३६०

	पृष्ठ
१८ खानमालिकोंके पास और उसके बाद	३६६
१९ ट्रांसवालमें प्रवेश—१	३७३
२०. ट्रांसवालमें प्रवेश—२	३७७
२१ सभी कैद	३८३
२२. कसौटी	३९१
२३ अतका आरम्भ	३९८
२४ प्राथमिक समझौता	४०६
२५ पत्र-व्यवहार	४०९
२६ थुडका अत	४१४
उपसंहार	४१७



# दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

प्रथम खण्ड





## प्रास्ताविक

दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी सत्याग्रहकी लड़ाई आठ बरस चली। इस सभामके लिए ही 'सत्याग्रह' शब्दकी खोज की गई और प्रयोग किया गया। बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि इस सभामका इतिहास लिखू। उसका कितना ही अण तो केवल मैं ही लिख सकता हूँ। कौन-सी बात किस हेतुसे की गई, इसका पता तो गूढ़का संचालन करनेवालेको ही हो सकता है। राजनीतिक क्षेत्रमें बड़े पैमानेपर यह पहला ही प्रयोग था। इसलिए इस सत्याग्रहके सिद्धांतका विकास कैसे हुआ इसकी जानकारी लोगोंको हो जाना हर हालतमें जरूरी समझा जायगा।

पर इस वक्त तो हिंदुस्तानमें सत्याग्रहके लिए विद्याल क्षेत्र हैं। वीरम-गाम<sup>१</sup> की चुगीकी एक छोटी-सी लड़ाईसे इसका अनिवार्य क्रम आरम्भ हुआ है।

वीरमगामकी चुगीकी लड़ाईमें निमित्त था बढवाण<sup>२</sup> का साधुचरित परोपकारी दरजी भाई मोतीलाल। १९१५में मैं विलायतसे वापस आकर काठियावाड जा रहा था। तीसरे दर्जेमें सवार था। बढवाण स्टेशनपर यह दरजी अपनी छोटी-सी टोली लेकर आया था। वीरम-गामकी कथा थोड़ी-सी सुनाकर उसने मुझसे कहा—“इस कष्टको काटिए। आपने काठियावाडमें जन्म लिया है, इसे सार्थक कीजिए।” उसकी आत्मीय दृढ़ता और करुणा दोनों थी।

मैंने पूछा, “तुम जेल जानेको तैयार हो ?” .

तुरत जवाब मिला—“हम फासी चढनेतकके लिए तैयार हैं।”

<sup>१</sup> वीरमगाम अहमदाबादसे ४० मील पश्चिममें एक कसबा है। बढवाण वीरमगामसे ४० मील पश्चिममें पड़ता है।

मै—“मेरे लिए तो जेल ही काफी है; पर देखना, विश्वासघात न हो।”

मोतीलाल—“यह तो काम पडनेपर मालूम होगा।”

मैं राजकोट पहुँचा। वहाँ अधिक व्यूरे मालूम किये और सरकारके साथ लिखा-पढी शुरू कर दी। वगमरा<sup>१</sup> आदिके भाषणमें मैंने लोगोको सलाह दी कि वीरमगामकी चुगीके मामलेमें सत्याग्रह करना पडे तो वे उसके लिए तैयार रहे। सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने ये भाषण उसके दफ्तरमें पहुँचाए। पहुँचानेवालेने सरकारके साथ अनजानमें जनताकी भी सेवा की। अतमें लार्ड चेम्सफर्डके साथ इस विषयमें बातचीत हुई और उन्होंने दिए हुए बचनका पालन किया। औरीने भी कोशिश की, यह मैं जानता हूँ। पर मेरी पक्की राय है कि इस मामलेको लेकर सत्याग्रह किये जानेकी सभावना थी, इसीसे यह चुगी रह गई।

वीरमगामके बाद गिरमिटके कानूनसे लडना पडा। इस कानूनको रद्द करानेके लिए भरपूर कोशिश की गई थी। इस लडाईको जोर पहुँचानेके लिए सार्वजनिक आदोलन भी अच्छा-खासा हुआ था। वम्बईमें हुई सभामें गिरमिट यानी शर्तबद कूलीप्रथाको रद्द करानेके लिए १९१७ की ३१ वीं जुलाईकी तारीख तै की गई थी। यह तिथि कैसे नियत हुई इसका इतिहास यहाँ नहीं दिया जा सकता। इस आदोलनके अतर्गत वाइसरायके पास पहले बहनोंका प्रतिनिधिमंडल गया। इसमें खास कोशिश किसकी थी यह लिखे बिना नहीं रहा जा सकता। वह थी चिरमरणीय बहन जाइजी पेटिटकी। इस लडाईमें केवल सत्याग्रहकी तैयारीसे ही हमारी विजय हो गई। पर उसके विषयमें सार्वजनिक आदोलनकी आवश्यकता थी, यह अतर याद रखने लायक है। गिरमिटको रद्द कराना वीरमगामकी चुगी उठवानेसे ज्यादा बजनदार मामला था।

<sup>१</sup>काठियावाड़का एक स्थान।

लाहं चेम्सफर्डने रीलट कानूनके बाद गलतियां करनेमें कसर नहीं की । फिर भी आज मेरा यही खयाल है कि वे चतुर और समझदार वाइसराय थे । सिविल सर्विसके स्थायी अधिकारियोंके पजेसे अंततक कौन वाइसराय बच सकता है ?

तीसरी लड़ाई थी चंपारनकी । इसका व्यौरेवार इतिहास राजेन्द्रबाबूने लिखा है । इसमें सत्याग्रह करना पड़ा, केवल तैयारी काफी नहीं हुई; पर विपक्षका स्वार्थ कितना बढ़ा था ! चंपारनके लोगोंने कितनी शांति रखी, यह बात लिखने लायक है । सभी नेताओंने मन, बचन और कायासे पूरी तरह शांति रखी, इसका साली में स्वयं हूँ । तभी तो यह सदियोंकी बुराई छ महीनेमें नामोप हो गई ।

चौथी लड़ाई थी अहमदाबादके मिलमजदूरोंकी । उसका इतिहास गुजरात न जाने तो दूसरा कौन जान सकता है । मजदूरोंने कैसी शांति रखी ! उनके नेताओंके बारेमें क्या मुझे कुछ कहनेकी जरूरत है ? पर यह सब होते हुए भी इस विजयको मैं दोषपूर्ण मानता हूँ । इसलिए कि मजदूरोंकी प्रतिज्ञाका पालन करानेके लिए मैंने जो उपवास किया वह मालिकोंपर दबाव-सा हो गया । उनके और मेरे बीच जो स्नेह था वह उपवासका असर उनपर डाले बिना रह ही नहीं सकता था । फिर भी इस सभ्यका सार तो स्पष्ट ही है । मजदूर शांतिके साथ अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहते तो उनकी जीत होती ही और वे मालिकोंका मन हर लेते । वे मालिकोंका दिल नहीं जीत सके, क्योंकि वे मन-बचन-कर्मसे निर्दोष—शांत रहे, यह नहीं कहा जा सकता । वे शरीरसे शांत रहे, यह भी बहुत माना जायगा ।

पाचवी लड़ाई खेड़ामें लड़ी गई, इसमें सभी नेताओंने शुद्ध सत्यका पालन किया, यह मैं नहीं कह सकता । हा, शांति अवश्य बनाए रखी गई । किसानोंकी शांति कुछ मजदूरोंकी तरह केवल कायिक ही थी । इससे महबूब आबरू सलामत रही । जनतामें जबर्दस्त जागृति फैली । पर खेड़ाने

शांतिका पूरा पाठ नहीं पढा था । मजदूर शांतिका शुद्ध रूप नहीं समझ पाए थे । इससे रौलट ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रह करते समय लोगोंको कष्ट सहना पडा । मुझे अपनी हिमालय-जैसी भूल कबूल करनी पडी और उपवास करना-कराना पडा ।

छठी लडाईं रौलट कानूनके विरुद्ध हुई । उसमें हमारे भीतरके दोष बाहर आ गए, पर असल बुनियाद पक्की थी । मैंने अपनी मव गलतिया कबूल की, प्रायश्चित्त किया । रौलट कानूनपर अमल तो कमी हो न सका और अतमें यह काला कानून रद्द भी हो गया । इस सभामसे हमें बहुत बटा सवक मिला ।

हमारी मातवी लडाईं थी खिलाफत, पंजाब और स्वराज्यकी । वह अभी चल रही है । उममें एक भी सत्याग्रही अविचलित रहा तो हमारी विजय निश्चित है, यह मेरा अटल विश्वास है ।

पर जो युद्ध चल रहा है वह महाभारत है । उसकी तैयारी बिना इरादेके किस तरह हो गई इसका क्रम मैंने ऊपर दे दिया है । वीरमगामका चुगीकी लडाईंके समय क्या खबर थी कि मुझे और भी लडाइयां लडनी होंगी । वीरमगामका भी दक्षिण अफ्रीकामें मुझे कहा पता था ? सत्याग्रहकी यही तो खूबी है । वह खुद हमारे पास आ जाता है । हमें उसे बूझने नहीं जाना पडता । यह गुण उसके सिद्धातमें ही निहित है । जिसमें कुछ छिपा हुआ नहीं है, जिसमें कोई चालाकी नहीं करनी होती, जिसमें असत्यके लिए तां स्थान ही नहीं, ऐसा धर्मयुद्ध अनायास ही अपने पास आता है और धर्ममें आस्था रखनेवाला जन उसके स्वागतके लिए सदा तैयार रहता है । जिसकी रचना पहलेसे करनी पडे वह धर्मयुद्ध नहीं हो सकता । धर्मयुद्धकी रचना करनेवाला और मंचालक तो स्वय ईश्वर है । यह युद्ध ईश्वरके ही नामपर चल सकता है और जब सत्याग्रहीकी सारी बुनियाद ढीली हो जाती है, जब वह नितात निर्बल हो जाता है, जब उसके चारो ओर अंधकार छा जाता है, तभी ईश्वर उसकी मददको

पहुँचता है। मनुष्य जब अपने आपको रजकंगसे भी छोटा मानता है तभी ईश्वर उसकी सहायता करता है। राम निर्वलको ही बल देते हैं।

इस सत्यका अनुभव तो अभी हमें होना है। इसलिए मैं मानता हूँ कि दक्षिण अफ्रीकाका इतिहास हमारे लिए सहायकरूप है।

जो-जो अनुभव वर्तमान सभामें अबतक हुए हैं, पाठक देखेंगे कि उससे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण अफ्रीकामें भी हुए थे। दक्षिण अफ्रीकाका इतिहास हमें यह भी बतायेगा कि अभीतक हमारे सभामें नैराश्र्यका एक भी कारण नहीं है। विजयके लिए वस इतना ही जरूरी है कि हम अपनी योजनापर दृढ़ताके साथ आरूढ़ रहे।

यह प्रस्तावना मैं जुहू<sup>१</sup> में बैठा लिख रहा हूँ। इतिहासके ३० प्रकरण यरवबा जेलमें लिखे थे। मैं बोलता गया और भाई इन्दुलाल यात्रिक लिखते गए। बाकीके प्रकरण पीछे लिखनेकी सोचता हूँ। जेलमें मेरे पास आधारके लिए पुस्तके न थी। यहाँ भी उन्हें इकट्ठा करनेकी इच्छा नहीं है। ज्योरेवार इतिहास लिखनेकी मुझे फुरसत नहीं है। उत्साह या इच्छा भी नहीं है। मेरा उद्देश्य इतना ही है कि हमारे वर्तमान सभामें इससे मदद मिले और कभी किसी फुरसतवाले साहित्यविलासीके हाथों यह इतिहास विस्तारपूर्वक लिखा जाय तो उसके काममें मेरा यह प्रयत्न पतवार—पथप्रदर्शक—रूप हो सके। यद्यपि यह बिना आधारके लिखी हुई चीज है, फिर भी कोई यह न समझे कि इसमें एक भी ऐसी बात है जो सही नहीं है या एक अगह भी अतिशयोक्ति की गई है, यह मेरी प्रार्थना है।

जुहू, बुधवार,  
फाल्गुन बदी १३, स० १९८०,  
२ अप्रैल, १९२४

—मोहनदास करमचंद गांधी

<sup>१</sup> बम्बईका उपनगर।



# दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

## प्रथम खण्ड

: १ :

### भूगोल

अफ्रीका दुनियाके बड़े-से-बड़े भूखंडोमेसे एक है। हिंदुस्तान भी एक भूखंडके बराबर विस्तारवाला देश माना जाता है, पर महज रकबेकी दृष्टिसे देखे तो अफ्रीकामें चार या पांच हिंदुस्तान समा जाएंगे। दक्षिण अफ्रीका अफ्रीकाका ठेठ दक्षिणी भाग है। हिंदुस्तानकी तरह अफ्रीका भी प्रायद्वीप है। अतः दक्षिण अफ्रीकाका बड़ा हिस्सा समुद्रसे घिरा हुआ है। अफ्रीकाके बारेमें आम खयाल यह है कि वहां ज्यादा-से-ज्यादा गरमी पड़ती है और एक दृष्टिसे यह बात सही भी है। मूमध्यरेखा अफ्रीकाके बीचसे होकर गुजरती है और इस रेखाके आसपासकी गरमीका अंदाजा हिंदुस्तानके रहनेवालोंको नहीं हो सकता। हिंदुस्तानके ठेठ दक्षिणमें जिस गरमीका अनुभव हम करते हैं उससे मूमध्यरेखाके पासकी गरमीका कुछ अंदाजा किया जा सकता है। पर दक्षिण अफ्रीकामें वैसी गरमी बिलकुल नहीं, क्योंकि अफ्रीकाका यह भाग मूमध्यरेखासे बहुत दूर है। उसके बड़े भागकी आव-हवा तो इतनी सुंदर और ऐसी मोतदिल है कि वहां यूरोपकी जातियां सुखसे घर बना सकती हैं। हिंदुस्तानमें बसना उनके लिए नामुमकिन-सा है। इसके सिवा



दक्षिण अफ्रीकामे तिब्बत या काश्मीरके जैसे बहुतसे ऊचे प्रदेश है, फिर भी वे तिब्बत या काश्मीरकी तरह दससे चौदह हजार फुटतककी ऊचाईवाले नहीं है । इससे वहाँकी हवा खुशक और वर्दाश्त होने लायक ठडी रहती है । इसीलिए दक्षिण अफ्रीकाके कितने ही भाग क्षयरोगियोंके लिए अत्युत्तम माने जाते हैं । दक्षिण अफ्रीकाकी स्वर्णपुरी जोहान्सवर्ग ऐसे ही भागोमेसे एक है । जमीनके जिस टुकडेपर जोहान्सवर्ग आवाद है वह आजसे ५० साल पहले विलकुल वीरान और सूखी घासका मैदान था, पर जब वहाँ सोनेकी खानोकी खोज हुई तब वहाँ, जादूके महलकी तरह, मकान-पर-मकान बनने लगे और आज तो वह सुदूर वगलोका विशाल नगर है । वहाँके घनिकोने दक्षिण अफ्रीकाके उपजाऊ भागों और यूरोपसे भी एक-एक पौधेके १५-१५ रुपये देकर पेड़-पौधे मंगाये और लगाए हैं । उसका पिछला इतिहास न जाननेवाले यात्रीको आज यही जान पडेगा कि ये पेड़-पौधे हजारो सालसे वहाँ लग रहे होंगे ।

दक्षिण अफ्रीकाके सभी विभागोका वर्णन मैं यहाँ नहीं करना चाहता । जिन विभागोके साथ हमारे विषयका कुछ सवध है केवल उन्हीका थोडा परिचय दे रहा हूँ । दक्षिण अफ्रीकामे दो हुकूमते हैं—ब्रिटिश और पुर्तगीज । पुर्तगीज हिस्सेको डेलगोआवे कहते हैं, और हिंदुस्तानसे जाते हुए वह दक्षिण अफ्रीकाका पहला बंदरगाह माना जाता है । वहाँसे थोडा दक्षिणकी ओर और बढिये, नीचे उतरिये तो पहला ब्रिटिश राज्य नेटाल आता है । उसका बंदरगाह पोर्ट नेटाल कहलाता है, पर हम उसे डर्वेनके नामसे जानते हैं और दक्षिण अफ्रीकामे भी वह आम तौरसे इसी नामसे ख्यात है । नेटालका यह सबसे बडा नगर है । नेटालकी राजधानीका नाम पीटर मारित्सवर्ग है । वह डर्वेनसे

अदरकी ओर आगे जाते हुए लगभग ६० मीलके फासलेपर पड़ता है। समुद्रकी सतहसे उसकी ऊंचाई अदाजन २ हजार फुट है। डबेनकी आव-हवा कुछ-कुछ वंदईसे मिलती हुई मानी जा सकती है, पर बवईसे वहांकी हवामे कुछ अधिक ठंड अवश्य है। नेटालसे आगे बढ़कर और अंदर जानेपर ट्रांसवाल आता है जिसकी जमीन आज दुनियाको सबसे ज्यादा सोना दे रही है। कुछ वरस पहल वहा हीरेकी खाने भी मिली है, जिसे दुनियाका बड़े-से-बड़ा हीरा निकला है। वह कोहेनूरसे भी बड़ा हीरा रूसके पास है, ऐसा समझा जाता है। उसका नाम खानके मालिकके नामपर रखा गया है और वह क्लीनन हीरा कहलाता है।

पर जोहान्सवर्ग 'स्वर्णपुरी' है और हीरेकी खाने भी उसके पास ही है, फिर भी वह ट्रांसवालकी राजधानी नहीं है। उसकी राजधानी प्रिटोरिया है। यह जोहान्सवर्गसे ३६ मीलके फासलेपर है और वहा खासकरके राजदरवारी आदमियों तथा उनसे संबध रखनेवालोंकी वस्ती है। इससे वहाका वातावरण कुछ शांत माना जाता है। जोहान्सवर्गका वातावरण तो अतिशय अशांत कहा जाता है। जैसे हिंदुस्तानके किसी शांतिभरे गांव या छोटेसे नगरसे कोई वदई जैसे महानगरमे पहुंचे तो वहाके धूम-धड़कके और अशांतिसे घबरा जाता है; प्रिटोरियासे जानेवालेको जोहान्सवर्गका दृश्य भी वैसा ही मालूम होता है। अगर यह कहे कि जोहान्सवर्गके लोग चलते नहो, वल्कि दौडते हैं तो यह अतिशयोक्ति नहीं मानी जायगी। किसीको किसीकी ओर देखने तककी

'क्लीनन हीरेका वजन ३ हजार कैरट है। कोहेनूरका वजन १०० कैरटके और रूसके राजमुकुटके हीरे 'ओर्लफ' का २०० कैरटके लगभग है।

फुरसत नहीं होती और हर एक इसी धुनमें गकं दिखाई देता है कि कैसे कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक पैसा कमा ले। ट्रांसवालको छोड़कर पश्चिमकी ओर और भी अंदर जाइए तो आरेंज फ्री स्टेट अथवा आरेंजियाका उपनिवेश आता है। इसकी राजधानी ब्लूमफोर्टन है। यह अतिगय शांत और छोटा-सा नगर है। आरेंजियामें कोई खान-दान नहीं है। वहांसे रेलपर कुछ घंटेकी यात्रासे ही हम केप कॉलोनीकी सरहदपर पहुंच जाते हैं। केप कॉलोनी दक्षिण अफ्रीकाका सबसे बड़ा उपनिवेश है। उसकी राजधानी और सबसे बड़ा बंदर-गाह केप टाउनके नामसे प्रसिद्ध है। 'केप आव गुड होप' नामका अंतरीप इसी राज्यमें है। गुड होपके मानी हैं शुभागा। वास्को डी गामा जब पुर्तगालसे हिंदुस्तानकी खोजमें निकला तब उसने यही पहुंचकर अपने जहाजका लगर डाला और यही उसे यह आगा वधी कि अब अपनी मुराद जरूर पूरी होगी। इसीसे इस स्थानका नाम 'शुभाशा अंतरीप' रखा।

इन चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेशोंके अतिरिक्त और कई प्रदेश हैं जो ब्रिटिश साम्राज्यके सरक्षणमें हैं और जिनमें उन लोगोंकी वस्ती है जो दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोंके आगमनके पहलेसे इस देशमें रहते थे।

दक्षिण अफ्रीकाका मुख्य धंधा खेती ही माना जायगा। खेतीके लिए यह बहुत ही अच्छा देश है। कितने ही भाग तो अतिशय उपजाऊ और सुहावने हैं। अनाजोंमें सबसे अधिक और आसानीसे उपजनेवाली फसल मकईकी है। मकई दक्षिण अफ्रीकाके हवशी वांशिकोंका मुख्य आहार है। कुछ हिस्सोंमें गेहूँ भी पदा होता है। फलोंके लिए तो दक्षिण अफ्रीका प्रसिद्ध है। नेटालमें बहुत किस्मोंके और बहुत बढ़िया केले, पपीते और अनन्नास पकते हैं और इतनी इफरातसे कि गरीब-से-गरीब आदमीको भी मिल सकें। नेटाल और दूसरे

उपनिवेशोंमें भी नारंगी, संतरा, 'पीच' और एप्रिकाट (जर्दाल) इतने बड़े परिमाणमें पैदा होते हैं कि हजारों आदमी सामान्य श्रमसे देहातमें उन्हें बिना पैसेके पा सकते हैं। केप कॉलोनी तो अंगूर और बड़े वेर का देग है। वहाँ जैसे अंगूर शायद ही और कहीं उपजते हो। मौसममें वे इतने सस्ते हो जाते हैं कि गरीब आदमी भी जी भरकर खा सके। जहाँ हिंदुस्तानी बसते हो वहाँ आम न हों, यह हो नहीं सकता। हिंदुस्तानियोंने आमकी गुठलिया बोई और इसका फल यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीकामें आज आम भी अच्छी मात्रामें उपलब्ध है। उनकी कुछ किस्में तो बेगक बबईके 'हापुस-मायरी' के साथ मुकाबला कर सकती हैं। साग-भाजी भी इस रसीली भूमिमें इफरातसे उपजती हैं और कह सकते हैं कि शीकीन हिंदुस्तानियोंने हिंदुस्तानकी लगभग सभी साग-तरकारिया यहाँ उपजा ली हैं।

मवेशियोंकी तादाद भी यहाँ काफी कही जा सकती है। गाय-बैल हिंदुस्तानके गाय-बैलोसे बड़े डील-डोलवाले और अधिक बलवान होते हैं। गोरक्षाका दावा करनेवाले हिंदुस्तानमें कितने ही गाय-बैलोकने हिंदुस्तानके लोगोंकी तरह ही दुबला-सूखा देखकर मैंने शर्मसे सिर झुकाया है और अनेक बार मेरा दिल उनकी दशा देखकर रोया है। दक्षिण अफ्रीकामें दुबली गाय या दुबला बैल मैंने कहीं देखा हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता, गोकि मैं अपनी आँखें प्रायः खुली रखकर उसके सभी भागोंमें फिरा हूँ। प्रकृतिने अपनी दूसरी देनोंके साथ-साथ इस भूमिको सृष्टि-सौन्दर्यसे संवारनेमें भी कोताही नहीं की है। डबनका दृश्य तो बहुत ही सुंदर माना जाता है; पर केप कॉलोनी उससे भी बढ-चढकर है। केप टाउन नगर, ट्रेबल माउटेन नामक पहाड़की तलहटीमें बसा हुआ है जो न बहुत नीचा है और न बहुत ऊंचा। दक्षिण

अफ्रीकाकी पूजा करनेवाली एक विदुषीने इस पहाड़पर एक कविता लिखी है, जिसमें वह कहती है कि जो अलौकिकता मैंने 'टेबल माउटेन' में अनुभव की है वह मुझे किसी और पर्वतमें नहीं मिली। इसमें अतिशयोक्ति भले ही हो— मैं मानता हूँ कि है—पर इस विदुषी वहनकी एक बात मेरे मनमें बैठ गई है। वह कहती है कि टेबुल माउटेन केप टाउन-निवासियोंके मित्रका काम करता है। यह पर्वत बहुत ऊँचा नहीं है। इससे डरावना नहीं लगता। लोगोंको दूरसे ही उसका पूजन करके सतीष नहीं करना पड़ता, बल्कि वे इस पहाड़पर ही घर बनाकर रहते हैं और बिल्कुल समुद्रके किनारे होनेसे समुद्र सदा अपने स्वच्छ जलसे उसके पाव पखारा और उसका चरणामृत पिया करता है। बच्चे और बूढ़े, स्त्री और पुरुष सब निर्भय होकर लगभग सारे पहाड़पर विचर सकते हैं और हजारों नगरवासियोंके कोलाहलसे सारा पर्वत प्रतिदिन गूँज उठता है। इसके विशाल वृक्ष, सुगंध-भरे और रंग-विरंगे फूल सारे पहाड़को इस तरह सवार देते हैं कि उसकी सुषमा निरखते और उसपर विचरते लोग अघाते ही नहीं।

दक्षिण अफ्रीकामें इतनी बड़ी नदियाँ नहीं हैं जिनकी तुलना हमारी गंगा-जमुनाके साथ की जा सके। थोड़ी नदियाँ हैं, पर वे बहुत छोटी कही जाएगी। इस देशमें बहुतेरे भाग ऐसे हैं जहाँ नदीका पानी पहुँचता ही नहीं। ऊँचे प्रदेशोंमें नहरे भी कहाँसे लाई जाएँ ? और जहाँ समुद्रकी समता करनेवाली नदियाँ न हों वहाँ नहरे कहाँसे हो सकती हैं ? दक्षिण अफ्रीकामें जहाँ-जहाँ प्रकृतिने पानीकी तगी कर रखी है वहाँ पाताल जैसे गहरे कुएँ खोदकर पवनचक्कियों और भापकी कलोंके जरिए इतना पानी खींचा जाता है कि खेतोंको सींच सके। वहाँकी सरकारकी तरफसे खेतीको

भरपूर मदद मिलती है। किसानोंको सलाह देनेके लिए वह खेती के विशेषज्ञों को भेजा करती है। कितने ही स्थानोंमें प्रजाके लाभके लिए सरकार अनेक प्रयोग किया करती है। वह नमूनेके खेत रखती है, लोगोंको मवेशी और बीज मिलनेका सुभीता कर देती है, बहुत थोड़े खर्चसे बहुत गहरे कुए खुदवा देती है और उसकी कीमत किस्तोंमें चुकानेका सुभीता किसानोंके लिए कर देती है। इसी तरह लोहेके कटीले तारोंकी बाड़ भी खेतोंके इर्द-गिर्द लगवा देती है।

दक्षिण अफ्रीका भूमध्यरेखाके दक्षिणमें पड़ता है और हिंदुस्तान उत्तरमें। इससे वहाँका सारा वातावरण हिंदुस्तानियोंको उलटा-सा मालूम होता है। वहाँका ऋतुक्रम भी विपरीत है। जब हमारे यहाँ गरमी होती है तब वहाँ जाड़ेके दिन होते हैं। वर्षाका वहाँ कोड़े पक्का नियम नहीं दिखाई देता। वह चाहे जब हो सकती है। आमतौरपर २० इंचसे अधिक वारिष नहीं होती।

• : २ :

## इतिहास

. अफ्रीकाके भूगोलपर निगाह डालते हुए जिन विभागोंको हम देख गए हैं, पाठक यह न समझ ले कि वे आदिकालसे ही हैं। विलकुल पुराने जमानेमें वहाँ कौनसे लोग बसते थे इसका पक्का निश्चय अभी नहीं हो सका है। यूरोपके लोग जब दक्षिण अफ्रीकामें आवाद हुए उस वक्त वहाँ ह्वर्गी जातिके लोग रहते थे। यह माना जाता है कि अमरीकामें जिन दिनों गुलाबीका चक्र और-औरसे चल रहा था उस वक्त ये ह्वशी वहाँसे भागकर दक्षिण अफ्रीकामें आ गये और

आवाद हुए। उनकी जुदा-जुदा जातिया है, जैसे जुलू, स्वाजी, वसूटो, बेकवाना इत्यादि। इनकी भाषामें भी भेद है। ये हवशी ही दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासी माने जाएंगे। पर दक्षिण अफ्रीका इतना लवा-चौड़ा देश है कि फिलहाल जितने हवशी वहां बसते हैं उनसे बीस-तीस गुनी बड़ी आवादी उसमें सुगमसे समा सकती है। डबनसे केप टाउन रेलके रास्ते लगभग १८०० मीलका सफर है। समुद्रकी राह भी एक हजार मीलसे कमका फासला नहीं है। इन चारों राज्योंका रकबा ४,७३,००० वर्गमील है।

इस विशाल भूखंडमें १९१४ में हवशियोंकी आवादी करीब ५० लाख और गोरोंकी करीब १३ लाखके थी। हवशियोंमें जुलू सबसे ज्यादा कहावर और सुदर कहे जा सकते हैं। हवशियोंके लिए सुदर विशेषणका व्यवहार मने जान-बूझकर किया है। सफेद चमड़े और नुकीली नाकपर हम रूपका आरोप किया करते हैं। इस वहमको क्षणभरके लिए अलग रख दे तो जुलू लोगोंको गढ़नेमें ब्रह्माने कोई कसर रखी है, यह नहीं जान पड़ेगा। स्त्री-पुरुष दोनों ऊंचे कदके होते हैं, छाती अपनी ऊंचाईके अनुपातसे चौड़ी होती है। सारे शरीरकी रंगे सुगठित और खूब मजबूत होती है। इनकी पिंडलिया और भुजाए भी सदा मांससे भरी हुई और गोलाकार दिखाई देती हैं। कोई स्त्री या पुरुष झुककर या कुबड निकालकर चलता हुआ शायद ही कभी दिखाई देता ही। हाँठ अवश्य लंबे और मोटे होते हैं, पर सारे शरीरके आकारको देखते हुए मैं तो उन्हें तनिक भी वेडौल न कहूंगा। आंखें गोल और तेजस्विनी होती हैं। नाक चपटी और बड़ी होती है, पर इतनी ही कि लंबे-चौड़े मुह-पर फरे। उनके सिरके घुंघराले बाल उनकी शीशम-जैसी काली और चमकीली त्वचापर खिल उठते हैं। आप किसी जुलूसे

पूछें कि दक्षिण अफ्रीकामे बसनेवाली जातियोंमें सबसे अधिक सुंदर तुम किसे कहोगे तो यह दावा वह अपनी जातिके लिए ही करेगा और इसमें मुझे उसका तनिक भी अज्ञान नहीं दिखाई देता । जो प्रयत्न सैंडो आदि आज यूरोपमें अपने गागिर्दोंकी बाहु, छाती आदिके व्यवस्थित विकासके लिए कर रहे हैं वैसे किसी भी प्रयत्नके बिना, कुदरती तौरपर ही, इस जातिके अग-प्रत्यंग सुदृढ और गठे हुए दिखाई देते हैं । प्रकृतिका नियम है कि भूमध्य रेखाके नजदीक रहने-वालोंका चमडा काला ही होना चाहिए और हम यह मान ले कि प्रकृति जो-जो शकलें गढ़ती है उसमें सुंदरता होती ही है तो सौंदर्यविषयक अपने सकुचित और एकदेशीय विचारोंसे बच जायं । इतना ही नहीं, हिंदुस्तानमें अपने ही चमड़ेको कुछ काला पाकर हमारे मनमें जो अशोभन लज्जा और अशुचि उत्पन्न होती है उससे भी हम मुक्त हो सकते हैं ।

ये हवशी मिट्टी और फूसके गुंबददार झोंपड़ोंमें रहते हैं । इन झोंपड़ोंमें एक ही गोल दीवार होती है और ऊपर फूसका छप्पर । छप्पर भीतर लगे हुए एक खंभेपर टिका होता है । दरवाजा एक ही होता है और इतना नीचा कि बिना झुके कोई अंदर नहीं जा सकता । यही दरवाजा हवाके आने-जानेका रास्ता होता है । उसमें किवाड तो शायद ही होते हैं । हम लोगोंकी तरह ये लोग भी दीवार और जमीनको मिट्टी और गोबर-से लीपते हैं । ऐसा माना जाता है कि ये लोग कोई भी चौकोर चीज नहीं बना सकते । अपनी आंखोंको उन्होंने केवल गोल चीज ही देखना और बनाना सिखाया है । हम प्रकृतिको भूमितिकी सरल रेखाएं, सीधी आकृतियां बनाते नहीं पाते और प्रकृतिके इन निर्दोष भोले-भाले बच्चोंका ज्ञान उनके प्रकृतिके अनुभवपर ही आश्रित होता है ।



उनके इस मिट्टीके महलमे साज-सामान भी उनके अनुह्य ही होता है। युरोपीय सभ्यताके प्रवेशके पहले ये पहनने-ओढने, सोने-चूने सवमे चमड़ेका ही उपयोग करते थे। कुरसी-मेज, सटूक-पिटारा रखनेको तो इस 'महल'मे जगह भी नहीं होती और अंग्रेजीके आधारपर आज भी इनके दर्शन वहाँ शायद ही होते हैं। अब उनके घरमे कदलका प्रवेश हो गया है। ब्रिटिश राजके पहुचनेके पहले ह्वशी स्त्री-पुरुष लगभग नगे ही फिंग करते थे। आज भी देहातमें बहुतेरे इसी तरह रहते हैं। गुह्य अंगोको वे एक चमड़ेसे ढक लेते हैं। कोई-कोई यह भी नहीं करते, पर इसका अर्थ कोई पाठक यह न कर ले कि ये लोग अपनी इंद्रियोको वगमे नहीं रख सकते। जहा एक बडा समुदाय किसी रूढ़िसे बधकर व्यवहार करता हो वहा यह बात बिलकुल मुमकिन है कि दूसरे समुदायको वह रूढ़ि अयोग्य मालूम होती हो, फिर भी पहले समुदायकी निगाहमे उसमे तनिक भी दोष न हो। इन ह्वशियोको एक दूसरेकी ओर ताकने-भाकनेकी फुरसत ही नहीं होती। भागवतकार कहते हैं कि शुकदेवजी जब नगी नहाती हुई स्त्रियोके बीचसे होकर चले गए तो न उनके मनमे तनिक भी विचार उत्पन्न हुआ, न उन निष्पाप स्त्रियोको तनिक भी क्षोभ हुआ या जरा भी शर्म आई। मुझे इसमे कुछ भी अलौकिक नहीं दिखाई देता। हिंदुस्तानमे आज ऐसे मौकेपर हमसे कोई भी इतनी स्वच्छता, इतनी निर्विकारताका अनुभव नहीं करसकता तो यह कुछ मनुष्य-जातिकी पवित्रताकी सीमा नहीं है, बल्कि हमारे दुर्भाग्यकी निशानी है। हम जो इन लोगोको जगली मानते हैं यह तो हमारे अभिमानकी प्रतिध्वनि है। जैसा हम मानते हैं वैसे जगली वे नहीं हैं।

ये ह्वशी जब शहरमे आते हैं तब उनकी स्त्रियोके लिए यह नियम है कि उन्हें छातीसे घुटनेतकका भाग अवश्य ढक रखना

चाहिए। इस कारण उन्हें पसंद न होते हुए भी वैसा कपड़ा लपेटना पड़ता है। इससे दक्षिण अफ्रीकामें इस नापके कपड़ेकी बहुत खपत होती है और ऐसे लाखों कंबल और चादरें हर साल यूरोपसे आती हैं। पुस्वोके लिए अपनी देहको कमरसे घुटनेतक ढक रखना लाजिमी है। इससे उन्होंने यूरोपके उतारे हुए कपड़े पहननेका चलन चला दिया है। जो यह नहीं करते वे नेफादार जाँघिया पहनते हैं। ये सारे कपड़े यूरोपसे ही आते हैं।

इन लोगोंकी खास खुराक मकई और जव मिल जाय तब मांस है। मसाले बगैरहसे तो खुशकिस्मतीसे वे विलकुल अनजान हैं। इनके भोजनमें मसाला पड़ा हो या हल्दीका रंग भी आ गया हो तो ये नाक-भौं सिकोड़ेंगे और जो निरे जगली कहे जाते हैं वे तो उसे छुएंगे भी नहीं। साबित उदाखी हुई मकईको थोड़ा नमक मिलाकर एक वक्तमें एक सेर खा लेना साधारण जुलके लिए कोई असाधारण बात नहीं है। मकईके आटेकी पानीमें पकाकर उसकी लपसी बनाकर खानेमें वे सतोष मानते हैं। मांस जब मिल जाय तब कच्चा या पक्का, उवालकर या भुनकर, केवल नमकके साथ, खा लेंते हैं। मांस चाहे जिस प्राणीका हो, उसे खाते उन्हें हिचक नहीं होती।

उनकी भाषाके नाम भी जातिके नामपर ही होते हैं। लेखन-कलाका प्रवेश गोरोंके ही द्वारा हुआ है। ह्वशी वर्ण-माला-जैसी कोई चीज नहीं है। हालमें रोमन लिपिमें वाइविल आदि पुस्तके ह्वशी भाषाओंमें छपी गईं हैं। जुलू भाषा अत्यंत मधुर है। अधिकांश शब्दोंके अंतमें 'आ' का उच्चारण होता है। इससे भाषाकी ध्वनि कानोको हलकी और मीठी लगती है। मैंने पढ़ा और सुना है कि उसके शब्दोंमें अर्थ और काव्य दोनों होते हैं। जिन थोड़ेसे शब्दोंका ज्ञान मुझे अनायास हो गया है उनके आधारपर मुझे यह मत ठीक मालूम

होता है। नगरों आदिके यूरोपियनोके रखे हुए नाम जो मने दिये है उनके काव्यमय हवशी नाम भी है ही; पर वे मुझे याद नहीं रहे। इससे उन्हें नहीं दे सका।

पादरियोके मतानुसार तो हवशियोका न कोई धर्म था और न है, पर धर्मको व्यापक अर्थमे ले तो कह सकते है कि वे एक ऐसी अलौकिक शक्तको अवश्य मानते और पूजते है, जिसे वे खुद पहचान नहीं सकते। इस शक्तिसे वे डरते भी है। शरीरके नाशके साथ मनष्यका सर्वथा नाश नहीं होता, इसकी भी उन्हें घृणली प्रतीति होती है। हम नीतिको धर्मका आधार माने तो नीतिपालक होनेके कारण उन्हे धर्मनिष्ठ भी मान सकते है। सच्च और भ्रूठके भेदको वे परी तरह समझते है। अपनी स्वाभाविक अवस्थामे वे जिस सीमातक सत्यका पालन करते है, गोरे या हम लोग उस सीमातक उसका पालन करते है या नहीं, इसमें शक है। उनके मंदिर-देवालय नहीं होते। दूसरी जातियोकी तरह इन लोगोमे भी बहुत तरहके बहम देखनेमें आते है। पाठकोको यह जानकर अचरज होगा कि शरीर-बलमे दुनियाकी किसी भी जातिसे हेठी न ठहरनेवाली यह कौम वस्तुत इतनी डरपोक, इतनी वुजदिल है कि हवशी जवान गोरे बालकको भी देखकर डर जाता है। कोई उसके सामने तमचा तान दे तो वह या तो भाग जायगा या ऐसे जड बन जायगा कि उसमे भागनेकी शक्ति भी न रहेगी। इसका कारण तो है ही। उसके दिलमे यह बात बैठ गई है कि मुट्ठीभर गोरोने जो ऐसी बडी और जगली जातिको वशमे कर रखा है यह जरूर कोई जादू होना चाहिए। भाले और तीरसे काम लेना हवशी बहुत अच्छी तरह जानते थे। ये तो उनसे छीन लिए गए है। बंदूक उन्होने न कभी देखी, न चलाई। जिसको न दियासलाई दिखानी पड़ती है, न एक उगली हिलानेके सिवा और कोई हरकत

करनी पड़ती है, फिर भी एक छोटी-सी नलीसे यकायक आवाज होती है, आग भड़कती है और गोली लगकर क्षणभरमे आदमीका काम तमाम कर देती है ! यह ऐसा चमत्कार है जो बेचारे हवशीकी समझमे नहीं आ सकता । इससे वह इस चीजको काममे लानेवालेके डरसे हमेशा बदहवास रहता है । उसने और उसके वाप-दादोंने देखा है कि इन गोलियोने कितने ही असहाय और निरपराध हवशियोंकी जान ले ली है । यह क्यों और कैसे होता है, बहुतेरे हवशी इसे आज भी नहीं जानते ।

इस जातिमे 'सभ्यता' धीरे-धीरे प्रविष्ट होती जा रही है । एक ओरसे मले पादरी ईसामसीहका संदेश, जैसा कुछ उन्होंने उसे समझा है, उनके पास पहुंचा रहे हैं । उनके लिए मदरसे खोल रहे हैं और उन्हें सामान्य अक्षरज्ञान दे रहे हैं । इनकी कोशिशसे कितने ही चरित्रवान हवशी भी तैयार हुए हैं; पर बहुतेरे जो अक्षरज्ञान और सभ्यतासे परिचित न होनेके कारण अनेक अनौतियोसे वचे हुए थे, आज डोगी-माखंडी भी हो रहे हैं । जो हवशी 'सभ्यता' के सपर्कमे आ चुके हैं उनमे शायद ही कोई ऐसा हो जो शरावकी दुराईसे बचा हो । उनके तगड़े मस्त शरीरपर जब शरावका भूत सवार होता है तब वे पूरे पागल हो जाते हैं और न करनेके सब काम कर डालते हैं । सभ्यताके साथ-साथ आवश्यकताओंका बढ़ना तो उतना ही पक्का है जितना दो और दो मिलकर चार होना । जरूरतें बढ़ानेके लिए हो या उन्हें श्रमका मूल्य सिखानेके लिए, हर हवशीको 'मुह-कर' या व्यक्ति-कर (Poll tax) और कुटी-कर (Hut tax) देना पड़ता है । ये कर न लगाए जायं तो यह अपने खतोमे रहनेवाली जाति खानोसे सोना या हीरा निकालनेके लिए जमीनके अंदर सैकड़ो गजकी गहराईमे क्यों उतरने जाय ? और इन खानोके लिए इनका श्रम सुलभ न हो तो सोना और हीरे

पृथ्वीके उदरमें ही पड़े रह जाय । वैसे ही इनपर कर लगाये बिना यूरोपियनोंको नौकर मिलना भी कठिन होगा । इसका फल यह हुआ है कि खानोंके भीतर काम करनेवाले हजारों ह्वत्रियोंको दूसरे रोगोंके साथ-साथ एक प्रकारका क्षय रोग भी हो जाता है जिसे 'माइनस थाइतिस्' (खानमें काम करनेवालोंका क्षय) कहते हैं । यह रोग प्राणहारी है । इसके पजेमें पडनेके बाद दिरले ही उबरते हैं । ऐसे हजारों आदमी एक खानके अंदर रहे और उनके बाल-बच्चे साथ न हो तो उस दशामे वे कितना समय रख सकते हैं, पाठक इसका सहज ही अनुमान कर सकते हैं । इसके फलस्वरूप पैदा होनेवाले रोगोंके भी ये लोग शिकार हो जाते हैं । दक्षिण अफ्रीकाके विचारशील गोरे भी इस गभीर प्रश्नपर विचार न करते हो, सो बात नहीं है । उनमेंसे कितने ही अवश्य यह मानते हैं कि सभ्यताका असर इस जातिपर कुल मिलाकर अच्छा पडा है, यह दावा शायद ही किया जा सकता है । इसका बुरा असर तो हर आदमी देख सकता है ।

इस महान् देशमें जहाँ ऐसी सरल, निर्दोष जाति बसती थी, कोई चार सौ साल पहले बलदा लोगोंने पडाव डाला । ये गुलाम तो रखते ही थे, अपने जावाके उपनिवेशसे कितने ही बलदा अपने मलायी गुलामोंको लेकर उस प्रदेशमें दाखिल हुए जिसे आज हम केप कालोनी कहते हैं । ये मलायी लोग मुसलमान हैं । उनमें बलदा लोगों का रक्त और वैसे ही उनके कितने ही गुण भी हैं । वे सारे दक्षिण अफ्रीकामें इक्के-दुक्के बिखरे हुए दिखाई देते हैं, पर उनका केन्द्र केप टाउन ही माना जाता है । आज उनमेंसे कितने ही गोरोंकी नौकरी करते हैं और दूसरे स्वतंत्र व्यवसाय करते हैं । मलायी स्त्रिया बड़ी ही मेहनती और होशियार होती हैं । उनकी रहन-सहन आम तौरसे साफ-सुथरी दिखाई देती है । औरते धुलाई और सिलाई-

का काम बहुत अच्छा कर सकती हैं। मर्द कोई छोटा-मोटा रोजगार करते हैं। बहुतेरे तांगा-गाड़ी हाकनेका घंघा करके गुजर-बसर करते हैं। कुछने ऊंचे दरजेकी अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त की है। उनमेंसे एक डाक्टर अब्दुलरहमान केप टाउनमें मशहूर हैं। वह केप टाउनकी पुरानी धारा सभामे भी पहुंच गए थे। नए विधानमे प्रधान धारा सभामे जानेका यह हक छीन लिया गया है।

बलदा लोगोका वर्णन करते हुए बीचमे मलायी लोगोका जिक्र अपने आप आ गया। पर अब हम जरा देखे कि बलदा लोग किस तरह आगे बढ़े। बलदाके मानी डच होते हैं, यह मुझे बतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। ये लोग जितने बहादुर योद्धा थे और हैं उतने ही कुशल किसान थे और आज भी हैं। उन्होंने देखा कि हमारे आसपासका देश खेतीके लिए बहुत ही उपयुक्त है। उन्होंने यह भी देखा कि इस देशके असल वाशिदे सालमे कुछ ही दिन काम करके आसानीसे अपना निर्वाह कर सकते हैं। तब उनसे मजदूरी क्यों न कराये? बलदाके पास युद्धकला थी, बंदूक थी और दूसरे प्राणियोंकी तरह आदमियोंको भी कैसे बसमे किया जाना है, यह जानते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा करनेमे घर्मकी कोई बाधा नहीं है। अतः अपने कार्यके औचित्यके विषयमें तनिक भी शकाशील हुए बिना उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके मूलनिवासियोंकी मजदूरीके बलपर खेती आदि करना शुरू कर दिया।

जैसे बलदा दुनियामे अपना फैलाव करनेके लिए अच्छी-अच्छी जमीने ढूढ रहे थे वैसे ही अंग्रेज भी इस फेरमे फिर रहे थे। अतः धीरे-धीरे अंग्रेज भी यहां पहुंचे। अंग्रेज और डच चचेरे भाई तो हैं ही। दोनोंका स्वभाव एक, लोभ एक। एक ही कुम्हारके बनाये हुए मटके जब इकट्ठे होते

हैं तो कभी-कभी आपसमें टकराकर फूटते भी हैं। वैसे ही ये दोनों जातियाँ भी धीरे-धीरे देशमें घुमते और हवशियोंको वगैरे करते हुए एक दूसरेसे टकरा गईं। इनमें भी झगड़े हुए, लड़ाइयाँ भी हुईं। मजुवाकी पहाड़ीपर अग्नेजोने हार भी खाई। इस हारका दाग उनके दिलपर रह गया और वह पककर फोडा बन गया। यह फोडा १८९९ से १९०२ ई० तक जो जगत-प्रसिद्ध युद्ध हुआ उसमें फूटा। लाई राबर्ट्सनने जब जनरल क्रोजेको अपने अधीन किया तब उन्होंने स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाको यह तार किया—“मजुवाका बदला ले लिया।” पर इन दोनोंके बीच जब पहली (बोअर-युद्धके पहले) मुठभेड़ हुई तब बहुतेरे वलंदा लोग अग्नेजोके नामकी हुकमत भी कबूल करनेको तैयार न थे। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके अज्ञात भीतरी भागमें चले गये। इसीके फलस्वरूप ट्रांसवाल और आरेज फ्री स्टेटकी उत्पत्ति हुई।

यही वलदा या डच लोग दक्षिण अफ्रीकामें बोअरके नामसे पुकारे जाने लगे। उन्होंने अपनी भापाकी रक्षा उससे उसी तरह चिपके रहकर की है जैसे बच्चा मातासे चिपका रहता है। अपनी स्वतंत्रताके साथ अपनी भापाका अतिशय निकट सवध है, यह बात उनके अतरमें अकित हो गई है। उसपर कितने ही हमले हुए, फिर भी वे अपनी भापाकी रक्षा किये जा रहे हैं। इस भापाने भी अब ऐसा नया रूप ग्रहण कर लिया है जो यहाके लोगोंके अनुकूल हो। हालंइके साथ वे अपना निकट सवध बनाये नहीं रख सके, इससे जैसे संस्कृतसे प्राकृत भाषाएँ निकली वैसे ही डच भापासे अपभ्रष्ट डच-बोअर लोग बोलने लगे। पर अब वे अपने बच्चोपर अनावश्यक बोझ डालना नहीं चाहते। इसलिए इस प्राकृत बोलीको स्थायी रूप दे दिया है और वह 'टाल'के नामसे विख्यात है। उसीमें उनकी पुस्तके लिखी जाती हैं। बच्चोकी पढाई इसी

भाषामें होती है और धारा सभाके बोअर सदस्य उसीमें भाषण भी करते हैं। यूनियनकी स्थापनाके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामें दोनो भाषाओं, 'टाल' या डच और अंग्रेजी-को समान पद प्राप्त है, यहांतक कि उसके सरकारी गजट और धारा सभाकी कार्रवाईका दोनों भाषाओंमें प्रकाशित होना जरूरी है।

बोअर लोग सीधे, भोले और घमंमे पक्की निष्ठा रखने-वाले होते हैं। वे बड़े-बड़े खेतोंके बीच वसते हैं। उनके खेतोंके विस्तारकी कल्पना हमें नहीं हो सकती। हमारे किसानोंके खेतके मानी होते हैं दो या तीन बीघे जमीन। अकसर इससे भी छोटे होते हैं। उनके खेतोंका स्वरूप यह है कि एक-एक आदमीके पास सैकड़ों-हजारो बीघा जमीन होती है। यह सारी जमीन तत्काल जोत डालनेका लोभ भी इन किसानोंको नहीं होता। कोई उनसे दलील करे तो कहते हैं—“पड़ी रहने दो। जिस जमीनको हम न जोतेगे उसे हमारी सतान जोतेगी।”

हर एक बोअर युद्धकलाका पूरा पंडित होता है। वे आपसमें भले ही लड़ते-झगड़ते रहे, पर अपनी आजादी उन्हें इतनी प्यारी होती है कि जब उनके ऊपर हमला होता है तो सारे बोअर उसका सामना करनेको जुट जाते हैं और एकजान होकर लड़ते हैं। उन्हें लंबी कवायदकी जरूरत नहीं होती, क्योंकि लड़ना सारी जातिका स्वभाव या सहज गुण है। जनरल स्मट्स, जनरल डी वेट, जनरल हर्जॉग, तीनों बड़े वकील और बड़े किसान हैं और तीनों वैसे ही बड़े लड़वैया भी हैं। जनरल बोयाके पास नौ हजार एकड़का एक खेत था। खेतोंके सारी पैचीदगियां उन्हें मालूम थी। सुलहके लिए जब वह यूरोप गये तब उनके बारेमें कहा गया कि भेड़ोंकी परीक्षामें उनके-जैसा कुशल यूरोपमें भी शायद ही कोई हो। यही जनरल बोथा



स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरके स्थानापन्न हुए । उन्हें अंग्रेजी अच्छी आती थी, फिर भी इंग्लैंडमें जब वे बादशाह और मन्त्रिमंडलसे मिले तब उन्होंने सदा अपनी मातृभाषामें ही बातचीत करना पसंद किया । कौन कह सकता है कि उनका यह आग्रह उचित नहीं था ? अपना अंग्रेजीका ज्ञान दिखानेके लिए गलतिया करनेकी जोखिम वह क्यों उठाये ? उपयुक्त शब्दकी तलाशमें उनके विचारोंकी शृंखला टूट जाय, यह साहस वह किस लिए करे ? मन्त्रिगण अनजानमें कोई अपरिचित अंग्रेजी मुहावरा बोल जाय, वह उसका अर्थ न समझे और कुछ-का-कुछ जवाब दे जाए, गायब घबरा जाए और यों उनका काम विगड़ जाय, ऐसी सगीन गलती वह क्यों करे ?

बोअर पुरुष जैसे वहादुर और सीधे हैं, बोअर स्त्रिया भी वैसी ही वहादुर और सरल स्वभावकी होती हैं । बोअर युद्धके समय जो बोअर लोगोंने अपना खून वहाया वह वलि वे बोअर स्त्रियोंकी हिम्मत और उनसे मिलनेवाले बढावके बलपर ही दे सके । इन स्त्रियोंको न अपना सुहाग उजड़नेका डर था और न भविष्यकी ही चिंता थी । मैं कह चुका हूँ कि बोअर लोग ईसाई हैं और धर्ममें पक्की आस्था रखनेवाले हैं । पर वे हजरत ईसाके नये इकरारनाम (न्यू टेस्टामेंट) को मानते हैं, यह नहीं कह सकते । सच पछिए तो यूरोप ही नये इकरारनामको कहा मानता है ? फिर भी यूरोपमें नये इकरारनामका आदर करनेका दावा किया ही जाता है, गौकि कुछ ही यूरोपवासी ईसामसीहके शांति-धर्मको जानते और उसका पालन करते हैं । पर बोअर लोगोंके वारेमें तो कह सकते हैं कि वे नये करारका नामभर जानते हैं । पुराने करार (ओल्ड टेस्टामेंट) को वे अवश्य भावपूर्वक पढते और उसमें जो लडाइयोंका वर्णन है उसे कठ करते हैं । हजरत मूसाका 'दांतके बदले दांत और आंखके बदले आंख' की शिक्षाको वे

पूरे तौरसे मानते हं और ज़ैसा मानते है वैसा ही आचरण भी करते है ।

बोअर स्त्रियोने भी यह मानकर कि अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके खातिर जितना भी दुःख सहन करगा पडे वह धर्मका आदेश है, धीरज और आनदसे सारी मुसीबते सह ली । उन्हे भुक्तानेके लिए स्वर्गीय लाडं किचनरने कोई उपाय उठा नही रखा । उन्हे जुदा-जुदा शिविरो या इहातोमे वद करवा दिया, जहा उनपर असह्य आपत्तिया आई, ग्वाने-पीनेकी सासत, ठढसे और गरमी-घूपसे वेहाल । कोई गराव पीकर बदहवास या कामाध सैनिक इन असहाय स्त्रियोपर आक्रमण भी कर बैठता । इन इहातोमे अनेक प्रकारके उपद्रव हुआ करते थे । फिर भी ये बहादुर स्त्रिया न झुकी । अतमे बादशाह एडवर्डने लाडं किचनरको लिखा—“भुक्तसे यह सहन नही हो सकता । बोअर स्त्रियोको भुक्तानेका अगर हमारे पास यही इलाज हो तो इसकी बनिस्वत चाहे जैसी भी सुलह कर लेना मै पसद करूंगा । आप लडाईको जल्दी समेटिये ।”

इस सारे दुःख-ददंकी आवाज जब इगलंड पहुची तब ब्रिटिश जनता बहुत दुःखी हुई । बोअरोकी बहादुरीसे वह आश्चर्यचकित हो रही थी । ऐसी छोटी-सी जाति दुनियाको घेर रखनेवाली सलतनतके छक्के छुड़ा दे, यह बात तो ब्रिटिश जनताके मनमे चुभती ही रहती थी । पर जब उसे इन इहातोंके भीतर वद स्त्रियोका आर्तनाद, उन स्त्रियोके द्वारा नही, उनके मर्दोंके द्वारा भी नही—वे तो रणमे ही जूझ रहे थे—वल्कि उन इक्के-दुक्के उदार-चरित अग्रेज स्त्री-पुरुषोंके जरिये, जो उस वक्त दक्षिण अफ्रीकामे मौजूद थे, पहुचा तो उसके अंदर अनुतापका उदय हुआ । स्वर्गीय सर हनरी कैम्पबेल बैनरमैनने अग्रेज जनताके हृदयको पहचाना और युद्धके विरुद्ध

गर्जना की। स्वर्गीय श्रीस्टेडने प्रकट रूपसे ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह इस युद्धमे अग्रेजोको हरा दे और दूसरोको भी वैसा करनेकी प्रेरणा की। यह दृश्य अद्भुत था। सच्चा दुःख सचाईके साथ सहा जाय तो वह पत्थरके दिलको भी पानी कर देता है। यह है इस कष्ट-सहन अर्थात् तपस्याकी महिमा और इसमे ही सत्याग्रहकी कुजी है।

इसका फल यह हुआ कि फ्रीनिखनकी सुलह हुई और दक्षिण अफ्रीकाके चारो राज्य एक शासन-प्रबंधके नीचे आये। यद्यपि इस सुलहकी बात अखबार पढनेवाले हर हिंदुस्तानीको मालूम है, फिर भी एक-दो बातें ऐसी हैं जिनकी कल्पनातक बहुतेको होना मुमकिन नहीं। फ्रीनिखनकी सुलह होते ही दक्षिण अफ्रीकाके चारों राज्य एकमे मिल गये हो सो बात नहीं। हर एककी अपनी धारा सभा थी। उनका शासक मण्डल धारा सभाके सामने पूरे तौरपर जवाब-देह न था। ट्रांसवाल और फ्री स्टेटकी राज्य व्यवस्था 'क्राउन-कॉलोनी'—शाही उपनिवेश—के ढंगकी थी। ऐसे सकुचित अधिकारसे जनरल बोथा या जनरल स्मट्सको सतोष न हो सकता था। फिर भी लार्ड मिलनरने बिना दूल्हेकी बरात निकालना मुनासिब समझा। जनरल बोथा और जनरल स्मट्स धारा सभासे अलग रहे। उन्होंने असहयोग किया। सरकारसे संबंध रखनेसे साफ इनकार कर दिया। लार्ड मिलनरने तीखा भाषण किया और कहा कि जनरल बोथाको यह मान लेनेकी जरूरत नहीं है कि यह सारा भार उन्हीके सिर है। राज्यव्यवस्था उनके बिना भी चल सकती है।

बोथरोकी बहादुरी, उनकी स्वतंत्रता, उनकी कुरवानीके बारेमे मैंने दिल खोलकर लिखा है। फिर भी पाठकोके मनपर यह छाप डालनेका मेरा इरादा नहीं था कि संकटकालमे भी उनमे मतभेद नहीं हो सकता, या उनमे कोई कमजोर दिल-

वाला था ही नहीं। लार्ड मिलनर बोअरोमे भी सहजमे राजी हो जानेवाला दल खड़ा करसके और यह मान लिया कि इसकी मददसे मैं धारा सभाको चमका सकूंगा। एक नाटककार भी मुख्य पात्र—नायक—के बिना अपने नाटकको सुंदर नहीं बना सकता। फिर इस कठोर संसारमे राजकाज चलानेवाला आदमी प्रधान पात्रको भूल जाय और सफल होनेकी आशा रखे तो वह पागल ही कहा जायगा। सचमुच लार्ड मिलनरकी यही दशा हुई। यह भी कहा जाता था कि उन्होंने धमकी तो दे दी, पर जनरल बोथाके बिना ट्रांसवाल और फ्री स्टेटका राज्य-प्रबंध चलाना उन्हें इतना कठिन हो गया कि अपने बगीचेमें अक्सर चितातुर और बदहवास दिखाई देते थे। जनरल बोथाने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि फ्रीनिखनके सुलहनामेका अर्थ मैंने तो साफ तौरपर यही समझा था कि बोअर लोगोको अपनी भीतरी व्यवस्थाका पूरा-पूरा अधिकार तुरंत मिल जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसा न होता तो मैं कभी उसपर दस्तखत न करता। लार्ड किचनरन इसके जवाबमें कहा कि मैंने जनरल बोथाको इस तरहका कोई विश्वास नहीं दिलाया था। बोअर जनता ज्यों-ज्यों विश्वासकी अधिकारिणी सिद्ध होती जायगी त्यों-त्यों उन्हें स्वतंत्रता मिलती जायगी। अब इन दोनोंके बीच कौन इंसफ करे ? कोई किसीको पंच मान लेनेकी बात कहे तो भी जनरल बोथाको वह क्यों मंजूर होने लगी ? इस अवसरपर बड़ी सरकारने जो न्याय किया वह उसको संपूर्ण रीतिसे शोभा देनेवाला था। उसने यह मंजूर किया कि विपक्षने—उसमें भी निर्वल पक्षने—समझौतेका जो अर्थ समझा हो वह अर्थ सबल पक्षको स्वीकार करना ही चाहिए। न्याय और सत्यकी नीतिसे तो सदा यही अर्थ ठीक होता है। अपने कथनका मैंने अपने मनमें चाहे जो अर्थ रखा हो, फिर भी मुझे मानना चाहिए कि उसका जो असर सुनने या पढ़नेवालेके मनपर पड़ता हो उसी अर्थमें

मैंने अपनी बात कही या लेख लिखा। इस सुनहले नियमका पालन हम व्यवहारमें अकसर नहीं करते, इसीसे बहुतसे विवाद पैदा होते हैं और सत्यके नामपर अर्धसत्य—वस्तुतः डेढ असत्य—काममें लाया जाता है।

इस प्रकार जब सत्यकी—यानी यहाँ जनरल बोथाकी, पूरी विजय हुई तब वे काममें जुट गये। इसके फलस्वरूप सब राज्य डकट्टे हो गये और दक्षिण अफ्रीकाको संपूर्ण स्वाधीनता मिल गई। उसका झंडा यूनियन जैक है। नक्शेमें इस प्रदेशका रंग लाल है। फिर भी दक्षिण अफ्रीका पूरे तौरपर स्वतंत्र है, यह माननेमें तनिक भी अतिशयता नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य दक्षिण अफ्रीकाका कारवार करनेवालोंकी रजामदीके बिना वहाँसे एक पाई भी नहीं ले सकता। इतना ही नहीं, ब्रिटिश मंत्रियोंने स्वीकार कर लिया है कि दक्षिण अफ्रीका ब्रिटिश झंडेको उतार फेंकना और नामसे भी स्वतंत्र हो जाना चाहे तो उसे कोई रोकनेवाला नहीं है। और अगर वहाँके गोरोंने अबतक ऐसा कदम नहीं उठाया तो इसके सबल कारण हैं। एक तो यह कि बोअर जनताके नेता चतुर और समझदार हैं। ब्रिटिश साम्राज्यके साथ इस तरहकी सामझदारी या सबध, जिसमें खुद उन्हें कुछ भी खोना न पड़े, वे रखें तो इसमें कोई दोष नहीं। पर इसके सिवा दूसरा व्यावहारिक कारण भी है। और वह यह कि नेटालमें अग्नेजोकी सख्या अधिक है। केप कालोनीमें अग्नेजोकी सख्या अधिक है, पर बोअर लोगोसे ज्यादा नहीं है और जोहान्सवर्गमें केवल अग्नेजोका ही प्रभाव है। इसलिए बोअर जाति सारे दक्षिण अफ्रीकामें स्वतंत्र प्रजातंत्र राज्य स्थापित करना चाहे तो यह धरमें ही झगडा खडा कर लेना है और शायद गृहयुद्ध भी भडक उठे। इसीसे दक्षिण अफ्रीका आज भी ब्रिटिश उपनिवेश कहलाता है।

यूनियनका विधान किस तरह बना यह भी जानने लायक

वात है। चारों राज्योंकी धारा सभाओंने एकमत होकर यूनियन समुक्तराज्यका विधान बनाया। ब्रिटिश पार्लामेंटको उसे अक्षरशः स्वीकार कर लेना पडा। आम सभाके एक सदस्यने उसके एक व्याकरण-दोषकी ओर ध्यान खींचकर गलत शब्द निकाल देनेकी सलाह दी। स्वर्गीय सर हेनरी कैम्पवेल वैनरमैनने इस सुझावको नामंजूर करते हुए कहा कि राज्य-व्यवस्था शुद्ध व्याकरणसे नहीं चला करती। यह विधान ब्रिटिश मंत्रिमंडल और दक्षिण अफ्रीकाके मंत्रियोंमें मशवरा होकर तैयार हुआ है। उसका व्याकरण-दोषतक दूर करनेका अधिकार ब्रिटिश पार्लामेंटके लिए नहीं रखा गया है। फलतः यह विधान ज्यो-का-स्यो आम-सभा और उमराव सभा दोनोंको मंजूर करना पडा।

इस प्रसंगमें एक तीसरी बात भी उल्लेखनीय है। विधानमें कितनी ही धाराएँ ऐसी हैं जो तटस्थ व्यक्तिको अवश्य बेकार मालूम होगी। उनके कारण खर्च भी बहुत बडा है। यह दोष विधान बनानेवालेकी दृष्टिके बाहर नहीं था, पर उनका उद्देश्य पूर्णता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि कुछ घट-बढकर एकमत होना और अपने प्रयत्नको सफल करना था। इसीसे इस वक्त यूनियनकी चार राजधानियाँ मानी जाती हैं, क्योंकि उपराज्योंमेंसे कोई भी अपनी राजधानीका महत्त्व छोड़ देनेको तैयार नहीं है। चारों राज्योंकी स्थानीय धारा सभाएँ भी कायम रखी गई हैं। चारों राज्योंको गवर्नर-जैसा कोई अधिकारी भी चाहिए ही। इससे चार प्रांतीय शासक स्वीकार किए गये हैं। हर आदमी समझता है कि चार स्थानीय धारा सभाएँ, चार राजधानियाँ और चार हाकिम वकरीके गलेके स्तनकी तरह निरर्थक और निरे आडवरूप हैं। पर दक्षिण अफ्रीकाके व्यवहारकुशल राजनीतिज्ञोंने इसकी परवा न की। इस प्रबंधमें आडवर था और खर्च



के लिए क्यों बंधे ? और जबतक पक्के, बारहमासी मजदूर न मिले तबतक अंग्रेज अपना अभीष्ट सिद्ध न कर सकते थे । अतः उन लोगोंने भारत-सरकारके साथ लिखा-पढ़ी शुरू की और हिंदुस्तानसे मजदूरोंकी मदद मांगी । भारत-सरकारने नेटालकी मांग मंजूर की और हिंदुस्तानी मजदूरोंका पहला जहाज १८६० की १६ वीं नवंबरको नेटाल पहुंचा । दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें यह तारीख महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस पुस्तक और इसके विषयका मूल इसी घटनासे है ।

मेरे विचारसे भारत-सरकारने यह मांग मंजूर करनेमें भलीभांति सोचा-विचारा नहीं । यहांके अंग्रेज अधिकारी जाने-बेजाने नेटालके अपने भाइयोंकी ओर झुके । अवश्य ही जहांतक हो सकता था, मजदूरोंके बचावकी सतों उन्होंने सरकारनामसे दाखिल करा दी और उनके खाने-पीनेका सामान्य सुभीता भी करा दिया; पर यो दूर देशको गये हुए अपढ़ मजदूरोंपर कोई कष्ट पड़े तो वे उससे कैसे छुटकारा पा सकेंगे, इसका पूरा खयाल तो उन्हें नहीं रहा । उनके धर्मका क्या होगा, अपनी नीतिकी रक्षा वे कैसे करेगे, इसका तो विचार भी नहीं किया गया । अधिकारियोंने यह भी न सोचा कि गो कानूनमें गुलामी उठ चुकी है, पर मालिकोंके दिलसे तो दूसरोंको गुलाम बनानेका लोभ अभी नहीं मिटा है । उन्हें यह समझना चाहिए था; पर उन्होंने नहीं समझा कि ये मजदूर दूर देशमें जाकर एक बंधी मुहूर्तके लिए गुलाम हो जाएंगे । सर विलियम विलसन हंटरने, जिन्होंने इस स्थितिका गहरा अध्ययन किया था, इसकी तुलना करते हुए दो शब्दों या शब्दसमूहका व्यवहार किया था । नेटालके ही भारतीय मजदूरोंके बारेमें लिखते हुए एक बार उन्होंने लिखा कि यह आधी गुलामीकी स्थिति है । दूसरे वक्त अपने पत्रके अंदर उन्होंने



इसका वर्णन यह कहकर किया कि यह स्थिति गुलामीकी हृदके पास पहुच रही है—उससे मिलती-जुलती है। नेटालके एक कमीशनके सामने गवाही देते हुए वहाके बड़े-से-बड़े यूरोपियन—स्वर्गीय श्री एस्कवने भी यही बात कबूल की। ऐसे बहुतसे सबूत तो नेटालके अग्रगण्य गोरोंके मुहसे—उनके वयानोसे ही दिए जा सकते है। उन वयानोसे अधिकांश उस अरजीमे शामिल कर लिए गये है जो इस वारेमे भारत सरकारके पास भेजी गई थी। पर होनहार होकर ही रही और जो स्टीमर इन मजदूरोंको नेटाल ले गया वह सत्याग्रहके महान् वृक्षका बीज भी अपने साथ ले गया।

मजदूरोंको नेटालके दलाल हिंदुस्तानियोने किस तरह ठगा, कैसे उनके जालमे फसकर ये लोग नेटाल पहुचे, वहा पहुचनेपर उनकी आंखे कैसे खुली, आख खुल जानेपर भी वे नेटालमे क्यों बने रहे, कैसे उनके पीछे दूसरे भी वहां पहुचे, वहा पहुचकर उन्होंने धर्म और नीतिके सारे बंधन कैसे तोड़ फेंके अथवा ये बंधन खुद टूट गये, कैसे विवाहिता पत्नी और बेव्याके बीचका भेदतक नहीं रहा, इस सबकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तकमें लिखी ही नहीं जा सकती।

इन मजदूरोंको नेटालमे एप्रिमेटमें गये हुए मजदूर कहते है। इससे ये अपने आपको 'गिरमिटिया' कहने लगे। इसलिए आगेसे हम 'एप्रिमेट'को 'गिरमिट' और उसके अंदर गये हुए मजदूरोंको 'गिरमिटिया' कहेंगे।

नेटालमे गिरमिटियोंके जानेकी खबर जब मारिगम पहुची तब इस तरहके मजदूरोंमे सबंध रखनेवाले हिंदुस्तानी व्यापारी वहा जानेको ललचाये। मारिगम नेटाल और हिंदुस्तानके बीचमें पडता है। उस देगमे हजारों हिंदुस्तानी मजदूर और व्यापारी बसते है।

उनमेसे एक व्यापारी स्वर्गीय सेठ अबूबकर आमदने नेटालमे दुकान खोलनेका इरादा किया । इस वक्त नेटालके अग्नेजोका हिंदुस्तानी व्यापारी क्या कर सकते हैं, इसका पता नहीं था, इसकी परवा भी नहीं थी । गिरमिटियोंकी मददसे वे ईख, चाय, कहवे वगैरहकी नफा देनेवाली फसल उपजा सके । ईखकी शकर बनाकर इतने थोड़े समयमें छोटे पैमानेपर दक्षिण अफ्रीकाको ये शकर, चाय और कहवा देने लगे कि देखकर अचरज हो । अपनी कमाईसे उन्होंने महल खड़े किये और सचमुच जंगलमें मंगल कर दिया । ऐसे समय सेठ अबूबकर-सरीखा अच्छा, भला और चतुर व्यापारी उनके बीचमें जा बसे तो यह उन्हें क्यों न खटकता ? फिर इनके साथ तो एक अग्नेज भी साथी हो गया ! सेठ अबूबकरने अपना व्यापार चलाया, जमीन खरीदी और उनके अच्छा पैसा कमानेकी खबर उनके बतन पोरवंदर और उसके आस-पासके गांवोंमें फैली । फलतः दूसरे मेमन नेटाल पहुंचे । उनके पीछे सूरतकी ओरके बोहरें भी पहुंचे । उन्हें मुनीम तो चाहिए ही । अतः गुजरात, काठियावाड़के हिंदू मुनीम भी वहां पहुंचे ।

इस प्रकार नेटालमे दो वर्गके हिंदुस्तानी बसे : १. स्वतंत्र व्यापारी और उनके स्वतंत्र कर्मचारी और २. गिरमिटिया । कुछ दिनोमे गिरमिटियोंके बाल-बच्चे हुए । गिरमिटिके कानूनके अनुसार उनकी सतान यद्यपि मजदूरी करनेके लिए बंधी नहीं थी, फिर भी इस कानूनकी कुछ कठोर धाराओंके अधीन तो थी ही । गुलामीका दाग गुलामकी औलादको लगे बिना कैसे रहता ? ये गिरमिटिया पांच बरसके इकरारपर जाते थे । पांच साल पूरे हो जानेपर वे मजदूरी करनेको बधे नहीं थे । उन्हें खुली मजदूरी या व्यापार करना और नेटालमें स्थायी रूपसे बसना हो तो इसका उन्हें हक था । कुछने इस अधिकार-

का उपयोग किया, कुछ हिंदुस्तान लौट आये। जो नेटालमें रह गये वे 'फ्री इंडियंस' कहलाने लगे। हम उन्हें 'गिरमिट मुक्त' या थोड़ेमे 'मुक्त हिंदुस्तानी' कहेंगे। इस अंतरको समझ लेना जरूरी है, क्योंकि जो अधिकार पूर्ण स्वतंत्र भारतीय, जिनका जिक्र ऊपर किया गया है, भोग रहे थे वे सभी इस बंधनसे मुक्त हुए हिंदुस्तानियोंको प्राप्त नहीं थे। जैसे उन्हें एकसे दूसरी जगह जाना हो तो उनके लिए परवाना लेना जरूरी था। वे व्याह करे और चाहते हो कि वह कानूनसे जायज माना जाय तो जरूरी था कि गिरमिटियोंकी रक्षाके लिए नियुक्त अधिकारी (प्रोटेक्टर आव इंडियन इमिग्रान्ट्स) के दफ्तरमे जाकर उसे दर्ज कराये, आदि। इनके सिवा दूसरे भी कठोर अंकुश उनपर थे।

ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमे १८८०-९० मे वोअर लोगोके प्रजातंत्र राज्य थे। प्रजातंत्र राज्यका अर्थ भी यहां स्पष्ट कर देना जरूरी है। प्रजातंत्र यानी गौरातंत्र। हबशी जनताका उसमे कुछ लेना-देना हो ही नहीं सकता था। हिंदुस्तानी व्यापारियोने देखा कि हम केवल गिरमिटिया और गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोमे ही अपना रोजगार कर सकते हो ऐसी बात नहीं है। हम हबशियोके साथ भी व्यापार कर सकते है। हबशी लोगोके लिए हिंदुस्तानी व्यापारी बड़े सुभीतेकी चीज साबित हुए। गोरे व्यापारियोसे वे बहुत ज्यादा डरते थे। गोरा व्यापारी उनके साथ व्यापार करना तो चाहता था; पर हबशी ग्राहक उससे यह आशा रख ही नहीं सकता था कि वह मीठी जवानसे उसे बुलायेगा। अपने पैसेके बदलेमे पूरा माल पा जाता तो वह धन्य भाग समझता। पर कुछको यह कड़वा अनुभव भी हुआ कि चार शिलिंगकी चीज लेनी है और दुकानदारके सामने एक पौडका सिक्का रख दिया; पर उसे १६ के बदले ४ शिलिंग ही वापस मिले या कुछ भी न मिला।

गरीब ग्राहक अधिक मांगे, हिंसावकी गलती दिखाये तो बदलेमें गंदी गालियां पाए। इतनेसे ही छूट जाय तो भी गनीमत समझिये, नहीं तो गालीके साथ धसा या लात भी मिलती। मेरे कहनेका यह मतलब हर्गिज नहीं कि सभी अंग्रेज व्यापारी ऐसा करते हैं। पर ऐसी मिसालें काफी तादादमें मिलती हैं, यह तो जरूर कहा जा सकता है। इसके विपरीत हिंदुस्तानी व्यापारी हवशी ग्राहकको मौठी बोलीसे तो बुलाता ही है, उसके साथ हँसकर बात भी करता है। हवशी भोला होता है। वह चाहता है कि दुकानके अंदर जाकर चीजोंको देखे-भाले। हिंदुस्तानी व्यापारी इस सबको सह लेता है। यह सही है कि वह परमार्थ दृष्टिसे ऐसा नहीं करता, इसमें उसकी स्वायत्तदृष्टि होती है। मौका मिल जाय तो हिंदुस्तानी व्यापारी हवशी ग्राहकको ठगनेसे भी नहीं चूकता; पर हवशियोंमें भारतीय व्यापारीकी प्रियताका कारण उसकी मिठास—उसका मधुर व्यवहार है। फिर हवशी हिंदुस्तानी व्यापारीसे डरता तो कभी नहीं। उलटी ऐसी मिसालें मौजूद हैं कि किसी हिंदुस्तानी दुकानदारने हवशी ग्राहकको ठगनेकी कोशिश की और वह जान गया तो उसके हाथों उस व्यापारीकी मरम्मत भी हो गई। गालियां तो उसे अक्सर मिला करती हैं। इस प्रकार हवशी और हिंदुस्तानीके संबंधमें डरनेका कारण हिंदुस्तानीके लिए ही होता है। अंतमें इसका फल यह हुआ कि भारतीय व्यापारीके लिए हवशियोंकी ग्राहकी बहुत लाभजनक सिद्ध हुई। हवशी तो सारे दक्षिण अफ्रीकामें फैले हुए हैं ही। हिंदुस्तानी व्यापारियोंने सुन रखा था कि ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें बोअर लोगोंके बीच भी व्यापार किया जा सकता है। बोअर सीधे, भोले और दिखावेसे दूर रहनेवाले होते हैं। हिंदुस्तानीकी दुकानसे सौदा खरीद नमें उन्हें धर्म नहीं लगती। अतः कितने ही हिंदुस्तानी व्यापा

रियोने ट्रासवाल और फ्री स्टेटकी ओर भी पयान किया। उन्होंने वहा दुकाने खोली। उन दिनों वहा रेले आदि नहीं थी। इसलिए खूब अधिक नफा मिल सकता था। व्यापारियोका खयाल सही निकला। वोअरो और ह्वशियोमे उनका माल खूब बिकने लगा। रह गईं केप कॉलोनी। वहा भी कितने ही हिंदुस्तानी व्यापारी पहुच गये और अच्छी खासी कमाई करने लगे। इस प्रकार छोटी-छोटी सख्याओमे चारो उपनिवेशोमे हिंदुस्तानी बट गये और तत्काल समस्त स्वतंत्र भारतीयोकी तादाद चालीससे पचास हजारके बीच और गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोकी एक लाख होनेका अदाजा किया जाता है। ये रकितया लिखते समय इस सख्यामे मुमकिन है, कुछ कमी हुई हो, पर बेसी हरगिज नहीं हुई है।

: ४ :

## मुसीबतोका सिंहावलोकन—१

नेटाल

नेटालके गोरे मालिकोको महज गुलाम दरकार थे। एस मजदूर वे नहीं चाहते थे, जो नौकरी करनेके बाद आजाद होकर उनके साथ थोड़ी-सी भी प्रतियोगिता कर सके। ये गिरमिटिया गो इसीलिए नेटाल गये थे कि हिंदुस्तानमे अपनी खेती-बारी आदिमे बहुत सफल नहीं हो सके थे, फिर भी ऐसे नहीं थे कि खेतीका कुछ भी ज्ञान न रखते हो या जमीन और खेतीकी कीमत न समझते हो। उन्होंने देखा कि नेटालमे अगर हम साग-भाजी भी बोये तो अच्छी उपज कर सकते हैं और अगर जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा भी ले ले तो उससे और ज्यादा पैसा कमा सकते हैं। अतः बहुतसे गिरमिटिया

जब नौकरीके बंधनसे मुक्त हुए तब कोई-न-कोई छोटा-मोटा धंधा करने लग गये। इससे कूल मिलाकर तो नेटाल-जैसे देशमें बसनेवालोंको लाभ ही हुआ। अनेक प्रकारकी साग-सब्जियां जो कुशल किसानोंके अभावके कारण अबतक पैदा नहीं होती थी अब उपजने लगी। जो चीजे जहां-तहां थोड़ी-बहुत उपजती थी वे अब अधिक मात्रामे मिलने लगी। इससे साग-सब्जीका भाव एकवारगी गिर गया। पर यह बात पैसेवाले गोरोको न रुची। उन्होंने सोचा कि आजतक जिस चीजको हम अपना इजारा<sup>१</sup> मानते थे उसमे अब हिस्सा बटाने-वाले पैदा हो गए। इससे इन गरीब गिरमिटियोंके विरुद्ध आंदोलन आरंभ हुआ। पाठकोंको यह जानकर अचरज होगा कि गोरे एक ओर तो ज्यादा-से-ज्यादा मजदूर मांग रहे थे, हिंदुस्तानसे जितने गिरमिटिया आते वे तुरंत खप जाते, और दूसरी ओर जो मजदूर गिरमिटसे मुक्त होते जाते उनपर तरह-तरहके अकूश रखनेके लिए आंदोलन चल रहा था। यह था उनकी हाशियारी और जीतोड़ मेहनतका मुआवजा !

आंदोलनने कितने ही रूप धारण किये। एक पक्षने यह मांग पेश की कि जो गिरमिटिया गिरमिटसे मुक्त हो चुके हैं वे हिंदुस्तान लौटा दिए जाय और पुराना इकरारनामा बदलकर नये इकरारनामामे नये आनेवाले मजदूरोंसे यह शर्त लिखा ली जाय कि गिरमिटसे मुक्त होनेपर वे या तो हिंदुस्तान लौट जाएंगे या फिरसे गिरमिटमे दाखिल हो जाएंगे। दूसरे पक्षने यह मत प्रकट किया कि गिरमिटसे छुटकारा पानेपर वे नया इकरारनामा लिखना पसंद न करे तो उनसे भारी वार्षिक 'व्यक्ति-कर' लिया जाय। दोनों दलोंका मतलब तो एक ही था कि जैसे भी हो गिरमिटियावर्ग किसी भी दशामे नेटाल-

<sup>१</sup>एकाधिकार।

में स्वतंत्र होकर न रह सके। कोलाहल इतना बढ़ा कि अंतमें नेटालकी सरकारने एक कमीशन नियुक्त कर दिया। दोनों पक्षोंकी मांग सोलह आने गैरवाजिव थी और गिरमिटियोंकी उपस्थिति आर्थिक दृष्टिसे संपूर्ण जनताके लिए सब प्रकार लाभदायक थी। इसलिए कमीशनके सामने जो स्वतंत्र गवाहियां हुईं वे उक्त दोनों पक्षोंके विरुद्ध थीं। फलतः तात्कालिक परिणाम तो विरुद्ध पक्षकी दृष्टिसे कुछ भी न हुआ, पर जैसे आग बुझ जानेके बाद अपना कुछ निशान छोड़ ही जाती है, वैसे ही यह आंदोलन भी नेटाल सरकारपर अपनी छाप छोड़ गया। नेटालकी सरकारके मानी थे खासतौरसे धनिक वर्गकी हिमायती सरकार। अतः भारत-सरकारके साथ उसका पत्र-व्यवहार आरंभ हुआ और दोनों पक्षोंके सुभाव उसके पास भेजे गए। पर हिंदू सरकार यकायक ऐसा सुभाव कैसे स्वीकार कर सकती थी, जिससे गिरमिटिए हमेशाके लिए गुलाम बन जाते? हिंदुस्तानियोंका गिरमिटमें बाधकर इतनी दूर भेजनेका एक कारण या बहाना यह था कि गिरमिटकी मियाद पूरी होनेपर गिरमिटिए आजाद होकर अपनी शक्तिका पूर्ण विकास और उस अनुपातसे अपनी आर्थिक स्थितिको सुधार सकेंगे। नेटाल इस दृष्टि भी 'क्राउन कॉलोनी (आही उपनिवेश) था और ऐसे उपनिवेशोंके शासन-प्रबंधके लिए उपनिवेश विभाग भी पूरी तरह जिम्मेदार माना जाता था। इसलिए नेटालको अपनी अन्याय-पूर्ण इच्छा पूरी होनेमें उससे मदद नहीं मिल सकती थी। इससे और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे नेटालमें उत्तरदायी शासनाधिकार प्राप्त करनेका आंदोलन आरंभ हुआ। १८९३ में यह अधिकार उसे मिल गया। अब नेटालमें बल आया। उपनिवेश-विभागके लिए भी अब नेटालकी मांगोंको, वे वैसे ही क्यों न हों, मंजूर कर लेना अविक कठिन नहीं रहा। नेटालको इस नई यानी जवाब-

वेह सरकारकी ओरसे हिंदुस्तानकी सरकारसे मशवरा करनेके लिए राजदूत भेजे गए । उनकी मांग यह थी कि हर एक गिरमिट मुक्त हिंदुस्तानीपर २५ पौंड यानी ३७५) ६० का वार्षिक व्यक्ति-कर लगाया जाय । इसके मानी यह होते थे कि कोई भी हिंदुस्तानी मजदूर यह कर अदा न कर सके और फलतः आजाद होकर नेटालमें न रह सके । तत्कालीन वाइसराय लार्ड एल्गिनको यह प्रस्ताव बहुत भारी लगा और अंतमें उन्होंने ३ पौंडका वार्षिक व्यक्ति-कर मंजूर किया । गिरमिटियाकी कमाईके हिसाबसे तीन पौंडके मानी उसकी लगभग दो महीनेकी कमाई होते थे । यह कर केवल मजदूरपर ही नहीं था । उसकी स्त्री, तेरह वरससे ऊपरकी लड़की और सोलहसे ऊपरके लड़केको भी देना था । ऐसा मजदूर शायद ही हो जिसके स्त्री और दो बच्चे न हों । अतः मोटे हिसाबसे हर मजदूरको १२ पौंड वार्षिक कर अदा करना था । यह कर कितना कष्टदायक हो गया, इसका वर्णन नहीं हो सकता । उस दुःखको केवल वही जान सकता है जिसने उसका अनुभव किया हो, या थोड़ा बहुत वह समझ सकता है जिसने उसे अपनी आँखों देखा हो । नेटाल सरकारके इस कार्यका भारतीय जनताने कसकर विरोध किया । वही (ब्रिटिश) और भारत-सरकारके पास अर्जियां भेजी गईं । पर इस आंदोलनका नतीजा इससे अधिक और कुछ न निकला कि २५ के ३ पौंड हो गए । गिरमिटिया बेचारे खुद तो इस मामलेमें क्या कर सकते थे ? आंदोलन तो महज हिंदुस्तानी व्यापारीवर्गने देशके दर्दसे कहिये या परार्थ दृष्टिसे किया था । जो सलूक गिरमिटियोंके साथ किया गया वही स्वतंत्र भारतीयोंके साथ भी हुआ । नेटालके गौरे व्यापारियोंने उनके खिलाफ भी मुख्यतः इन्ही कारणोंसे आंदोलन चलाया । हिंदुस्तानी व्यापारी अच्छी तरह जम गए थे । उन्होने नगरक अच्छे



भागोमे जमीने खरीद ली थी। गिरमिटसे छूटे हुए हिंदुस्तानियोंकी आवादी ज्यो-ज्यो बढ़ती गई त्यों-त्यों उनकी दरकार होनेवाली चीजोंकी खपत अच्छी होने लगी। हजारों बोरा चावल हिंदुस्तानस आता और अच्छे नफेपर बिकता। यह व्यापार अधिकांशमे और स्वभावतः हिंदुस्तानियोंके हाथमे रहा। उधर हवशियोंके साथ होनेवाले व्यापारमे भी उनका हिस्सा अच्छा खासा हो गया। छोटे गोरे व्यापारियोंसे यह देखा न गया। इसके सिवा इन व्यापारियोंको कुछ अग्रेजोंने ही यह बताया कि कानूनके अनुसार उन्हें नेटालकी धारा सभाके सदस्य होने और चुननेका हक है। मताधिकारियोंकी सूचीमे कुछ नाम भी दर्ज कराये थे। नेटालके राजकाजी गोरे इस स्थितिको न सह सके। उन्हें यह चिंता हो गई कि यो हिंदुस्तानियोंकी स्थिति नेटालमे दृढ़ हो गई और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी तो उनकी प्रतियोगितामे गोरे कैसे टिक सकेंगे? अतः नेटालकी जवाबदेह सरकारने स्वतंत्र भारतीयोंके बारेमे जो पहला कदम उठाया वह था ऐसा कानून बना देना जिससे एक भी नया हिंदुस्तानी वोटर यों मताधिकारी न हो सके। १८९४ मे इस विषयका पहला बिल नेटालकी धारा सभामे पेश किया गया। इस बिलका मंशा था हिंदुस्तानीको हिंदुस्तानीकी हैसियतसे वोट देनेके हकसे वंचित कर देना। यह पहला कानून था जो नेटालमे रंग-भेदके आधारपर भारतीयोंके विरुद्ध बनाया गया। भारतीय जनताने विरोध किया। रातोंरात अरजी तैयार हुई। उसपर चार सौ आदमियोंसे दस्तखत कराये गए। इस अरजीके पहुंचते ही धारा सभा चौकी, पर बिल तो पास होकर ही रहा। उन दिनों लार्ड रिपन उपनिवेश-सचिव थे। उनके पास अरजी भेजी गई। उसपर दस हजार हस्ताक्षर थे। दस हजार हस्ताक्षरके मानी हुए नेटालमे आजाद हिंदुस्तानियोंकी लगभग सारी

आवादी। लाडं रिपनने विलको नामजूर किया। उन्होंने कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानूनमें रगभेदको स्वीकार नहीं कर सकता। यह जीत कितने महत्त्वकी थी, पाठक इसे आगे चलकर अधिक समझ सकेंगे। इसके जवाबमें नेटालकी सरकारने नया विल पेश किया। इसमें रग-भेद नहीं रखा गया, पर अप्रत्यक्ष रीतिसे चोट तो हिंदुस्तानियोंपर ही थी। हिंदुस्तानी जनता इसके विरुद्ध भी लड़ी, पर उसका विरोध विफल हुआ। यह कानून दोअर्थी था। उसका पक्का अर्थ करानेके लिए वह आखिरी अदालत यानी प्रिवी-कौंसिलतक लड़ सकती थी, पर लड़ना ठीक नहीं समझा गया। मेरा अब भी खयाल है कि न लड़ना ठीक ही हुआ। मूल वस्तु मान ली गई, यही क्या कम था।

पर नेटालके गोरो या वहाकी सरकारको इतनेसे संतोष होनेवाला नहीं था। हिंदुस्तानियोंकी राजनैतिक शक्ति जमने न देना तो एक बहुत जरूरी काम था ही, पर उनकी आंख असलमें तो भारतीय व्यापार और स्वतंत्र भारतीयोंके आगमनपर थी। तीस करोड़की आवादीवाला हिंदुस्तान नेटालकी ओर उलट पड़े तो वहाके गोरोकी क्या दशा होगी? वे तो इस समुद्रमें विलीन हो जाएंगे। इस आशकासे वे बेचैन हो रहे थे। उस वक्त नेटालकी आवादी मोटे हिसाब से यह थी ४ लाख हवशी, ४० हजार गोरे, ६० हजार गिरमिटिए, १० हजार गिरमिट-मुक्त और १० हजार स्वतंत्र भारतीय। गोरोके डरके लिए कोई ठोस कारण तो था ही नहीं, पर डरे हुए आदमीको दलीलसे समझाया नहीं जा सकता। हिंदुस्तानकी असहाय स्थिति और उसके रस्म-रिवाजसे वे अनजान थे। इससे उनको यह भ्रम हो रहा था कि जैसे साहसी और शक्तिमान हम हैं वैसे ही हिंदुस्तानी भी होंगे और इस कारण उन्होंने केवल त्रैाशिकका हिसाब कर लिया। इसलिए उनको दोष कैसे दिया जा

सकता है ? जो हो, नतीजा यह हुआ कि नेटालकी घारा सभाने जो दो दूसरे कानून पास किए उनमें भी मताधिकारकी लड़ाईमें हिंदुस्तानियोंकी जीत होनेके फलस्वरूप रंग-भेदको दूर रखना पडा और गर्भित भापासे काम निकालना पडा । इसकी वदौलत स्थिति थोडी-बहुत सम्हली रह सकी । हिंदुस्तानी कौम इस मौकेपर भी खूब लडी, फिर भी कानून तो पास होकर ही रहे । एक कानूनके जरिये भारतीयोंके व्यापारपर कठोर अंकुश रखा गया, दूसरेके द्वारा उनके प्रवेश-पर । पहले कानूनका आशय यह था कि कानूनद्वारा नियुक्त अधिकारीकी अनुमतिके बिना किसीको भी व्यापारका पर-वाना न मिले । व्यवहारमें यह स्थिति थी कि कोई भी गोरा जाकर अनुमति-पत्र पा सकता था । पर भारतीयको वह वडी कठिनाईसे मिलता । उसमें वकील बगैरहका तो खर्च करना ही पडता । फलत कच्चे और कमजोर दिलवाले तो बिना परवानेके ही रह जाते । दूसरे कानूनकी खास शर्त यह थी कि जो हिंदुस्तानी यूरोपकी किसी भी भाषामे प्रवेशका प्रार्थनापत्र लिख सके वही प्रवेशकी अनुमति पाये । अर्थात् करोड़ों हिंदुस्तानियोंके लिए तो नेटालका दरवाजा बिल्कुल ही बंद हो गया । जान या अनजानमे मुझे नेटालके साथ अन्याय न हो जाय, इसलिए मुझे यह वता देना चाहिए कि जो भारतीय इस कानूनके पास होनेके तीन साल पहलेसे नेटालमे घर बनाकर रहता हो वह अगर नेटाल छोडकर हिंदुस्तान या और कही जाय और फिर लौटे तो, वह अपनी स्त्री और नाबालिग बच्चोंके साथ, यूरोपकी कोई भाषा न जाननेपर भी दाखिल हो सकता था । इनके अतिरिक्त गिरमिटियो और स्वतंत्र भारतीयोपर दूसरी भी कितनी ही कानूनी और बेकानूनी रुकावटे थी और अबतक हैं । पर पाठकोंको उन्हे सुनानेकी जरूरत मुझे नहीं दिखाई देती ।

जितना विवरण इस पुस्तकका विषय समझानेके लिए जरूरी है उतनी ही मैं देना चाहता हूँ। दक्षिण अफ्रीकाके हर एक राज्यके हिंदुस्तानियोंकी हालतका इतिहास बहुत लंबा होगा, यह तो हर पाठक समझ सकता है, पर ऐसा इतिहास देना इस पुस्तकका उद्देश्य नहीं है।

: ५ :

## मुंबसीतोंका सिंहावलोकन—२

### ट्रांसवाल और दूसरे उपनिवेश

जैसा नेटालमे हुआ वैसा ही कर्मावेग दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे उपनिवेशोंमे भी हुआ। १८८० के पहलेसे ही हिंदुस्तानियोंको नफरतकी निगाहसे देखना शुरू हो गया और कंप कॉलोनीको छोड़कर और सभी उपनिवेशोंमे यह धारणा हो गई थी कि हिंदुस्तानी मजदूरके रूपमे तो बहुत अच्छे हैं। पर बहुतेरे गोरोंके मनमें यह बात पक्के तौरसे बैठ गई थी कि स्वतंत्र भारतीयोंसे तो दक्षिण अफ्रीकाकी हानि ही है। ट्रांसवाल प्रजातंत्र राज्य था। उसके अध्यक्षके सामने हिंदुस्तानियोंका यह कहना कि हम ब्रिटिश प्रजा कहलाते हैं, अपनी हूँसी कराना था। हिंदुस्तानियोंको कोई भी शिकायत करनी हो तो वे ब्रिटिश दूतके ही पास कर सकते थे। पर ऐसा होते हुए भी अचरजकी बात यह थी कि ट्रांसवाल जब ब्रिटिश साम्राज्यसे बाहर था उस वक्त ब्रिटिश दूत जो मदद कर सकता था वह मदद जब ट्रांसवाल ब्रिटिश साम्राज्यके अंदर मान लिया गया, विलकुल बंद हो गई। जब लार्ड मोर्ले भारत मंत्री थे और ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंकी वकालत करनेके लिए एक प्रतिनिधि मंडल उनके पास गया तब उन्होंने साफ

कह दिया कि "उत्तरदायी—स्वराज्य भोगी—सरकारोपर बड़ी (साम्राज्य) सरकारका काबू बहुत ही थोड़ा होता है। स्वतंत्र राज्यको वह लड़ाईकी धमकी दे सकती है, उससे लड़ाई कर भी सकती है; पर उपनिवेशोके साथ तो महज मशविरा ही किया जा सकता है। उनके साथ हमारा सबध कच्चे घागेसे जुड़ा हुआ है। जरा ताना कि टूटा। बलसे तो काम लिया ही नहीं जा सकता। कलसे—युक्तिसे—जो कुछ कर सकता हू वह सब करनेका विश्वास आपको दिलाता हूँ।" ट्रासवालके साथ जब लड़ाई छिड़ी तब लार्ड लंसडाउन, लार्ड सेलवर्न आदि ब्रिटिश अधिकारियोने कहा था कि भारतीयोंकी दुःखद स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है।

अब हम इस दुःखके प्रकरणको देखे। ट्रासवालमे हिंदुस्तानी पहले-पहल १८८१ ई० मे दाखिल हुए। स्वर्गीय सैठ अबूबकरने ट्रासवालकी राजधानी प्रिटोरियामे दुकान खोली और उसके एक खास महल्लेमे जमीन भी खरीदी। इसके बाद दूसरे व्यापारी भी एक-एक करके वहां पहुंचे। उनका व्यापार खूब तेजीसे चला तो गोरे व्यापारियोके दिलमे डाह पैदा हुई। अखवारोमे हिंदुस्तानियोके खिलाफ लेख लिखे जाने लगे। घारा सभाको अर्जिया भेजी गई, जिनमे हिंदुस्तानियोको निकाल बाहर करने और उनका व्यापार बंद करा देनेकी प्रार्थनाए की गई। इस नए देशमे गोरोकी धन-तृष्णाकी कोई हद न थी। नीति-अनीतिका भेद वे शायद ही समझते हो। घारा सभाको उन्होने जो आवेदनपत्र भेजा था उसके अंदर इस तरहके वाक्य है—“ये लोग (हिंदुस्तानी व्यापारी) मानवी सभ्यता क्या चीज है यह जानते ही नहीं। वे बदचलनीसे पैदा होनेवाले रोगोसे सड़ रहे हैं। हरएक स्त्रीको वे अपना शिकार समझते हैं और उन्हें आत्मा-रहित मानते हैं।” इन चार वाक्योमे चार झूठ भरे हैं। ऐसे नमूने

बोसियों पेश किए जा सकते हैं। जैसी जनता, वैसे ही उसके प्रतिनिधि। हमारे व्यापारी भाइयोंको इसकी क्या खबर कि उनके विरुद्ध कैसा बेहूदा और अन्याय-भरा आन्दोलन चल रहा है? अखबार वे पढ़ते न थे। अखबारी और अर्जियोंके आंदोलनका असर धारा सभा पर हुआ और उसमें एक विल पेश किया गया। इसकी खबर प्रमुख भारतीयोंके कान तक पहुंची तो वे चौंके। वे राष्ट्रपति क्रूगरके पास गए। दिवगत राष्ट्रपतिने तो उन लोगोंको घरके अंदर कदम भी न रखने दिया। आंगनमें ही खड़ा करके उनकी बात थोड़ी बहुत सुननेके बाद कहा—“आप लोग तो इस्माइलकी औलाद हैं, इसलिए आप लोग ईसोंकी औलादकी गुलामी करनेके लिए ही पैदा हुए हैं। हम ईसोंकी औलाद माने जाते हैं। इसलिए हमारी बराबरीका हक तो आपको मिल ही नहीं सकता। हम जो हक दे रहे हैं उसीसे आपको संतोष मानना चाहिए।” इस जवाबमें द्वेष या रोष था, यह हम नहीं कह सकते। राष्ट्रपति क्रूगरकी शिक्षा ही इस प्रकारकी थी कि वचनसे ही बाइबिलके पुराने इकरारनामे (ओल्ड टेस्टामेंट) में कही हुई बातें उन्हें सिखाई गईं और वह उनपर

---

इब्राहीम (२२५०-२१०० ई० पू०)के बड़े और अमिश्रित बेटे, जो उनकी कनिष्ठा पत्नी (दासी) हाजरासे पैदा हुए थे। ज्येष्ठा पत्नी सारा के पेटसे इसहाकका जन्म होनेपर, उसके कहनेसे, इब्राहीम हाजरा और इस्माइलको उस जगह से जाकर छोड़ आये, जहाँ भव भक्का नगर है। मुसलमान हजरत इब्राहीमके समान इन्हें भी पैगंबर मानते हैं। अरबका प्रमुखतम कबीला कुरेश, जिसमें हजरत मुहम्मदका जन्म हुआ था, इन्हींकी औलाद माना जाता है। ईसो/इसहाकके सबसे बड़े बेटे थे। बाइबिलके सृष्टिसूत्रमें इनकी कथाएं विस्तारसे दी हुई हैं। —अनु०

विश्वास करने लगे। जो आदमी जैसा मानता हो वैसा ही सच्चे दिलसे कहे तो इसमें उसको कौन दोष दे सकता है? फिर भी इस सरलतामें रहनेवाले अज्ञानका बुरा असर तो होता ही है और नतीजा यह हुआ कि १८८५ में बहुत कड़ा कानून धारा सभामें जल्दी-जल्दी पास किया गया, मानो हजारों हिन्दुस्तानी ट्रांसवालमें घुमकर लूट मचानेके लिए तैयार बैठे हों! प्रमुख भारतीयोंकी प्रेरणासे इस कानूनके खिलाफ ब्रिटिश राजदूतको कदम उठाना पड़ा। मामला उपनिवेश सचिव तक पहुँचा। इस कानूनके अनुसार ट्रांसवालमें दाखिल होनेवाले हर एक हिन्दुस्तानीको २५ पौंड देकर अपनी रजिस्ट्री करानी पड़ती और वह एक इंच भी जमीन न ले सकता। चुनावमें मत देनेका अधिकारी तो वह हो ही नहीं सकता था। यह सारी बात इतनी अनचित थी कि ट्रांसवालकी सरकारको बचावके लिए कोई दलील ही नहीं सूझती थी। ट्रांसवाल सरकार और बड़ी सरकारके बीच एक सुलहनामा हुआ था जिसे 'लंडन कन्वेणन' कहते थे। उसमें ब्रिटिश प्रजाके अधिकारोंकी रक्षा करनेकी एक धारा—१४वीं—थी। इस धाराके आधारपर बड़ी सरकारने इस कानूनका विरोध किया। ट्रांसवालकी सरकारने इसके जवाबमें यह दलील दी कि हमने जो कानून बनाया है, बड़ी सरकार पहलेसे उसको स्पष्ट या गभित सम्मति दे चुकी है।

यो उभयपक्षमें मतभेद होनेसे मामला पंचके पास गया। पंचका पंगु फैसला हुआ। उसने दोनों पक्षोंको राजी रखनेकी कोशिश की। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तानियोंने यहाँ भी कुछ खोया ही। लाभ इतना ही हुआ कि अधिक खोनेके बदले कम खोया। पंचके इस फैसलेके अनुसार १८८६ में कानूनमें सुधार हुआ। उसके अनुसार रजिस्ट्रीकी फीस २५ पौंडके

वजाय ३ पौंड लेना तय हुआ और जमीन जो कहीं भी खरीद और रख न सकनेकी कड़ी शर्त थी उसके बदले यह निश्चय हुआ कि ट्रांसवालकी सरकार जिस हलके, महल्ले, वाड़ोंमें तै कर दे उसीमें हिंदुस्तानी जमीन ले सके। इस दफापर अमल करानेमें भी ट्रांसवाल सरकारने दिलमें चोर रखा। अतः ऐसे महल्लोंमें भी जरखरीद जमीन लेनेका हक तो नहीं ही दिया। हर शहर-कसबेमें जहां हिंदुस्तानी बसते थे, ये महल्ले नगरसे बहुत दूर और गंदी-से-गंदी जगहोंमें रखे गए। वहां पानी-रोशनीका सुभीता कम-से-कम था, पाखानोंकी सफाईका हाल भी वही था। यानी हम हिंदुस्तानी ट्रांसवालके 'पचम' बन गए और कह सकते हैं कि इन महल्लों और हिंदुस्तानके भंगी-वाड़ोंमें कुछ भी फर्क न था। लगभग यह स्थिति हो गई कि जैसे हिंदू भंगी-चमारको छूने और उनके पड़ोसमें बसनेसे 'अपवित्र' हो जाता है वैसे ही भारतीयके स्पर्श या पड़ोससे गौरा नापाक हो जाता ! फिर इस १८८५ के तीसरे कानूनका ट्रांसवालकी सरकारने यह अर्थ किया कि हिंदुस्तानी व्यापार भी इन महल्लोंमें ही कर सकते हैं। यह अर्थ सही है या नहीं, इसके निर्णयका अधिकार पचने ट्रांसवालकी अदालतोंको ही दे रखा था। इसलिए भारतीय व्यापारियोंकी स्थिति अति विपम हो गई। फिर भी कहीं वात-चीत चलाकर, कहीं मुकदमें लड़कर, कहीं सिफारिशसे काम लेकर भारतीय व्यापारी अपनी स्थितिकी रक्षा समुचित रीतिसे कर सके। बौद्ध-युद्ध आरंभ होनेके समय ट्रांसवालमें भारतीयोंकी ऐसी दुःखद और अनिश्चित स्थिति थी।

अब हम फ्री स्टेटकी दशा देखें। वहां दस-पंद्रहसे अधिक हिंदुस्तानी दुकाने नहीं खुलवाई थी कि गोरोंने जबदस्त आदोलन उठा दिया। वहांकी धारा सभाने चौकसीसे काम करके खतरेकी जड़ ही काट दी। उसने एक कड़ा कानून



पास करके और नुकसानका नगण्य मुआवजा देकर, हर एक हिंदुस्तानी दुकानदारको फ्री स्टेटसे निकाल बाहर किया। इस कानूनके अनुसार कोई हिंदुस्तानी व्यापारी, जमीनके मालिक या किसानकी हैसियतसे फ्री स्टेटमें नहीं रह सकता था। चुनावमे मत देनेका अधिकारी तो हो ही नहीं सकता था। खास तौरसे इजाजत हासिल करके मजदूर या होटलके 'वेंटर' (खिदमतगार) के रूपमें रह सकता था! यह इजाजत भी हर एक प्रार्थीको मिल ही जाय, सो बात नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि फ्री स्टेटमे कोई प्रतिष्ठित भारतीय दो-चार दिन रहना चाहे तो भी बड़ी कठिनाईसे ही रह सकता था। वीअर-युद्धके समय वहा कोई चालीस हिंदुस्तानी वेंटरोंके सिवा और कोई हिंदुस्तानी नहीं था।

केप कॉलोनीमे यद्यपि हिंदुस्तानियोंके खिलाफ थोडा आंदोलन होता रहता था, स्कूलो आदिमे भारतीय बालकका प्रवेश नहीं हो सकता, होटलो वगैरहमे हिंदुस्तानी मुसाफिर गायब ही उतर सकता—इस तरहके हिंदुस्तानियोंकी अवहेलना करनेवाले बरताव तो वहा भी होते थे, फिर भी व्यापार करने और जमीन रख सकनेके बारेमे कोई रुकावट बहुत दिनोतक वहा नहीं थी।

ऐसा होनेके कारण मुझे बता देने चाहिए। एक तो, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, केपटाउनमे खासतौरसे और सारी केप कॉलोनीमे आमतौरसे मलायी लोगोंकी आबादी अच्छी खासी तादादमे थी। मलायी लोग खुद मुसलमान हैं। इसलिए हिंदुस्तानी मुसलमानोंके साथ तुरत उनकी राह-रस्म हो गई और उनके जरिये दूसरे हिंदुस्तानियोंसे भी थोड़ी-बहुत तो हो ही गई। इसके सिवा कुछ हिंदुस्तानी मुसलमानोंने मलायी स्त्रियोंसे ब्याह भी कर लिया। मलायीके खिलाफ किसी तरहका कायदा-कानून केपकी सरकार कैसे बना

सकती थी ? उनकी तो केप कॉलोनी जन्मभूमि है । उनकी भाषा भी डच है । डच लोगोंके साथ ही वे शुरूसे ही रहते आ रहे हैं । अत रहन-सहनमें भी उनकी बहुत नकल करने लगे हैं । इन कारणोंसे केप कॉलोनीमें सदा कम-से-कम वर्णद्वेष रहा है । इसके सिवा केप कॉलोनी सबसे पुराना उपनिवेश और दक्षिण अफ्रीकाका शिक्षण-केन्द्र है । इससे वहाँ प्रौढ, विनयशील और उदारहृदय गोरे भी पैदा हुए । मैं तो मानता हूँ कि दुनियामे एक भी ऐसी जगह और एक भी जाति ऐसी नहीं है जहाँ या जिसमें उपयुक्त अवसर मिले और संस्कार डाले जाय तो सुन्दर-से-सुन्दर मानव-पुष्प उत्पन्न न हो सकते हो । दक्षिण अफ्रीकामे सौभाग्यसे मुझे सभी जगह इसकी मिसालें दिखाई दीं ; पर केप कॉलोनीमें ऐसे पुरुषोंका अनुपात बहुत बड़ा है । उनमें सर्वाधिक विख्यात और विद्वान् श्री मेरीमैन है, जो दक्षिण अफ्रीकाके ग्लेडस्टन कहे जाते हैं और केप कॉलोनीके प्रधान मंत्री भी रह चुके हैं । श्री मेरीमैनके बराबर नहीं तो उनसे दूसरे दरजेपर विराजने-वाला है सपूर्ण 'आइजर परिवार, और मोल्टीनो परिवार'का भी वही पद है । 'आइजर' घरानेमें कानूनके महाहूर हिमा-यती श्री डब्ल्यू० पी० 'आइजर' हो गए हैं । वह एक समय केप कॉलोनीके मंत्रिमंडलमें भी रह चुके हैं । उनकी वहन डॉलिव

---

<sup>१</sup> श्रीमेरीमैन १८७२में केप कॉलोनीमें उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित होनेके बाद उसके हरएक मंत्रिमण्डलके सदस्य रहे और १९१०में जब यूनियनकी स्थापना हुई तो अंतिम मंत्रिमण्डलके प्रधान थे ।

<sup>२</sup> सर जान मोल्टीनो १८७२ के प्रथम मंत्रिमण्डलमें प्रधान मंत्री थे ।

<sup>३</sup> श्रीआइजर कुछ दिनोंतक एटर्नी-जनरल रहे और पीछे प्रधान मंत्री हुए ।

श्राइनर दक्षिण अफ्रीकाकी लोकप्रिय विदुषी थी और । जहाँ-जहाँ अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहाँ-वहाँ विख्यात थी । मनुष्यमात्रपर उनका प्रेम असीम था । आँखोंसे जब देखिए प्रेमका झरना ही झरता होता । इस बहनने जब 'ड्रीम्स' (स्वप्न) नामक पुस्तक लिखी तबसे वह 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नामसे प्रसिद्ध होगई । इनकी सरलता इतनी थी कि ऐसे प्रतिष्ठित और प्रख्यात कुलकी तथा विदुषी होते हुए भी घरके बरतनतक खुद माँजा करती थी । श्री मेरीमैन और इन दोनों परिवारोंने सदा हवशियोंका पक्ष लिया । जब-जब उनके हकपर हमला होता, उनकी जबर्दस्त हिमायत करते । उनके प्रेमकी धारा हिन्दुस्तानियोंकी ओर भी बहती थी, यद्यपि वे सभी हवशी और हिन्दुस्तानीमें भेद करते थे । उनकी दलील यह थी कि हवशी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके आगमनसे पहलेके बाण्डे है, इसलिए गोरे उनके स्वाभाविक अधिकारोंको छीन नहीं सकते, पर हिन्दुस्तानियोंके बारेमें उनकी प्रतियोगिताका खतरा दूर करनेके लिए कोई कानून बनाया जाय तो यह विलकुल अन्याय नहीं माना जायगा । फिर भी उनकी हमदर्दी हमेशा हिन्दुस्तानियोंके साथ रहती । स्वर्गीय गोपालकृष्ण-गोखले जब दक्षिण अफ्रीका पधारे तब उनके सम्मानमें वहाँ जो पहली सभा केप टाउनके टाउनहालमें हुई उसमें श्री श्राइनरने सभापतिका आसन ग्रहण किया था । श्री मेरीमैनने भी उनके साथ बड़े सौजन्य और विनयसे बातें की और हिन्दुस्तानियोंके साथ हमदर्दी जाहिर की । केप टाउनके अखबारोंमें भी और जगहके पत्रोंकी तुलनामें पक्षपातकी मात्रा बहुत कम थी ।

श्री मेरीमैन आदिके बारेमें मैंने जो कुछ लिखा है वह दूसरे यूरोपियनोंके विषयमें भी कहा जा सकता है । यहाँ तो मैंने भिसालके तौरपर उपर्युक्त सर्वमान्य नाम दे दिये हैं ।

इन कारणोंसे यद्यपि केप कॉलोनीमें रंगद्वेष सदा कम रहा, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाके शेष तीनों उपनिवेशोंमें जो हवा हर वक्त बहा करती थी उसकी गंध केप कॉलोनीमें पहुंचे ही नहीं, यह कैसे हो सकता था ? अतः वहाँ भी नेटालके जैसे भारतीयोंके प्रवेश और व्यापारके लिए परवानेकी शर्त लगा देनेवाले कानून पास हुए । यों कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीकाका दरवाजा जो हिंदुस्तानियोंके लिए विलकुल खुला हुआ था, बोअर-युद्धके समय वह लगभग बंद हो गया था । ट्रांसवालमें उनके प्रवेशपर ऊपर बताये हुए तीन पौडके करके सिवा और कोई रोक न थी । पर जब नेटाल और केप कॉलोनीके बंदरगाह उनके लिए बंद हो गए तब बीचमें पड़नेवाले ट्रांसवालको जानेवाले हिंदुस्तानी कहा उतरे ? एक रास्ता था—पुर्तगीजोंका डेलगोआवे बंदर । पर वहाँ भी ब्रिटिश उपनिवेशोंकी कर्तबेगी नकल की गई । इतना कह देना चाहिए कि बहुत कठिनाइया उठाकर या रिश्वत देकर नेटाल और डेलगोआवेके रास्ते भी इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी ट्रांसवाल पहुंच पाते थे ।

; ६ ;

## भारतीयोंने क्या किया ?—१

भारतीय जनताकी स्थितिका विचार करते हुए पिछले प्रकरणोंमें हम अज्ञात देख चुके हैं कि उसपर होनेवाले हमलोका उसने किस तरह सामना किया, पर सत्याग्रहकी उत्पत्तिकी कल्पना पाठकोंको मली भाति हो सके इसके लिए जरूरी है कि भारतीय जनताकी सुरक्षाके विषयमें किये गए प्रयत्नोंपर एक अलग प्रकरण लिखा जाय ।

१८९३ ई० तक दक्षिण अफ्रीकामें ऐसे स्वतंत्र और यथेष्ट शिक्षा प्राप्त भारतीय थोड़े ही थे जो भारतीय जनताके लिए लड़ सकें। अंग्रेजी जाननेवाले हिंदुस्तानियोंमें मुख्यतः कर्क और मुनीम थे। वे अपना काम चलाने भर अंग्रेजी जानते थे, पर अजिया आदि उनसे नहीं लिखी जा सकती थी। फिर उन्हें अपने मालिकको सारा वक्त देना ही चाहिए था। इनके सिवा अंग्रेजी पढा हुआ दूसरा वर्ग उन हिंदुस्तानियोंका था जो दक्षिण अफ्रीकामें ही पैदा हुए थे। इनमें अधिकांश गिरमिटियोंकी मंतान थे और उनमेंसे बहुतेरे जिन्होंने थोड़ीसी योग्यता भी प्राप्त कर ली हो, कचहरीमें दुभापियाकी सरकारी नौकरी करते थे। अतः जातिकी उनसे बड़ी-से-बड़ी सेवा, हमदर्दी दिखानेके सिवा और क्या हो सकती थी? इसके सिवा गिरमिटिया और गिरमिटमुक्त दोनों मुख्यतः सयुक्त प्रांत और मद्राससे आये हुए हिंदुस्तानी थे। स्वतंत्र, भारतीय थे गुजरातके मुसलमान और वे खास तौरसे व्यापारी थे। हिंदू अधिकांश कर्क-मुनीम थे, यह हम पीछे देख चुके हैं। इनके अतिरिक्त थोड़े पारसी भी व्यापारी और कर्क वर्गमें थे। पर सारे दक्षिण अफ्रीकामें पारसियोंकी आवादी ३०-४० से अधिक होनेकी संभावना न थी। स्वतंत्र व्यापारी वर्गमें चौथी जमात थी सिवके व्यापारियोंकी। सारे दक्षिण अफ्रीकामें दो सौ या इससे कुछ अधिक सिंधी होंगे। कह सकते हैं कि उनका व्यापार हिंदुस्तानके बाहर जहाँ कहीं भी वे बसे हैं वहाँ एक ही तरहका होता है। वे 'फैसी गुड्स'के व्यापारी कहे जाते हैं। 'फैसी गुड्स'के मानी हैं रेशम, जरी वगैरहकी चीजे, बवर्डके वने गौगम, चन्दन और हाथी दातके नक्काशीदार सडूक वगैरह घरकी सजावट। इसी तरहका सामान वे खास तौरसे बेचते हैं। उनके ग्राहक ज्यादातर गोरे ही होते हैं।

गिरमिटियोंको गोरे 'कुली' कहकर ही पुकारते हैं। कुलीके मानी हैं वोभ ठोनेवाला। यह नाम इतना चल गया है कि गिरमिटिया खुद भी अपने आपको 'कुली' कहते नहीं हिचकता। पीछे तो यह नाम भारतीयमात्रको मिल गया। सैकड़ों गोरे हिंदुस्तानी वकील और हिंदुस्तानी व्यापारीको क्रमशः 'कुली वकील' और 'कुली व्यापारी' कहा करते। इस विभेक्षणके व्यवहारमें कोई दोष है, इसे कितने ही गोरे तो मानते या जानते भी नहीं; पर बहुतेरे तो तिरस्कार प्रकट करनेके लिए ही 'कुली' शब्दका उपयोग करते। इससे स्वतंत्र भारतीय अपने आपको गिरमिटियोंसे भिन्न बतानेका यत्न करते हैं। इस तथा जिन्हे हम हिंदुस्तानसे ही साथ ले जाते हैं उन कारणोंसे भी स्वतंत्र भारतीय वर्ग और गिरमिटिया तथा गिरमिटमुक्त वर्गके बीच दक्षिण अफ्रीकामें भेद किया जा रहा था।

इस दुःखके दरियाके सामने बांध बननेका काम स्वतंत्र हिंदुस्तानी व्यापारियों और खास तौरसे मुसलमान व्यापारियोंने अपने ऊपर लिया। पर गिरमिटियों या गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंको साथ लेनेकी कोशिश इरादेके साथ नहीं की गई। यह बात उस वक्त शायद सुझी भी नहीं। सुझती भी तो उन्हें साथ लेनेसे काम बिगड़नेका ही डर होता। दूसरे मुख्य आपत्ति तो स्वतंत्र व्यापारी वर्गपर ही है, यह सोचा गया। इसलिए बचावके प्रयत्नमें ऐसा संकुचित रूप धारण किया। इन स्वतंत्र व्यापारियोंमें अंग्रेजीके ज्ञानका अभाव था। हिंदुस्तानमें उन्हें सार्वजनिक कामोंका अनुभव नहीं हुआ था, पर इन कठिनाइयोंके होते हुए भी कह सकते हैं कि उन्होंने मुसीबतका सामना डटकर किया। उन्होंने युरोपियन वकीलोंकी मदद ली, अर्जियां तैयार कराईं, जब-तब शिष्ट-मण्डल भी ले गए और जहा-जहा वन पड़ा और सूझा वहा-वहा अन्यायसे

लोहा लिया। यह स्थिति १८९३ ई० तक थी।

इस पुस्तकको अच्छी तरह समझनेके लिए पाठकोको कुछ मुख्य तिथिया याद रखनी होंगी। पुस्तकके अतमे मुख्य घटनाओंका तारीखवार परिशिष्ट दिया गया है। उसे वे समय-समयपर देख लिया करेंगे तो इस युद्धका रहस्य और रूप समझनेमें मदद मिलेगी। १८९३ तक फ्री स्टेटमें हमारी हस्ती मिट चुकी थी। ट्रांसवालमें १८८५का तीसरा कानून जारी था और नेटालके अदर यह विचार चल रहा था कि कैसे केवल गिरमिटिया हिंदुस्तानी ही वहां रह सकें, दूसरे निकाल वाहर किए जाए, और इस उद्देश्यसे उत्तरदायी शासनव्यवस्था प्राप्त कर ली गई थी।

१८९३ ई० के अप्रैल महीनेमें मैं दक्षिण अफ्रीका जानेके लिए हिंदुस्तानसे रवाना हुआ। गिरमिटियोंके पिछले इतिहासका मुझे कुछ भी ज्ञान न था। मैं केवल स्वार्थ बुद्धिसे गया। पोरबंदरके मेमन लोगोंकी दादा अब्दुल्लाके नामकी एक मशहूर कोठी डर्वनमें कारवार करती थी। उतनी ही प्रसिद्ध और उसकी प्रतिस्पर्द्धी कोठी पोरबंदरके दूसरे मेमन तैयब हाजी खान मुहम्मदके नामकी प्रिटोरियामे थी। दुर्भाग्यवश दोनों प्रतिस्पर्द्धियोंके बीच एक बड़ा मुकदमा चल रहा था। दादा अब्दुल्लाके एक साथीने, जो पोरबंदरमें थे, सोचा कि मुझे जैमा नौसिलिया फिर भी बैरिस्टर वहा चला जाय तो मुकदमा लड़नेमें उन्हें कुछ ज्यादा सहूलियत होगी। मुझे सा निपट अनजान और अनाडी वकील उनका काम विगाड देगा, इमका डर उन्हें नहीं था। कारण कि मुझे कुछ अदालतमें जाकर काम करना नहीं था। मुझे तो महज उन घुरंधर वकील-बैरिस्टरोंको, जो उन्होंने नियुक्त कर रखे थे, मामला समझा देना यानी दुभापियेका काम करना था। मुझे नए अनुभव प्राप्त करनेका शौक था। मुसाफिरी रचती

थी। वैरिस्टरके रूपमे दलालको कमीशन देना जहरसा लगता था। काठियावाड़की साजिशोंमें मेरा दम घुटता था। एक ही बरसके बंधनपर जाना था। मैंने सोचा कि मेरे लिए तो इस इकरारनामेमे कुछ भी अड़चन नहीं है। हानि तो है ही नहीं; क्योंकि मेरे जान-आने और रहनेका खर्च दादा अब्दुल्ला ही देनेवाले थे। इसके अलावा १०५ पौडका मेहनताना भी मिलता। मेरे स्वर्गीय बड़े भाईकी मारफत ये सारी बातें तै हूँ थी। मेरे लिए तो वह पिता तुल्य थे। उनकी रजामंदी मेरी रजामंदी थी। उन्हें मेरे दक्षिण अफ्रीका जानेकी बात पसंद आई और १८९३ ई० के मई महीनेमे मैं डब्लु जा पहुंचा।

वैरिस्टरकी बात तो पूछनी ही क्या ? मैं अपनी समझके अनुसार वडिया फ्रॉक-कोट इत्यादि डाटकर शानसे जहाजसे उतरा। पर उतरते ही मेरी आंखे कुछ-कुछ खुल गईं। दादा अब्दुल्लाके जिस साम्नीके साथ बात हुई थी उसने जो वर्णन मुझे सुनाया था वह तो मुझे उलटा ही दिखाई दिया। इसमे उसका कोई दोष न था। यह था उसका भोलापन, सरलता और परिस्थितिका अज्ञान। नेटालमे हिंदुस्तानियोंको जो-जो तकलीफे भुगतनी पडती थी उन सबका उसे पता नहीं था। और जिन बर्तवियोंमे हमारा तीव्र अपमान था वे उन्हें अपमानकारक नहीं जान पड़े थे; पर मेरी आंखोने तो पहले ही दिन यह देख लिया कि गोरोंका बर्तव हमारे साथ बहुत ही अशिष्ट और अपमानकर है।

नेटाल पहुंचनेके १५ दिनके अंदर ही कचहरियोंमें मुझे जो कड़वे अनुभव हुए, ट्रेनके अंदर जो कष्ट उठाने पड़े, रास्तेमे जो मार खाई, होटलमें जगह पानेमें जो कठिनाई हुई, वल्कि जगह पाना लगभग नामुमकिन था—इस सबका वर्णन मैं यहाँ नहीं करूंगा। इतना ही कहूंगा कि ये सारे अनुभव मेरी रग-रग मे समा गए। मैं तो सिर्फ एक मुकदमेके लिए गया था,



स्वार्थ और कुतूहलकी दृष्टिसे, इसलिए इस पहले वर्षमे तो मैं इन दुखोंका साक्षी और अनुभवकर्ता मात्र रहा। मेरे धर्मका पालन यहीसे आरम्भ हुआ। मैंने देखा कि स्वार्थ-दृष्टिसे दक्षिण अफ्रीका मेरे लिए बेकार मुल्क है। जहाँ अपमान होता हो वहाँ रहकर पैसा कमाने या सैर-सपाटा करनेका लोभ मुझे तनिक भी न था। यही नहीं, इससे अत्यन्त अरुचि थी। मेरे सामने धर्मसंकट खड़ा हो गया। मेरे सामने दो रास्ते थे। एक यह कि जिस स्थितिको मैं जान नहीं सकता था उसे अब जान लिया। इसलिए दादा अब्दुल्लाके साथ किए हुए इकरारनामेसे छुटकारा प्राप्तकर भाग जाऊँ। दूसरा यह कि चाहे जो संकट सहने पड़े सड़ू और अगीकृत कामको पूरा करूँ। कडाकेंकी ठंडमे मारिट्सवर्ग स्टेशनपर रेलवे पुलिसके घक्के खाकर, यात्रा स्थगित कर और ट्रेनसे उतरकर, वैटिंग रूममे बैठा था। मेरा सामान कहाँ है, इसकी खबर मुझे न थी। किसीसे पूछनेकी हिम्मत भी नहीं होती थी। कहीं फिर अपमान हो, मार खानी पड़े तो? ऐसी दशामे, ठंडसे कापते हुए नींद कहाँसे आती। मन चक्करदार भूलैपर सवार हुआ। बड़ी रातको निश्चय किया, "निकल भागना तो नामर्दा है, लिए हुए कामको पूरा करना ही चाहिए। व्यक्तिगत अपमान सहना पड़े, मार खानी पड़े, तो सह और खाकर भी प्रिटोरिया पहुँचना ही चाहिए।" प्रिटोरिया मेरे लिए केंद्र स्थान था। मुकदमा वहीं चल रहा था। अपना काम करते हुए कोई उपाय हो सके तो करूँ। यह निश्चय कर लेनेपर मनको कुछ शांति हुई, हृदयमे कुछ बल भी आया। पर मैं सो तो नहीं हीँ सका।

सबेरा होते ही मैंने दादा अब्दुल्लाकी कोठी और रेलवेके जनरल मैनेजरको तार किया। दोनों जगहसे जवाब भी आ गया। दादा अब्दुल्ला और उनके उस वक्त नेटालमे

रहनेवाले सभी सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम भूवेरीने फौरन सब प्रवचन कर दिया । भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपने हिंदुस्तानी आढ-तियोंको मेरी फिक्र रखनेके लिए तार किए । जनरल मैनेजरसे भी मिले । आढतियोंको भेजे हुए तारके फलस्वरूप मारित्सवर्गके भारतीय व्यापारी आकर मुझसे मिले । उन्होंने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि आपके जैसे कड़े अनुभव हम सबको हो चुके हैं । पर हम इसके आदी हो गये हैं, इसलिए इसकी परवा नहीं करते । व्यापार करना और नाजुक दिल रखना दोनों बातें साथ कैसे चल सकती हैं ? इसलिए पैसेके साथ-साथ अपमान भी मिले तो उसे भी वक्तसमे धर लेनेका नियम हमने स्वीकार कर लिया है । उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इस स्टेशनपर हिंदुस्तानियोंको सदर दरवाजेसे आनेकी मनाही है और टिकट लेनेमें भी उन्हें बड़ी कठिनाई होती है । उसी रातमें जो ट्रेन आई उससे मैं रवाना हो गया । मेरा निश्चय ठीक था या नहीं, इसकी परीक्षा अत्यन्तमीने पूरे तौरपर की । प्रिटोरिया पहुंचनेके पहले मुझे और अपमान सहने पड़े और मार बर्दाश्त करनी पड़ी । पर इस सबका मेरे मनपर यही असर हुआ कि मेरा निश्चय और पक्का हो गया ।

यो १८९३ में मुझे अनायास दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिका सच्चा अनुभव हो गया । वैसा अवसर आनेपर प्रिटोरियाके भारतीयोंके साथ मैं इस विषयमें बातचीत करता, उन्हें समझाता भी, पर इससे अधिक मैंने कुछ नहीं किया । मुझे ऐसा जान पडा कि दादा अब्दुल्लाके मुकदमेकी पैरवी करना और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंके दुखके निवारणकी चिन्ता करना, ये दोनों बातें साथ नहीं चल सकती । मैंने देखा कि दोनोंको साधनेकी कोशिशमें दोनों जाएंगे । इस तरह करते-करते १८९४ आ पहुंचा । मुकदमा भी खतम हो

गया। मैं डर्वन लौटा। देश लौटनेकी तैयारी की। दादा अब्दुल्लाने मेरी विदाईके लिए एक जलसा भी किया। उसमे किसीने डर्वनके 'मर्करी' अखबारका एक पर्चा मेरे हाथमें दिया। उसमे धारा सभा नेटाल असेंबलीकी कारवाइके विवरणमे कुछ पक्तियां मैंने 'भारतीय मताधिकार' ( इंडियन फ्रेन्चाइज ) उपगीर्णकके नीचे पढी। सरकारकी ओरसे उसमे एक विल पेश किया गया था जो हिंदुस्तानियोको धारा सभाके चुनावमे मत देनेके अधिकारसे वंचित करता था। मैंने देखा कि हिंदुस्तानियोके सारे हक छीन लेनेकी यह शुरुआत है। उस मौकेपर किये गए भाषणोमे ही यह डरादा स्पष्ट था। जलसेमे आये हुए सेठो आदिको मैंने वह खबर पढ़कर सुनाई। जितना समझते बना समझाया भी। सारी हकीकत तो मैं जानता नहीं था। मैंने उन्हें सलाह दी कि हिंदुस्तानियोको इस हमलेका सामना डटकर करना चाहिए। उन्होंने भी इस बातको कबूल किया, पर कहा कि इस तरहकी लड़ाई हमारे लडे नहीं लड़ी जा सकती और मुझसे रुक जानेका आग्रह किया। मैंने यह लड़ाई लडने तक, यानी महीने दो महीने, रुक जाना मजूर किया। उसी रात धारा सभाको भेजनेके लिए अर्जी तैयार की। विलके और वाचन मुलतवी रखनेके लिए तार भेजा गया। तुरत एक कमेट्टी बनाई गई। उसके अध्यक्ष सेठ अब्दुल्ला हाजी बनाये गये। तार उन्हीके नामसे भेजा गया। विलकी कारवाइ दो दिन रुकी रही। दक्षिण अफ्रीकाकी धारा सभाओं-मेसे नेटालकी धारा सभामे हिंदुस्तानियोका यह पहला आवे-दनपत्र था। उसका असर तो अच्छा हुआ, पर विल पास हुआ ही। उसका अंत क्या हुआ, यह तो चौथे प्रकरणमे बता चुका हू। इस तरह लडनेका वहा हिंदुस्तानियोका यह पहला अनुभव था। इससे उनमे खूब जोश पैदा हुआ। रोज सभाएं होती और

अधिकाधिक लोग उनमें सम्मिलित होते। इस कामके लिए जितना चाहिए था उससे अधिक पैसा इकट्ठा हो गया। नकलें करने, दस्तखत लेने आदिके कामोंमें मदद करनेके लिए बिना पैसा लिए और पासका पैसा लगाकर काम करनेवाले भी बहुसंख्यक स्वयंसेवक मिल गये। गिरमिटमुक्त हिंदुस्तानियोंकी सतान भी इस काममें उत्साहके साथ शामिल हुई। ये सभी अंग्रेजी जाननेवाले और सुंदर अक्षर लिखनेवाले युवक थे। उन्होंने नकलें तैयार करने आदिका काम रात-दिनका ख्याल न कर वड़े उत्साहसे किया। एक महीनेके अंदर ही दस हजार हस्ताक्षरों वाला आवेदनपत्र लार्ड रिपनके पास भेज दिया और मेरा तात्कालिक काम पूरा हुआ।

मैंने विदा मागी; पर भारतीय जनताको इस संघर्षमें इतना रस मिलने लगा था कि अब वह मुझे छोड़ना ही नहीं चाहती थी। उसने कहा—“आप ही तो हमें समझाते हैं कि हमें जड़मूलसे उखाड़ फेंकनेका यह पहला कदम है। विलायतसे क्या जवाब आयेगा, इसे कौन जानता है? हमारा उत्साह आपने देख लिया। हम काम करनेको तैयार हैं। करना चाहते भी हैं। हमारे पास पैसा भी है। पर रास्ता दिखानेवाला न हुआ तो इतना किया-धरा बेकार हो जायगा। इसलिए हम तो मानते हैं कि कुछ दिन अर्थात् और रह जाना आपका फर्ज है।” मुझे भी दिखाई दिया कि कोई स्थायी सस्था हो जाय तो अच्छा है। पर रहूँ कहा और किस तरह? उन लोगोंने मुझे तनख्वाह देनेकी बात कही, पर मैंने तनख्वाह लेनेसे साफ इनकार कर दिया। सार्वजनिक कार्य बड़ी-बड़ी तनख्वाह लेकर नहीं हो सकता। फिर मैं तो गीब डालनेवाला था। रहना भी ऐसे ढंगमें चाहिए कि उस वक्तके मेरे विचारोंके अनुसार वैरिस्टरको फव्वे और जातिको भी शोभा दे। अर्थात् खर्च भी भारी था। लोगोंको दबाकर

उससे ऐसा करके आंदोलन बढ़ाना और इसके साथ-साथ अपनी रोजी भी कमा लेना, यह दो परस्पर विरोधी बातोंका संगम होगा। इससे मेरी अपनी काम करनेकी शक्ति भी घट जायगी। ऐसे अनेक कारणोंसे मैंने लोकमेवाके कार्यके लिए पैसा लेनेसे साफ इनकार कर दिया। पर मैंने यह सुझाव पेश किया कि आप लोगोमेंसे बड़े व्यापारी अपनी वकालतका काम मुझे दे और इसके लिए मुझे पेशगी 'रिटेंर' दे तो मैं रुकनेको तैयार हूँ। एक बरसका रिटेंर आप दे। एक बरस हम एक-दूसरेका अनुभव प्राप्त करें, सालभरके कामका हिसाब करके देखें और फिर ठीक जान पड़े तो आगे काम चलाए। इस सुझावका मचने स्वागत किया। मैंने वकालतकी सनदके लिए दरखास्त दी। वहाँकी 'ला सोसायटी' अर्थात् वकील मंडलने मेरी दरखास्तका विरोध किया। उनकी दलील एक ही थी कि नेटालके कानूनके मर्गाके अनुसार काले या गेहूँए रंगके लोगोको वकालतकी सनद नहीं दी जा सकती। मेरी दरखास्तकी हिमायत वहाँके मशहूर वकील श्री एस्कवने की, जो पहले एटर्नी जनरल थे और पीछे नेटालके प्रधान-मंत्री हो गये थे। आमतौरपर लंबे अरसेसे यह रिवाज चला आ रहा था कि वकालतकी सनदकी दरखास्त कानून-पंडितोमेंसे जो अग्रणी हों वह बिना मेहनतानेके अदालतके सामने पेश करें। इसी प्रथाके अनुसार श्री एस्कवने मेरी वकालत मजूर की। वह दादा अब्दुल्लाके बड़े (सीनियर) वकील भी थे। वकील-मंडलकी दलील बड़ी अदालत (सीनियर कोर्ट) ने रद्द करदी और मेरी दरखास्त मजूर कर ली। यो वकील-मंडलका विरोध बिना चाहे मेरी दूसरी प्रसिद्धिका कारण हो गया।

---

'वकील-बैरिस्टरको इस दृष्टिसे दिया हुआ पेशगी मेहनताना कि खरूत पड़नेपर काम लेनेका हक रहे।

दक्षिण अफ्रीकाके अखवारोने वकील-मडलकी हंसी उड़ाई और कुछने मुझे वधाई भी दी ।

जो कामचलाऊ कमेटी बनाई गई थी उसे स्थायी रूप दिया गया । मैंने कांग्रेसकी एक भी बैठक देखी तो नहीं थी, पर कांग्रेसके वारेमे पढा था । हिंदके दादा (दादा भाई) के दर्शन कर चुका था । उनकी मैं पूजा करता था । अतः कांग्रेसका भक्त तो होना ही चाहिए था । उसके नामको लोकप्रिय बनानेका भी स्याल था । नया जवान नया नाम क्यों ढूढने जाय ? फिर उसमे मूल कर बैठनेका भी भारी भय था । अतः मैंने सलाह दी कि कमेटी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' नाम ग्रहण करे । कांग्रेसके विषयमे अपना अधूरा ज्ञान अधूरी रीतिसे मैंने लोगोके सामने रखा । १८९४ ई० के मई या जूनमे कांग्रेसकी स्थापना हुई । भारतीय सस्था और इस सस्थामे इतना अतर था कि नेटाल कांग्रेसकी बैठके बारहो मास हुआ करती थी और जो सालमे कम-से-कम तीन पाँड दे सके वही उसका सदस्य हो सकता था । अधिक-से-अधिक तो जो कुछ भी दिया जाय वह सघन्यवाद स्वीकार किया जाता । पाच-सात सदस्य सालाना २४ पाँड देनेवाले भी निकल आए । १२ पाँड देनेवालोंकी तादाद तो काफी थी । एक महीनेके अंदर कोई तीन सौ सदस्योंके नाम दर्ज हो गये । हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि जितने धर्मों और प्रान्तोंके लोग वहा थे उसमे शामिल हुए । पहले बरसभर काम बड़े जोशसे चला । सैठ लोग निजकी सवारियाँ लेकर दूर-दूरके गावोमे नये मेबर बनाने और चंदा इकट्ठा करने जाते थे । हर आदमी भागते ही पंसा नहीं दे देता था । उन्हें समझाना होता था । समझानेमे एक प्रकारकी राजनैतिक शिक्षा मिलती थी और लोग परिस्थितिसे परिचित होते थे । फिर हर महीने कम-से-कम एक बार तो कांग्रेसकी बैठक होती

ही थी। उसमें उस महीनेका पाउंड-पाईका हिमात्र मुनाया जाना और वह पान होता। महीनेके अंदर घटित सारी घटनाएँ भी मुनाई जाती और कार्रवाई लिय ली जाती। गदस्य-गण जुदा-जुदा नयाल पृच्छते। नए कामोपर मशवरा होता। यह मत्र करने हुए, जो लोग कभी ऐसी मभाओमे नही बोलते थे वे बनता बन जाने थे। भाषण भी शिष्टता, औचित्यका ध्यान रखकर ही करने थे। यह नारा हमारे लिए नया अनुभव था। लोगोंने उगमे बहुत रग लिया। इस बीच काउन्सिलके नेटालला (मताधिकार हरण) बिल नामजूर कर देनेकी खबर आई। उनगे लोगोका हर्ष और आत्म-विश्वास दोनों बढ़े।

जैसे बाहर काम हो रहा था वैसे लोगोंके अंदर काम करनेका आंदोलन भी चल रहा था। हमारी रहन-सहनके बारेमें मारे दक्षिण अफ्रीकामें गोरे जोरदार आंदोलन कर रहे थे। हिंदुस्तानी बहुत गंदे हैं, कजूस हैं, जिस मकानमे व्यापार करते हैं उसीमे रहते भी हैं, उनके घर जैसे' मांद हो, अपने आरामके लिए भी वे पैसा नही खर्च करते। ऐसे मूले, मक्खीचूस लोगोके साथ साफ-सुथरे, उदार और बहुत ज्यादा जरूरती वाले गोरे व्यापारमें कैसे प्रतियोगिता कर सकते हैं? यह उनकी हमेशाकी दलील थी। इससे घर साफ-सुथरा रखने, घर और दुकान अलग-अलग रखने, कपड़े साफ रखने, बड़ी कमाईवाले व्यापारीको फवने लायक रहन-सहन रखने आदिके बारेमें भी कांग्रेसकी बैठकोमे विवेचन और विवाद होता, सुझाव रखे जाते। कार्रवाई सारी मातृभाषामें ही होती।

इस सबसे लोगोको अनायास कितनी व्यावहारिक शिक्षा और राजनैतिक काम-काजका कितना अनुभव मिल रहा था, पाठक इसे समझ सकते हैं। कांग्रेसके ही अंतर्गत गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानियोंकी सन्तान अर्थात् नेटालमे ही जन्मे हुए

अंग्रेजी बोलनेवाले भारतीय युवकोंके सुभीतेके लिए एक शिक्षण-मंडल भी स्थापित किया गया। उसमें नामकी फीस रखी गई। मुख्य उद्देश्य था उन नौजवानोंको इकट्ठा करना, उनमें हिन्दुस्तानके प्रति प्रेम उत्पन्न करना और उसका सामान्य ज्ञान करा देना। साथ ही यह हेतु भी था कि स्वतंत्र भारतीय व्यापारी उन्हें अपना ही समझते हैं। यह उन्हें दिखा दिया जाय और व्यापारीवर्गमें भी उनके लिए आदर उत्पन्न किया जाय। अपना खर्च चलाते हुए भी कांग्रेसके पास एक बड़ी रकम इकट्ठी हो गई थी। उसकी जमीन खरीदी गई और इस जमीनकी आमदनी आजतक उसे मिला करती है।

इतना धैर्य मानने जानबूझ कर दिया है। सत्याग्रह कैसे स्वाभाविक रीतिसे उत्पन्न हुआ और लोग कैसे उसके लिए तैयार हुए। ऊपरके धैर्य जाने बिना पाठक इस बातको पूरी तरह नहीं समझ सकते थे। कांग्रेसके ऊपर मुसीबतें आईं, सरकारी अधिकारियोंकी ओरसे हमले हुए, उन हमलोंसे वह कैसे बची, यह और ऐसी दूसरी बातोंका जानने लायक इतिहास मुझे छोड़ देना पड़ रहा है। पर एक बात बताना जरूरी है। अतिशयोक्तिसे भारतीय जनता सदा बचती रहती। उसकी कमियां उसे दिखानेका यत्न सदा किया जाता। गोरोंकी दलीलोंमें जितनी सच्चाई होती, वह तुरंत स्वीकार कर ली जाती और गोरोंके साथ स्वतंत्रता और आत्मसम्मानकी रक्षा करते हुए सहयोग करनेके हर अवसरका स्वागत किया जाता। हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनका जितना समाचार वहाँके अखबार ले सकते थे उतना उन्हें दे दिया जाता और अखबारोंमें हिन्दुस्तानियोंपर बेजा हमला होता तो उसका बचाव भी दिया जाता।

नेटालमें जैसी 'नेटाल इंडियन कांग्रेस' थी वैसी ही संस्था



ट्रांसवालमें भी थी। पर ट्रांसवालकी सस्था नेटालसे सर्वथा स्वतंत्र थी। उनके विधानमें भी अंतर था। पर उसकी चर्चामें पाठकोको उलझाना नहीं चाहता। ऐसी सस्था केप टाउनमें भी थी। उसका विधान नेटाल और ट्रांसवाल दोनोंकी सस्थाओसे भिन्न प्रकारका था। फिर भी तीनोंके कार्य लगभग एक ही तरहके कहे जा सकते हैं।

१८९४का साल खतम हुआ। कांग्रेसका पहला बरस भी १८९५के मध्यमें पूरा हो गया। मेरा वकालतका काम भी मर्विकलोको पसंद आया। मेरा प्रवासकाल और लंबा हो गया। १८९६ में लोगोसे इजाजत लेकर ६ महीनेके लिए हिंदुस्तान लौटा, पर पूरे छ महीने भी न रह पाया था कि नेटालसे तार मिला और मुझे तुरत लौट जाना पडा। १८९६-९७ का हाल हमें अलग अध्यायमें मिलेगा।

: ७ :

## भारतीयोंने क्या किया ?—२

इस प्रकार नेटाल इंडियन कांग्रेसका काम स्थिर हो गया। मैंने भी लगभग ढाई बरस अधिकतर राजनैतिक काम करते हुए नेटालमें बिता लिए। अब मैंने सोचा कि अगर मुझे दक्षिण अफ्रीकामें अभी और रहना हो तो बाल-बच्चोंको भी साथ रखना जरूरी है। कुछ समय देशका दौरा कर आनेका भी मन हुआ। सोचा कि उस बीच भारतके नेताओंको नेटाल और दक्षिण अफ्रीकाके दूसरे भागोंमें बसनेवाले भारतीयोंकी स्थितिकी संक्षिप्त कल्पना भी करा दूंगा। कांग्रेसने ६ महीनेकी छुट्टी दी और मेरी जगह नेटालके सुप्रसिद्ध व्यापारी स्व० आदमजी मिया खाको मंत्री

नियुक्त किया। उन्होंने बड़ी होशियारीसे काम किया। स्व० आदमजी मिया खां अंग्रेजी अच्छी जानते थे। अनुभवसे अपने कामचलाऊ ज्ञानको उन्होंने खूब बढ़ा लिया था। गुजरातीका सामान्य अभ्यास था। उनका व्यापार खासतौरसे हवशियोंमें था। अतः जुलू भापा और हवशियोंके रस्म-रिवाजकी उन्हें अच्छी जानकारी थी। स्वभाव शांत और बहुत ही मिलनसार था। जितना जरूरी हो उतना ही बोलनेकी आदत थी। यह सब लिखनेका हेतु इतना ही है कि बड़ी जिम्मेदारीके पदपर काम करनेके लिए अंग्रेजीके या दूसरे अक्षरज्ञानकी जितनी आवश्यकता होती है उससे कहीं अधिक आवश्यकता सचाई, शान्ति, सहनशीलता, दृढता, अवसरकी पहचान और तदनुसृत कार्य करनेकी योग्यता, हिम्मत और व्यवहार-बुद्धिकी होती है। ये गुण न हों तो अच्छे-से-अच्छे अक्षरज्ञानकी भी सामाजिक काममें घेले भर कीमत नहीं होती।

१८९६ के मध्यमें मैं हिंदुस्तान लौटा। कलकत्तेके रास्ते आया, क्योंकि उस वक्त नेटालसे कलकत्ते जानेवाले स्टीमर आसानीसे मिल जाते थे। गिरमिटिया कलकत्ते या मद्राससे जहाजपर सवार होते थे। कलकत्तेसे वंदई आते हुए रास्तेमें मेरी ट्रेन छूट गई। इससे मुझे एक दिन इलाहाबादमें अटकना पड़ा। वहीसे मैंने अपना काम शुरू किया। 'पायोनियर'के मि० चेजनीसे मिला। उन्होंने सौजन्यके साथ बातें कीं। सचाईके साथ मुझे बता दिया कि उनका मुकाब उपनिवेशोंकी ओर है; पर कहा कि आप जो कुछ लिखेंगे उसे पढ़ जाऊंगा और अपने पत्रमें उसपर टिप्पणी भी लिखूंगा। मैंने इतनेको ही काफी समझा।

देशमें रहनेके दिनोमें दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें मैंने एक पुस्तिका लिखी। उस पर लगभग सभी अखबारोंमें टीका-टिप्पणी हुई। उसके दो संस्करण

छपवाने पड़े। पांच हजार प्रतिधा देशके भिन्न-भिन्न स्थानों-में भेजी गईं। इन्हीं दिनों मैंने भारतके नेताओंके दर्शन किये—वर्द्धमें सर फीरोजशाह मेहता, न्यायमूर्ति वदरुद्दीन तैयबजी, न्यायमूर्ति रानटे इत्यादिके, पूनामें लोकमान्य-तिलक और उनके मंडल, प्रोफेसर भाडारकर, गोपाल कृष्ण गोखले और उनके मंडल वालोंके। वर्द्धसे आरंभ करके पूना और मद्रासमें भाषण भी किये। इनका विवरण यहाँ नहीं देना चाहता।

पर पूनाका एक पवित्र सस्मरण दिये बिना नहीं रह सकता, यद्यपि अपने विषयके साथ उसका कोई संबंध नहीं। पूनामें सार्व-जनिक सभा लोकमान्य तिलकके हाथमें थी। स्वर्गीय गोखले-जीका संबंध दक्षिण सभाके साथ था। मैं पहले मिला तिलक महाराजसे। उनसे मैंने जब पूनामें सभा करनेकी बात कही तो उन्होंने मुझसे पूछा—“आप गोपालरावसे मिल चुके हैं?”

मैंने पहले उनका आग्रह नहीं समझा। अतः उन्होंने फिर पूछा—“श्री गोखलेसे आप मिल चुके हैं? उन्हें जानते हैं?”

मैंने जवाब दिया—“अभी मिला नहीं। उन्हें नामसे ही जानता हूँ। पर मिलनेका इरादा है।”

लोकमान्य—“आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे परिचित नहीं जान पड़ते।”

मैंने कहा—“विलायतसे पढ़कर लौटनेके बाद मैं हिंदु-स्तानमें थोड़े ही दिन रहा और उस अल्पकालमें भी राजनीतिक मामलोंमें जरा भी दखल नहीं दिया। इस चीजको मैं अपने वसके बाहरकी बात मानता था।”

लोकमान्य—“तब मुझे आपको कुछ परिचय देना पड़ेगा। पूनामें दो पक्ष हैं—एक सार्वजनिक सभाका, दूसरा दक्षिण सभाका।”

मैंने कहा—“इसके बारेमें तो मैं कुछ-कुछ जानता हूँ।”  
 लोकमान्य—“यहाँ सभा करना तो आसान है; पर मैं देखता हूँ कि आप अपना सवाल सब पक्षोंके सामने रखना चाहते हैं और मदद भी सबकी चाहते हैं। यह बात मुझे पसन्द आती है, पर आपकी सभाका सभापति हमसे कोई हो तो दक्खिन सभावाले नहीं आयेंगे और दक्खिन सभाका कोई आदमी सभापति बने तो हमसे कोई नहीं आयगा। अतः आपको तटस्थ सभापति ढूँढना चाहिए। मैं तो इस मामलेमें सलाह भर दे सकता हूँ। दूसरी मदद मुझसे नहीं हो सकेगी। आप प्रोफेसर भांडारकरको जानते हैं ? न जानते हो तो भी उनके पास जाइए। वह तटस्थ माने जाते हैं। राजनैतिक कामोंमें शामिल भी नहीं होते, पर शायद आप उन्हें ललचा सकें। श्री गोखलेसे इस बारेमें बात कीजिए। उनकी सलाह भी लीजिए। बहुत करके वह भी आपको यही सलाह देंगे। प्रोफेसर भांडारकर जैसा पुरुष सभापति बनना स्वीकार कर ले तो मुझे विश्वास है कि दोनों पक्ष सभाका आयोजन करनेका काम उठा लेंगे। हमारी मदद तो इसमें आपको पूरी रहेगी।”

यह सलाह लेकर मैं गोखलेजीके पास गया। इस पहले मिलनमें ही उन्होंने मेरे हृदयमें कैसे राज्याधिकार प्राप्त कर लिया। इसे तो दूसरे प्रसंगमें लिख चुका हूँ। जिज्ञासुजन ‘यंग इंडिया’ या ‘नवजीवन’की फाइल देखनेका कष्ट करें। लोकमान्यकी सलाह गोखलेजीको भी पसंद आई। मैं तुरंत प्रोफेसर भांडारकरके पास पहुँचा। उन विद्वान् वुजुर्गके दर्शन किए। नेटालकी कहानी ध्यान-पूर्वक सुनकर उन्होंने कहा—“आप देखते हैं कि मैं तो सार्वजनिक जीवनमें क्वचित् ही पढता हूँ। अब तो वूढा भी हुआ। फिर भी आपको

‘देखिये ‘यंग इंडिया’ १३ जुलाई १९२१, ‘नवजीवन’ २८ जुलाई’ २१

बातोंने मेरे मनपर बहुत असर किया है। आपके सब पक्षोंकी सहायता प्राप्त करनेके विचारको मैं पसंद करता हूँ। फिर आप हिंदुस्तानकी राजनीतिसे अनजान जान पड़ते हैं और युवक हैं। अतः दोनों पक्षोंसे कहिए कि मैंने आपका अनुरोध स्वीकार कर लिया। जब सभा हो तो उनमेंसे कोई भी मुझे खबर दे देगा तो मैं जरूर हाजिर हूंगा।" पूनामें सुदर सभा हुई। दोनों पक्षोंके नेता उपस्थित हुए और भाषण दिये।

अनन्तर मैं मद्रास गया। वहाँ जस्टिस सुब्रह्मण्यम् ऐयरसे मिला। श्री आनंद चार्ल्स, 'हिंदू' के तत्कालीन संपादक श्री जी० सुब्रह्मण्यम्, 'मद्रास स्टैंडर्ड'के संपादक श्री परमेश्वरम् पिल्ले, प्रख्यात वकील श्री भाष्यम् आयंगर, मि० नॉटन आदिसे भी मिला। वहाँ भी सभा हुई। वहाँसे मैं कलकत्ते गया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महाराज ज्योतीन्द्रमोहन ठाकुर, 'इंग्लिशमैन' के संपादक मि० साडर्स आदिसे भी मिला। वहाँ सभाकी तैयारी हो रही थी कि इतनेमें, यानी १८९६ ई० के नवंबर महीनेमें, मुझे नेटालसे तार मिला—“अविलव आइए।” मैं समझ गया कि हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया आन्दोलन उठा होगा। अतः कलकत्तेका काम पूरा किये बिना ही पीछे फिरा और बम्बईसे जानेवाले पहले ही जहाजपर सवार हो गया। यह स्टीमर दादा अब्दुल्लाकी फर्मने खरीद लिया था और उसके अनेक साहसोंमें नेटाल और पोखदरके बीच जहाज चलानेका यह पहला साहस था। इस स्टीमरका नाम 'कोलैंड' था। इस स्टीमरके बाद तुरंत ही पर्सियन स्टीम नेविगेशन कम्पनीका स्टीमर 'नादरी' भी नेटालके लिए रवाना हुआ। मेरा टिकट 'कोलैंड'का था। मेरा कुटुंब भी मेरे साथ था। दोनों जहाजोंमें सब मिलाकर दक्षिण अफ्रीका जाने वाले कोई ८०० मुसाफिर रहे होंगे।

हिंदुस्तानमें जो आंदोलन मैंने किया वह इतनी बड़ी चीज

हो गया—और बड़े अखबारोंमेंसे अधिकांशने उसपर लेख-टिप्पणियां लिखी—कि रायटरने उसके बारेमें विलायत तार भेजे । यह खबर मुझे नेटाल पहुंचते ही मिली । विलायतके तारोंपरसे रायटरके वहाँके प्रतिनिधिने एक मुस्तसर तार दक्षिण अफ्रीका भी भेजा । इस तारमें जो कुछ मैंने हिंदुस्तानमें कहा था उसमें थोड़ा नमक-मिचं लगा दिया गया था । ऐसी अतिशयोक्ति हम अकसर होते देखते हैं । यह सब जान-बूझकर नहीं किया जाता । बहुधा लोभ किसी चीजको ऊपर-ऊपरसे पढ लेते हैं । उनका कुछ अपना खयाल तो होता ही है । उसका एक खुलासा होता है । दिमाग उसका एक दूसराही खुलासा बना लेता है । फिर वह जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ उसका एक नया ही अर्थ किया जाता है । ये सारी बातें अनायास हुआ करती हैं । सार्वजनिक कामोंमें यह खतरा रहता है और यह उनकी हृद भी होती है । हिंदुस्तानमें मैंने नेटालके गोरोंपर आक्षेप किए । गिरमिटियाँपर लगाये गए तीन पौडके करके विरुद्ध बहुत कड़ी बातें कहीं । सुब्रह्मण्यम् नामक निरपराध गिरमिटियाँको उसके मालिकने पीट दिया । उसके जन्म मैंने अपनी आँखों देखे । उसका सारा मामला मेरे ही हाथमें था । इससे उसकी तसदीर अपनी शक्तिके अनुसार मैं ठीक-ठीक खींच सका था । इस सबका खुलासा जब नेटालवासी गोरोंने पढ़ा तब वे मुझपर बहुत क्रुद्ध हुए । खूबी यह थी कि जो कुछ मैंने नेटालमें लिखा था वह हिंदुस्तानमें कहीं और लिखी हुई बातोंसे अधिक तीखा और अधिक व्योरेवार था । हिंदुस्तानमें मैंने एक भी बात नहीं कही थी जिसमें तनिक भी अतिशयोक्ति हो, पर अनुभवसे मैं इतना जानता था कि किसी भी घटनाका वर्णन अनजान आदमीके सामने करो तो जितना अर्थ हमने उसमें रखा हो वह अनजान श्रोता या पाठक उससे अधिक अर्थ उसमें

देखता है। इससे जानबूझकर हिंदुस्तानमें नेटालका चित्र मैंने कुछ हल्का ही खींचा था। पर नेटालमें तो मेरा लेन बहुत थोड़े गोरे पटते और उमकी परवाह करनेवाले और भी कम होते। हिंदुस्तानमें कहीं हुई बातके विषयमें इसका उल्टा ही होता और हुआ। रायट्गके खुलासोंको तो हजारों गोरे पढ़ते थे। फिर जो वान नारमें लिखने लायक नमस्की गईं हो उमका महत्व जितना वास्तवमें हो उससे अधिक नमस्का जाता है। नेटालके गोरे जितना मोचते थे उतना अमर हिंदुस्तानमें किए हुए मेरे कामका पडा होता तो गिरमिटकी प्रथा शायद बढ़ ही जाती और इससे सैकड़ों गोरे मालिकोका नुकसान होता। इसके सिवा यह भी समझा जा सकता है कि नेटालके गोरोंकी हिंदुस्तानमें बदनामी हुई।

इस प्रकार नेटालके गोरोंका पारा गरम हो रहा था कि इतनेमें उन्होंने मुना कि मैं वाल-बच्चोंके साथ 'कोलैंड' जहाजमें लौट रहा हूँ। उस जहाजमें ३-४ सौ हिंदुस्तानी यात्री हैं। उमीके साथ 'नादरी' नामका दूसरा स्टीमर भी उतने ही मुसाफिर लेकर आ रहा है। इससे बगती आगमें घी पड़ा और वह बड़े जोरसे भडक उठी। नेटालके गोरोंने बड़ी-बड़ी सभाएँ की और लगभग सभी प्रमुख यूरोपियन उनमें शामिल हुए। खासतौरसे मेरी और आमतौरसे हिंदुस्तानी कामकी कड़ी आलोचना की गईं। 'कोलैंड' और 'नादरी' के आगमनको 'नेटालपर चढ़ाई' का रूप दिया गया। सभामें बोलनेवालोंने यह अर्थ निकाला कि मैं इन ८०० यात्रियोंको साथ ले आया हूँ और नेटालको स्वतंत्र भारतीयोंसे भर देनेके प्रयत्नमें यह मेरा पहला कदम है। सभामें एक-मतसे यह प्रस्ताव पास हुआ कि दोनों स्टीमरोंके मुसाफिरोंको और मुझे जहाजसे उतरने न दिया जाय। नेटालकी सरकार उन्हें न रोके या न रोक सके तो अपनी जो कमेटी बनाई गई है

वह कानूनको अपने हाथमे ले ले और अपने ही बलसे हिन्दुस्तानियोंको उतरनेसे रोके। दोनो स्टीमर एक ही दिन नेटालके बंदर डबन पहुँचे।

पाठकोंको याद होगा कि १८९६ ई० में हिन्दुस्तानमे प्लेगके प्रथम दर्शन हुए। नेटालकी सरकारके पास हमें पीछे लौटानेका कोई कानून-संगत साधन तो था ही नहीं, प्रवेश प्रतिबंधक कानून तबतक नहीं बना था। नेटाल सरकारकी सारी हमदर्दी तो ऊपर लिखी हुई कमेटीकी तरफ ही थी। उसके एक मंत्री स्व० मि० एस्कव उसके काममे पूरा हिस्सा ले रहे थे। उसको भड़का भी वही रहे थे। सभी बंदरगाहोमे यह नियम है कि किसी भी जहाजमें छूतके रोगकी शिकायत हो या वह ऐसे बंदरगाहसे होकर आ रहा हो जहाँ कोई छूतवाला रोग फला हुआ हो तो वह इतने दिनोतक 'क्वारंटाईन'मे रखा जाय यानी उस जहाजके साथ संसर्ग बंद रखा जाय और मुसाफिर, माल आदिको उस अवधितक उतारनेकी मनाही रहे। यह रोक आरोग्य-नियमोंके बंदर और बंदरगाहके डाक्टरकी आज्ञासे ही लगाई जा सकती है। नेटालकी सरकारने इस प्रतिबंधके अधिकारका शुद्ध राजनैतिक उपयोग अर्थात् दुरुपयोग किया और दोनों स्टीमरोपर कोई भी छूतका रोगी न होनेपर भी दोनोको २३ दिनतक डबनके बंदरगाहके प्रवेशपथमे रोक रखा। इस बीच कमेटीका काम चलता रहा। दादा अब्दुल्ला 'कोर्लेड'के मालिक और 'नादरी' के एजेंट थे। कमेटीने उन्हें खूब धमकाया। जहाजको लौटा दे तो लामका लोभ भी दिखाया गया और न लौटानेपर व्यापारको धक्का पहुंचानेका डर भी कितनोने दिखाया। पर कोठीके हिस्सेदार डरपोक न थे। धमकी देनेवालोको जवाब दिया—जबतक हमारा सारा कार-बार चौपट न हो जाय, हम बिलकुल बरवाद न हो जाय, हम



लड़ते रहेंगे। पर डरकर इन निर्दोष यात्रियोंको लौटा देनेका पाप हम करनेवाले नहीं। जैसे आपको अपने देशका अभिमान है वैसे ही मान लीजिए कि हमें भी कुछ होना चाहिए।” इस कोठीके जो पुराने वकील मि० एफ० ए० लॉटन थे वह भी हिम्मतवाले और बहादुर थे।

इसी बीच भाग्यवश स्वर्गीय श्री मनसुखलाल हीरालाल नाजर (सूरतके कायस्थ और स्वर्गीय न्यायमूर्ति नानाभाई हरिदासके भानजे) अफ्रीका पहुँचे। मैं उन्हें जानता नहीं था। उनके जानेकी भी मुझे खबर नहीं थी। मुझे यह कहनेकी जरूरत गायद ही हो कि ‘नादरी’ और ‘कोलैंड’ के यात्रियोंके लानेमें मेरा कुछ भी हाथ नहीं था। उनमें अधिकतर तो दक्षिण अफ्रीकाके पुराने वाग्निदे थे। उनसे भी बहुतेरे ट्रांसवाल जानेके लिए सवार हुए थे। इन मुसाफिरोके लिए भी कमेटीने धमकीके नोटिस भिजवाये। कप्तानने उन्हें पढ़कर यात्रियोंको सुनाया। उनमें साफ लिखा हुआ था—“नेटालके गोरे बहुत उत्तेजित हैं और उनके मिजाजकी हालत जानते हुए भी अगर हिंदुस्तानी यात्री उतरनेकी कोशिश करेंगे तो बंदरगाहके ऊपर कमेटीके आदमी खड़े रहेंगे और एक-एक भारतीयको उठाकर समुद्रमें फेंक देंगे।” ‘कोलैंड’के मुसाफिरोको इस नोटिसका उलथा मैंने सुनाया। ‘नादरी’ के मुसाफिरोको उनसे किसी अश्रेजी जाननेवालेने उसका आशय समझाया। दोनो जहाजोंके यात्रियोंने वापस जानेसे साफ इनकार कर दिया। यह भी जता दिया—“बहुतेरे यात्रियोंको तो ट्रांसवाल जाना है। जो नेटालमें उतरना चाहते हैं उनमें भी बहुतसे नेटालके पुराने निवासी हैं। कुछ भी हो, हरएकको नेटालमें उतरनेका कानून हक है और कमेटीकी धमकीके बावजूद अपना हक साबित करनेके लिए मुसाफिर यहाँ उतरेंगे ही।”

नेटालकी सरकार भी हारी। अनुचित प्रतिबन्ध कितने दिन चल सकता है? २३ दिन तो हो गए, पर दादा अब्दुल्ला न डिगे और न हिंदुस्तानी यात्री ही। अतः २३ दिन बाद रोक हटा ली गई और जहाजोंको अंदर आनेकी इजाजत मिली। इस बीच मि० एस्कवने उत्तेजित कमेटीको ठंडा कर दिया। उन्होंने समा करके कहा—“डर्बनमें यूरोपियनोंने खूब एकता और हिम्मत दिखाई। आप लोगोसे जितना हो सकता था उतना आपने किया, सरकारने भी आपकी सहायता की। इन लोगोको २३ दिनतक जहाजसे उतरने नहीं दिया। अपनी भावना और अपने जोशका जो दृश्य आपने दिखाया है वह काफी है। इसका गहरा असर बड़ी सरकारपर पड़ेगा। आपके कामसे नेटाल सरकारका रास्ता आसान हो गया। अब आपने बल-प्रयोग करके एक भी हिंदुस्तानी मुसाफिरको उतरनेसे रोका तो अपना काम आप अपने हाथों बिगाड़ देगे। नेटाल सरकारकी स्थिति भी कठिन हो जायगी और ऐसा करके भी इन लोगोको रोकनेमें आप सफल नहीं होंगे। मुसाफिरोंका तो कोई दोष है ही नहीं। उनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी हैं। दम्बईमें जब वे जहाजपर सवार हुए उस वक्त आपकी मनोदशाकी उन्हें खबर भी नहीं थी। इसलिए अब आप मेरी सलाह मानकर अपने-अपने घर चले जाएँ और इन लोगोके आनेमें तनिक भी रुकावट न डालें। पर मैं आप लोगोको यह वचन देता हूँ कि इसके बाद आनेवालोंको रोकनेका अधिकार नेटालकी सरकार धारा सभासे प्राप्त करेगी।” यह तो भाषणका सारमात्र है। मि० एस्कंवके श्रोता निराशा तो हुए, पर नेटालके गोरोंपर उनका बहुत भारी प्रभाव था। अतः उनके कहनेसे वे बिखर गए। दोनों जहाज बंदरगाहके अंदर आये।

मेरे वारेमें उन्होंने कहला भेजा—“आप दिन रहते जहाज-

से न उतरे। शामको मैं (मि० एस्कंव) बंदरगाहके सुपरिटेण्डेण्टको आपको लेनेके लिए भेजूंगा। उनके साथ आप घर जायं। आपके घरवाले जब चाहे उतर सकते हैं।" यह कोई जाब्तेका हुकम नहीं था, बल्कि कप्तानके लिए मुझे उतरने न देनेकी सलाह थी और मेरे मिरपर जो खतरा भूल रहा था उसकी चेतावनी थी। कप्तान मुझे जवर्दस्ती तो रोक नहीं सकता था। पर मैंने सोचा कि मुझे यह सलाह मान लेनी चाहिए। वाल-ब्रच्चोको मैंने घर न भेजकर डर्वनके प्रसिद्ध व्यापारी और मेरे पुराने मक्किल तथा मित्र पारसी खस्तमजीके यहाँ भेजा और उनसे कहा कि वही तुम लोगोसे मिलूंगा। मुसाफिर बगैरह उतर गए। इतनेमें मि० लॉटन, दादा अब्दुल्लाके वकील और मेरे मित्र, आये और मुझसे मिले। उन्होंने पूछा—“आप अबतक क्यों नहीं उतरे?” मैंने मि० एस्कवके पत्रकी बात कही। उन्होंने कहा—“मुझे तो शामतक इतजार करना और फिर चोर या अपराधीकी तरह शहरमें दाखिल होना पसंद नहीं आता। आपको कोई डर न हो तो अभी मेरे साथ चलें और हम इस तरह पैदल शहरसे होकर चले जायगे कि जैसे कुछ हुआ ही न हो।” मैंने जवाब दिया—“मैं यह नहीं मानता कि मुझे किसी तरहका डर है। मि० एस्कवकी सूचनाका आदर करूं या नहीं, यही सवाल मेरे सामने है। इसमें कप्तानकी कुछ जिम्मेदारी है या नहीं, इसको भी थोड़ा सोच लेना चाहिए।” मि० लॉटनने हसकर कहा—“मि० एस्कवने ऐसा क्या किया है कि उनकी सूचनापर आपको तनिक भी ध्यान देना ही पड़े। फिर इस सूचनामें शुद्ध भलमनसी ही है, कोई छल-कपट नहीं है, यह माननेके लिए भी आपके पास क्या आधार है? शहरमें क्या हुआ है और उसमें इन भाईसाहबका कितना हाथ है, यह जितना आप जानते हैं उससे ज्यादा मैं जानता हूँ। (मैंने

वीचमे सिर हिलाया ।) फिर यह मानले कि उन्होंने अच्छे इरादेसे सलाह दी है तो भी उसपर अमल करनेमे आपकी प्रतिष्ठाकी हानि है, यह मैं पक्का मानता हूँ। इसलिए मेरी तो सलाह है कि आप तैयार हों तो अभी चले। कप्तान तो अपना ही आदमी है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी अपनी जिम्मेदारी है। उससे पूछनेवाले केवल दादा अब्दुल्ला हो सकते हैं। वह क्या सोचेंगे, यह मैं जानता हूँ, क्योंकि इस लड़ाईमे उन्होंने खूब बहादुरी दिखाई है।" मैंने कहा—“तो फिर चले। मुझे कोई तैयारी नहीं करनी है। सिर्फ पगड़ी सिरपर धर लेना बाकी है। कप्तानको बताऊँ और चल दे।” हमने कप्तानकी इजाजत ले ली।

मि० लॉटन डर्वनके बहुत पुराने और प्रसिद्ध वकील थे। हिंदुस्तान लौटनेके पहले ही उनके साथ मेरा बहुत निकटका संबंध स्थापित हो चुका था। अपने टेबे मुकदमोंमे मैं उनकी ही मदद लेता और अकसर उन्हें बड़ा (सैनियर) वकील भी बनाता था। वह खुद हिम्मतवाले आदमी थे। कद ऊँचा-पूरा था।

हमारा रास्ता डर्वनके बड़े-से-बड़े महल्लेसे होकर जाता था। हम जब रवाना हुए तब गामके चार-साढ़े चार बजे होगे। आकाशमे कुछ योहीस बादल थे, पर सूरजको छिपा देनेके लिए काफी थे। सेठ रुस्तमजीके मकान का पैदल जानेपर कम-से-कम एक घंटेका रास्ता था। ज्योंही हम जहाजसे उतरे, कुछ लडकोंने हमें देख लिया। उनमे कोई बड़ी उम्रवाला तो था ही नहीं। आमतौरमे वदरगाहपर जितने आदमी रूह करते हैं उतने ही आदमी दिखाई देते थे। मेरी जैसी पगड़ी पहननेवाला अकेला मैं ही था। इससे लडकोंने मुझे तुरंत पहचान लिया और 'गाधी' 'गाधी', 'इसको मारो,' 'घेरो' चिल्लाते हुए हमारी ओर बढ़ आए। कुछ लडके ढेले भी

फंफने लगे। कुछ अघेड उम्रवाले गोरे भी उनमें शामिल हो गए। धीरे-धीरे हल्ला बढ़ा। मि० लाँटनने देखा कि पैदल जानेमें खतरा लेना है। अतः उन्होंने 'रिक्शा' बुलाया। 'रिक्शा'के मानी है आदमीके खीचनेकी छोटी-सी गाड़ी। मैं तो कभी 'रिक्शा'में बैठा ही न था, कारण कि जिस सवारीको आदमी खीचता हो उसमें बैठनेसे मुझे सख्त नफरत थी। मगर आज मुझे जान पड़ा कि रिक्शामें बैठ जाना मेरा धर्म है। पर भगवान् जिसको बचाना चाहते हों वह गिरना चाहे तो भी नहीं गिर सकता, इसका तो मुझे अपने जीवनके पाच-सात कठिन प्रसर्गोंमें प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका है। मैं नहीं गिरा, इसका तनिक भी यश मैं नहीं ले सकता। रिक्शा खीचनेवाले हवशी ही होते हैं। छोड़ो और बड़ी उम्रवाले गोरोने भी रिक्शावालेको धमकाया कि तुमने इस आदमीको रिक्शामें बैठाया तो हम तुम्हें पीटेंगे और तुम्हारा रिक्शा भी तोड़ डालेंगे। अतः रिक्शावाला 'खा' अर्थात् ना कहकर चलता बना और मेरा रिक्शामें बैठना रह गया।

अब पैदल चलकर जानेके सिवा हमारे पास दूसरा रास्ता नहीं रहा। हमारे पीछे खासा मजमा जुट गया। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते, मजमा भी बढ़ता जाता था। मुख्य रास्ते वैस्ट स्ट्रीटमें पहुचनेपर तो छोटे-बड़े सैकड़ों लोग उसमें शामिल हो गये। एक तगड़े आदमीने मि० लाँटनको दोनों हाथोंमें पकड़कर मुझसे अलग कर दिया। अतः अब उनकी स्थिति ऐसी न रही कि मेरे पास पहुच सकें। मुझपर गालियो, पत्थरो और जो कुछ भी उनके हाथमें आया उस सब की वर्षा होने लगी। मेरी पगड़ी सिरसे गिरा दी गई। इतनेमें एक मोटे-तगड़े आदमीने पहुचकर मुझको थप्पड़ जमाया और फिर लात भी मारी। मैं चक्कर खाकर गिरही रहा था कि इतनेमें रास्तेके पासके एक मकानके आगनकी रेलिंग मेरे

हाथमे आ गईं। मैंने जरा दम लिया और चक्कर दूर होनेपर आगे बढ़ा। जीता घर पहुंचनेकी आशा लगभग छोड़ चुका था; पर इतना मुझे अच्छी तरह याद है कि उस वक्त भी मेरा दिल मारनेवालोंका रत्ती भर भी दोष नहीं देखता था।

इस तरह मैं अपना रास्ता तै कर रहा था कि इतनेमें डबनके पुलिस सुपरिटेडेंटकी पत्नी सामनेकी ओरसे आ निकली। हम एक-दूसरेको अच्छी तरह पहचानते थे। यह महिला बहादुर थी। यद्यपि आकाशमें बादल घिर रहे थे और सुरज भी डबनेको था, फिर भी इस महिलाने अपनी छतरी मेरी रक्षाके लिए खोल दी और मेरी बगलमें होकर चलने लगी। स्त्रीका अपमान और वह भी डबनके बहुत पुराने और लोक-प्रिय कप्तानकी पत्नीका यह गोरे नहीं कर सकते थे। उन्हें चोट भी नहीं पहुंचा सकते थे। अतः उनको बचाते हुए मुझपर जो मार पड़ती वह बहुत हल्की होती। इस बीच पुलिस सुपरिटेडेंटको इस हमलेकी खबर मिली और उन्होंने पुलिसका एक दस्ता भेज दिया, जिसने मुझको घेर लिया। हमारा रास्ता पुलिस चौकीकी बगलसे होकर जाता था। वहां पहुंचे तो देखा कि पुलिस सुपरिटेडेंट खड़े हमारी राह देख रहे हैं। उन्होंने मुझे चौकीमें ही चले जानेकी सलाह दी। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उसमें आश्रय लेनेसे इनकार कर दिया। मैंने कहा कि मुझे तो अपने ठिकाने पर ही पहुंचना है। मुझे डबनके लोगोंकी न्यायवृत्ति और अपने सत्यपर विश्वास है। आपने जो मेरे रक्षार्थ पुलिस भेजी उसके लिए अहसानमंद हूँ। इसके सिवा मिसैज अलैक्जेंडरने भी मेरी रक्षा की है।”

मैं सही-सलामत रुस्तमजीके यहाँ पहुंचा। वहाँ पहुंचते-पहुंचते लगभग ग्राम हो गई थी। 'कोलैंड' के डाक्टर दाजी बरजोर रुस्तमजी सेठके यहाँ मौजूद थे। उन्होंने मेरी चोटोका इलाज शुरू किया। चोटें देखीं। वे अधिक नहीं थीं।

एक भीतरी वद मुंहकी चोट बहुत दुःख रही थी, पर अभी मुझे शानि पानेका अधिकार नहीं मिला था। रुस्तमजी सेठके घरके सामने हजारो आदमी जमा हो गए। रात हुई तो बहुत-से लफंगे लोग भी उस मजमेमें मिल गए। उन लोगोंने रुस्तमजी सेठको कहला भेजा कि गाधीको हमारे हवाले नहीं कर दोगे तो उसके साथ ही तुम्हें और तुम्हारी दुकानको भी जलाकर खाक कर देंगे। रुस्तमजी ऐसे भारतीय न थे जो किसीके डरानेसे डर जाते। सुपरिटेन्डेंट अलेक्जेंडरको इसकी खबर मिली तो वह अपनी खुफिया पुलिसके साथ आकर चुपकेसे इस मजमेमें घुस गए। एक चौकी मगाकर वह उसके ऊपर खड़े हो गए। यो लोगोसे बातचीत करनेके ब्रहाने रुस्तमजीके मकानके दरवाजेपर कब्जा कर लिया, जिससे कोई उसको तोड़कर घुस न सके। खुफिया पुलिसके आदमियोंको उन्होंने पहले ही मुनासिव जगहों पर रख दिया था। पहुंचनेके साथ ही उन्होंने अपने एक अहलकारको कह दिया था कि हिंदुस्तानीकी पोशाक पहन और चेहरा रगकर हिंदुस्तानी व्यापारीका भेष बना ले और मुझसे मिलकर कहे—

“आप अपने मित्रकी, उनके मेहमानोकी, उनके मालकी और अपने बालबच्चोकी रक्षा चाहते हो तो हिंदुस्तानी सिपाहीका पहनावा पहनकर रुस्तमजीके गोदामसे निकलकर मजमेमेंसे ही मेरे आदमीके साथ चुपकेसे निकल जाइए और पुलिस चौकीपर पहुंच जाइए। इस गलीके मोड़पर आपके लिए गाडी तैयार खड़ी है। आपको और दूसरोको बचानेका मेरे पास बस यही एक रास्ता है। मजमा इतना उत्तेजित है कि उसे रोक रखनेके लिए मेरे पास कोई साधन नहीं। आप जल्दी न करोगे तो यह मकान जमीदोज कर दिया जायगा। यही नहीं, जानमालका कितना नुकसान होगा, इसका अदाजा भी मैं नहीं कर सकता।”

मैं स्थितिको तुरत समझ गया । मैंने उसी क्षण सिपाहीकी पोशाक मांगी और उसे पहनकर निकल गया और उक्त पुलिस कर्मचारीके साथ सही-सलामत चौकीपर पहुच गया । इस बीच श्री अलेक्जेंडर अवसरके अनुरूप गीतों और भाषणसे भीड़को रिम्मा रहे थे । जब उन्हें यह इशारा मिल गया कि मैं पुलिस चौकीमें पहुच गया तब उन्होंने अपना सच्चा भाषण आरम्भ किया :

“आप लोग क्या चाहते हैं ?”

“हम गांधीको चाहते हैं ।”

“उसको क्या करना चाहते हैं ?”

“उसे हम जलाएंगे ।”

“उसने आपका क्या विगाडा है ?”

“उसने हमारे बारेमें हिंदुस्तानमें बहुतसी भूठी वाते कही हैं और नेटालमें हजारों हिंदुस्तानियोंको घुसा देना चाहता है ।”

“पर वह बाहर न निकले तो क्या कीजिएगा ?”

“तो हम इस मकानमें आग लगा देंगे ।”

“इसमें तो उसके बाल-बच्चे हैं । दूसरे स्त्री-पुरुष हैं । स्त्रियो और बच्चोंको आगमें भूनते आपको शर्म नहीं आती ?”

“यह तो आपका दोष है । आप हमें लाचार करते हैं तो हम क्या करे ? हम तो और किसीको कष्ट देना नहीं चाहते । गांधीको सौप दीजिए । वस हमें और कुछ नहीं चाहिए । आप अपराधीको न सौंपें और उसे पकड़नेमें दूसरोको नुकसान पहुचने तो इसका दोष हमारे सिर डालना कहांका न्याय है ?”

सुपरिंटेंडेण्टने हलकी हंसी हंसकर उन लोगोंको यह खबर दी कि गांधी तो उन लोगोंके बीचसे होकर सही-सलामत दूसरी जगह पहुच गया ! लोग खिलखिलाकर हंस पड़े और भूठ-भूठ चिल्ला उठे ।



सुपरिटेण्डेंट बोले—“आप अपने बूढ़े कप्तानकी बातका विश्वास न करते हो तो जिन तीन या चार आदमियोंको पसंद करें उनकी कमेटी चुन दें। दूसरे सब लोग यह वचन दें कि कोई मकानके अंदर न घुसेगा और अगर कमेटी गांधीको घरके भीतर न पा सके तो सब लोग शांत होकर घर लौट जाएंगे। आप लोगोंने जोगमें आकर पुलिसके अधिकारको आज नहीं माना, इसमें बदनामी पुलिसकी नहीं, आपकी ही है। इसीसे पुलिसने आपके साथ चाल चली। आपके शिकारको आपके बीचसे ही निकाल लेगई और आप हार गए, इसमें पुलिसको तो आप दोष दे ही नहीं सकते। जिस पुलिस को आपने ही नियुक्त किया है उसने अपने कर्तव्यका पालन किया है।”

यह सारी बातचीत सुपरिटेण्डेंटने इतनी मिठास, इतने हास्य और इतनी दृढताके साथ की कि जो वचन वह मांग रहे थे लोगोंने दे दिया। कमेटी बनी। उसने पारसी खस्तमजीके मकानका कोना-कोना छान डाला और लोगोसे कहा—“सुपरिटेण्डेंटकी बात सच है। उसने हमें हरा दिया।” लोग निराश तो हुए; पर अपने वचनपर स्थिर रहे, कोई नुकसान नहीं किया और अपने-अपने घर चले गए। यह दिन १८९७ ई० की १३ वीं जनवरीका था।

इसी दिन सबेरे ज्योंही मुसाफिरोंपर लगी हुई रोक हटी, डबनके एक अखबारका रिपोर्टर मेरे पास आया और मुझसे सारी बातें पूछ गया था। मुझपर लगाये गए इलजामोंकी पूरी सफाई दे देना बहुत ही आसान था। मैंने मिसालें देकर दिखा दिया था कि मैंने तिलभर भी अत्युक्ति नहीं की है। जो कुछ मैंने किया है वह मेरा धर्म था। वह मैं न करूं तो मनुष्य कहलानेका भी अधिकारी न होऊंगा। यह सारी कैफियत दूसरे दिन पूरी-की-पूरी प्रकाशित हुई और समझदार

यूरोपियनोने अपना दोष स्वीकार किया। अखबारोने नेटालकी परिस्थितिसे सहानुभूति प्रकट की, पर साथ ही मेरे कार्यका पूरा समर्थन किया। इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और साथ-साथ हिंदुस्तानी कौमकी भी। गोरोपर यह बात साबित हो गई कि गरीब हिंदुस्तानी भी नामदं नहीं हैं, और व्यापारी भी अपने व्यापारकी परवा किए बिना स्वाभिमान और स्वदेशके लिए लड़ सकते हैं।

इससे एक और यद्यपि जातिको दुख सहन करना पड़ा और स्वयं दादा अब्दुल्लाको भारी नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी मैं मानता हूँ कि इसके अंतमें तो लाभ ही हुआ। जातिको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिला और उसका आत्मविश्वास बढ़ा। मैं भी कुछ अधिक कामका बना, बहुमूल्य अनुभव प्राप्त किया। उस दिनका विचार करता हूँ तो देखता हूँ कि ईश्वर मुझे सत्याग्रहके लिए तैयार कर रहा था।

नेटालकी घटनाओंका असर विलायतमें भी हुआ। उपनिवेश-सचिव श्री चेवरलेने नेटालकी सरकारको तार दिया कि जिन लोगोंने मुझपर हमला किया उनपर मुकदमा चलाया जाना चाहिए और मुझको न्याय मिलना चाहिए।

मि० एस्कव न्याय-विभागके प्रधान एटर्नी-जनरल थे। उन्होने मुझे बुलाया और मि० चेवरलेनेके तारकी बात कही। मुझे जो चोट पहुंची थी उसके लिए दुःख प्रकट किया और मैं बच गया इसपर प्रसन्नता प्रकट की। उन्होने कहा—“मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपको या आपकी कौमके किसी आदमीको कष्ट पहुंचे, यह मैं तनिक भी नहीं चाहता था। आपको कष्ट पहुंचनेका मुझे डर था, इसीसे रातमें जहाजसे उतरनेके लिए संदेसा भेजा; पर आपको मेरा सुझाव पसंद नहीं आया। मि० लॉटनकी सलाह आपने मानी

इसके लिए मैं आपको तनिक भी दोष नहीं देना चाहता । आपको जो ठीक जान पड़े उसे करनेका आपको पूरा अधिकार था । मि० चेबरलेनकी मागके साथ नेटालकी सरकार पूरी तरह सहमत है । हम चाहते हैं कि अपराधियोंको दंड मिले । हमला करनेवालोमेसे आप किसीको पहचान सकते हैं ?” मैंने जवाब दिया—“मुमकिन है, एक-दो आदमियोंको मैं पहचान सकूँ, पर यह बात आगे बढ़े इसके पहले ही मुझे आपको यह वता देना चाहिए कि मैंने अपने दिलमे यह निश्चय कर रखा है कि अपने ऊपर हुए हमलेके बारेमें मैं किसीके खिलाफ अदालतमे फरियाद नहीं करूँगा । हमला करनेवालोका तो मैं कोई दोष भी नहीं देखता । उन्हें जो कुछ भी खबर मिली वह अपने नेताओसे मिली । उसकी सचाईकी जांच करने वह थोड़े बैठ सकते हैं ? मेरे बारेमे उन्होंने जो कुछ सुना वह सही हो तो वे भडक उठे और आवेशमे आकर जो न करना चाहिए वह कर बैठे, इसके लिए मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता । उत्तेजित जनसमूह इसी रीतिसे न्याय करता आया है । अगर इस विषयमे किसीका दोष है तो उस कमेटीका है जो इस मामलेमे बनाई गई थी, और खुद आपका है और इसलिए नेटालकी सरकारका है । रायटरने चाहे जैसे तार भेजे हो, पर जब आप जानते थे कि मैं खुद यहाँ आ रहा हूँ तब आपका और कमेटीका फर्ज था कि जो अनुमान आपने किए उनके बारेमे पहले मुझसे पूछते और मेरा जवाब सुनते, फिर जो आपको मुनासिब मालूम होता है वह करते । अब मुझपर जो हमला हुआ उसके लिए मैं आपपर या कमेटीपर मुकदमा चला सकूँ, ऐसा तो है ही नहीं और यह मुमकिन हो तो भी अदालतके द्वारा न्याय पानेकी इच्छा मुझे नहीं है । नेटालके गैरोके हककी रक्षाके लिए आपको जो कुछ करना ठीक जान पड़ा वह आपने किया ।

यह राजनैतिक विषय हुआ। मुझे भी इसी मैदानमें आपसे लड़ना और आपको और दूसरे गोरोंको यह दिखाना है कि भारतीय राष्ट्र ब्रिटिश साम्राज्यके एक बड़े भागके रूपमें, गोरोंको नुकसान पहुंचाए बिना, केवल अपने सम्मान और अधिकारकी रक्षा करना चाहता है।”

मि० एस्कंब बोले—“आपने जो कुछ कहा वह मैंने समझ लिया और वह मुझे पसंद भी आया। आपसे यह सुननेकी मैं आशा नहीं रखता था कि आप मुकदमा चलाना नहीं चाहते, और आप मुकदमा चलाना चाहते तो मैं जरा भी नाबुश न होता; पर जब आपने फरियाद न करनेका विचार प्रकट कर दिया है तब मुझे यह कहनेमें हिचक नहीं कि आपने उचित निश्चय किया है। इतना ही नहीं, अपने इस समयसे आप अपनी कौमकी विशेष सेवा करेंगे। साथ ही मुझे यह भी कबूल करना चाहिए कि अपने इस निश्चयसे आप नैटाल सरकारको विषम स्थितिसे बचा लेंगे। आप चाहे तो हम घर-मकड़ बगैरह करेंगे, पर आपको यह बतानेकी जरूरत नहीं है कि यह सब करनेसे गोरोंका क्रोध फिर उमड़ेगा, अनेक प्रकारकी टीकाएं होंगी और ये बातें किसी भी सरकारको नहीं रच सकती। पर अगर आपने अंतिम निश्चय कर लिया हो तो आप अपना विचार जतानेवाली एक चिट्ठी मुझको लिख दे। हमारी बातचीतका खुलासा भेजकर ही हम मि० चेंबरलेनके सामने अपनी सरकारका वचाव नहीं कर सकते। मुझे तो आपके पत्रके भावार्थका ही तार करना होगा। पर मैं यह नहीं कहता कि यह चिट्ठी आप मुझे अभी लिखकर देदे। अपने मित्रोंके साथ आप मंशविरा करले। मि० लॉटनकी भी सलाह लेले। इसके बाद भी अगर आप अपनी रायपर कायम रहे तो मुझे लिखे। पर इतना मुझे कह देना चाहिए कि अपनी चिट्ठीमें फरियाद न करनेकी जिम्मेदारी आपको साफ तौरपर अपने

ही ऊपर लेनी होंगी। तभी मैं उसका उपयोग कर सकूंगा।” मैंने कहा—“इस बारेमें मैंने किसीके साथ मशविरा नहीं किया है। आपने इस बातके लिए मुझे बुलाया है, यह भी मैं नहीं जानता था। और इस विषयमें किसीसे सलाह-मशविरा करनेकी इच्छा भी नहीं है। जब मि० लॉटनके साथ चल देनेका निश्चय किया तभी अपने दिलमें तै कर लिया था कि मुझे कोई चोट पहुंचे तो इसके लिए दिलमें बुरा नहीं मानूंगा। अतः पीछे फरियाद करनेका तो सवाल ही नहीं हो सकता। मेरे लिए तो यह धार्मिक प्रश्न है और जैसा कि आप कहते हैं, मैं यह मानता भी हू कि अपने इस समयमें मैं अपनी कौमकी सेवा करूंगा। यही नहीं, खुद मेरा भी इससे लाभ ही है। इसलिए मैं अपने ऊपर सारी जिम्मेदारी लेकर यही आपको पत्र लिख देना चाहता हू।” और मैंने वही उनसे सादा कागज लेकर चिट्ठी लिख दी।

: = :

## भारतीयोंने क्या किया ?—३

### विलायतसे संबंध

पिछले प्रकरणोंमें पाठकोंने देखा होगा कि भारतीय समाजने अपनी स्थिति सुधारनेके लिए विशेष और सामान्य रूपसे कितना प्रयत्न किया और उससे अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई। दक्षिण अफ्रीकामें जैसे उसने अपने सभी अंगोंका विकास करनेके लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया उसी तरह हिंदुस्तान और विलायतसे जितनी मदद मिल सकती हो उतनी पानेकी कोशिश भी की। हिंदुस्तानके बारेमें तो थोड़ा पहले ही लिख चुका हू। विलायतसे मदद पानेके लिए क्या-क्या किया

गया, अब इसका उल्लेख आवश्यक है। कांग्रेसको ब्रिटिश कमेटीके साथ तो संबंध जोड़ना ही चाहिए था। इसलिए हर हफ्ते हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) और कमेटीके अध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्नको पूरे विवरणकी चिट्ठी लिखी जाती और जब-जब आवेदन-पत्रकी नकल वगैरह भेजनेकी जरूरत होती तब-तब डाक-खर्च वगैरह और कमेटीके साधारण खर्चमें सहायताके रूपमें कम-से-कम १० पौंड भेज दिए जाते।

यही दादाभाईका एक पवित्र सस्मरण लिख दू। वह इस कमेटीके अध्यक्ष न थे, फिर भी हमे यही जान पड़ा कि रुपये उन्हीकी मार्फत भेजना हमे शोभा देगा, वह भले ही उन्हें हमारी ओरसे अध्यक्षको दे दिया करे। पर पहली ही बार जो रकम हमने भेजी, दादाभाईने उसे लौटा दिया और लिखा कि रुपये भेजने आदि कमेटीसे संबंध-रखनेवाले काम आपको सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत ही करने चाहिए। मेरी अपनी (दादाभाईकी) मदद तो रहेगी ही। पर कमेटीकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नकी मार्फत काम लेनेमें ही बढ़ेगी। मैंने यह भी देखा कि दादाभाई इतने बूढ़े होनेपर भी अपने पत्रव्यवहारमें बहुत ही नियमित थे। उन्हें कुछ लिखना न हो तो भी पत्रकी पहुँच तो लौटती डाकसे आ ही जाती और उसमें आश्वासनके दो शब्द तो होते ही। ऐसी चिट्ठियाँ भी खुद ही लिखते और इन पहुँचवाली चिट्ठियोंकी नकल भी अपनी टिशू पेपर बुकमें छाप लेते।

एक पिछले प्रकरणमें मैं यह भी दिखा चुका हू कि यद्यपि कांग्रेसका नाम आदि हमने रखा था, पर अपने मसलेको एक पक्षका प्रश्न बना देनेकी बात हमने कभी सोची ही नहीं थी। इससे दादाभाईकी जानकारीमें दूसरे पक्षोंके साथ भी हमारा पत्र-व्यवहार चलता रहता। इसमें दो आदमी मुख्य थे, एक सर मचेरजी भावनगरी और दूसरे सर विलियम विलसन हंटर। सर

मंचेरजी भावनगरी उन दिनों पार्लामेंटके सदस्य थे। इनको अच्छी मदद मिलती और वह सदा उपयोगी सूचनाएं भी दिया करते; पर दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके महत्त्वको भारतीयोंसे भी पहले समझने और कीमती मदद देनेवाले थे सर विलियम विलसन हंटर। ये 'टाइम्स'के भारतीय विभागके सम्पादक थे। उनको जब हमारा पहला पत्र मिला तभीसे वह दक्षिण अफ्रीकाकी स्थितिका सच्चा रूप ब्रिटिश जनताके सामने रखने लगे और जहां-जहां ठीक जान पड़ा वहां-वहां निजी पत्र भी लिखे। जब कोई जरूरी मसला पेश होता तब उनकी डाक लगभग हर हफ्ते आती। अपने पहले ही उत्तरमें उन्होंने लिखा—“आपने जो स्थिति जताई है उसे पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। अपना काम आप विनयसे, शांतिसे और अत्युक्तिसे बचते हुए कर रहे हैं। मेरी हृदयदर्दी इस मामलेमें पूरे तौरपर आपकी तरफ है और आपको न्याय मिले इसके लिए जो कुछ मुझसे हो सके वह निजी और सार्वजनिक रूपमें भी करना चाहता हूं। मुझे निश्चय है कि इस मामलेमें हम एक इंच भी पीछे नहीं हट सकते। आपकी मांग ऐसी है कि निष्पक्ष मनुष्य उसमें काटछांट करनेकी बात कह ही नहीं सकता।” लगभग यही शब्द 'टाइम्स'में इस विषयपर उन्होंने जो पहला लेख लिखा उसमें भी लिखे। यही स्थिति उन्होंने अंततक कायम रखी। लेडी हंटरने एक पत्रमें लिखा था कि जीवनके आखिरी दिनोंमें भी वह भारतीय प्रश्नपर एक लेखमाला लिखनेकी बात सोच रहे थे और उसका खाका तैयार कर लिया था।

मनसुखलाल नाजरका नाम पिछले प्रकरणमें दे चुका हूं। अपने प्रश्नको अधिक अच्छी तरह समझानेके लिए वे कौमकी तरफसे विलायत भेजे गए थे। उन्हें दोनों पक्षोंसे मिलकर काम करनेकी हिदायत की गई थी और विलायतमें

रहनेके दिनोंमें वह स्व० सर विलियम हटर, सर मंचेरजी भावनगरी और कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीके साथ बराबर मिलते रहते थे। वैसेही वे भारतीय सिविल सर्विसके पेशनर कर्मचारियों, भारतीय सचिवके दफ्तर और उपनिवेश विभाग आदिसे भी सम्पर्क रखते थे। इस प्रकार एक भी दिशा, जहाँ हमारी पहुँच हो सकती थी, कोशिशसे खाली नहीं रखी। इस सबका फल इतना तो पक्के तौरसे हुआ कि प्रवासी भारतीयोंकी स्थिति बड़ी सरकारके लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गई और उसका भला-बुरा असर दूसरे उपनिवेशोंपर भी पड़ा। यानी जहा-जहा हिंदुस्तानी बसते थे वहा-वहाँ हिंदुस्तानी और गोरे दोनों जाग्रत हो गए।

: ६ :

### बोअर-युद्ध

जिन पाठकोंने पिछले प्रकरणोंको ध्यानपूर्वक पढा होगा उन्हें इसकी कल्पना हो गई होगी कि बोअर-युद्धके समय दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी क्या स्थिति थी। तबतक हुए प्रयत्नोंकी चर्चा भी की जा चुकी है।

१८९९ ई० मे डाक्टर जेमिसनने, खानोंके मालिकोंके साथ हुए गुप्त परामर्शके अनुसार, जोहान्सबर्गपर घावा किया। दोनोंकी आशा तो यह थी कि जोहान्सबर्गपर कब्जा हो जानेके बाद ही बोअर सरकारको उनके घावेकी खबर होगी; पर यह हिसाब लगानेमे डा० जेमिसन और उनके दोस्तोंने भारी भूल की। उनका दूसरा अदाजा यह था कि उनकी गुप्त योजना प्रकट हो भी गई तो रोडेेशियामे सिखाये हुए निशानवाजोंके सामने रण-शिक्षासे कोरे बोअर किसान क्या कर



सकेंगे, उन्होने यह भी सोच रखा था कि जोहान्सबर्गकी आवादीका बहुत बड़ा भाग तो हमारा स्वागत ही करेगा। पर इस भले डाक्टरका यह हिसाब भी गलत रहा। राष्ट्रपति क्रूगरको सारी योजनाकी खबर वक्तसे मिल गई थी। उन्होने अतिशय शांति और कुशलताके साथ गुप्त रीतिसे डाक्टर जेमिसनका सामना करनेकी तैयारी कर ली और साथ-साथ जो लोग साजिशमें उनके साथी थे उन्हें गिरफ्तार कर लेनेकी तैयारी भी कर रखी। अतः डाक्टर जेमिसन जोहान्सबर्गके पास पहुँच पाए इसके पहले ही दोअर सेनाने गोलियोंकी बौछारसे उनका स्वागत किया। इस सेनाके सामने डाक्टर जेमिसनका जत्था टिक नहीं सकता था। जोहान्सबर्गमें कोई बगावत न कर सके, इसका भी पूरा प्रबंध कर लिया गया था। इससे वहाँ किसीने सिर उठानेका साहस नहीं किया। राष्ट्रपति क्रूगरकी सरगर्मीसे जोहान्सबर्गके करोडपति अवाक् रह गये। इतनी बढ़िया तैयारी कर रखनेका अति सुंदर फल यह हुआ कि इस सकटका सामना करनेमें सरकारका कम-से-कम पैसा खर्च हुआ और जानका नुकसान भी कम-से-कम हुआ।

डा० जेमिसन और उनके दोस्त सोनेकी खानोंके मालिक पकड़े गए। उनपर तुरंत मुकदमा चलाया गया। कितनोंको फ्रांसीकी सजा हुई। इनमें अधिकांश तो करोडपति ही थे। बड़ी मरकार इसमें क्या कर सकती थी? दिन-दहाडेका हमला था। राष्ट्रपति क्रूगरका महत्व एकबारगी बढ़ गया। उप-निवेश-सचिव मि० चेबरलेनने दीनवचन-युक्त तार भेजा और राष्ट्रपति क्रूगरके दयाभावको जगाकर उन बड़े आदमियोंके लिए दयाकी भीख मागी। राष्ट्रपति क्रूगर अपना दाव अच्छी तरह खेलना जानते थे। दक्षिण अफ्रीकामें कोई व्यक्ति उनकी राजशक्ति छीन सकती है, इसका डर उन्हें था ही नहीं।

डॉक्टर जेमिसन और उनके मित्रोंकी साजिश उनकी गणनाके अनुसार तो सुयोजित वस्तु थी, पर राष्ट्रपति क्रूगरके हिसाबसे वह बालबुद्धिका कार्य थी। इसलिए उन्होंने मि० चेवरलेनकी विनती स्वीकार कर ली और किसीको भी फांसीकी सजा नहीं दी। इतना ही नहीं, सभी अपराधियोंको क्षमा देकर छोड़ दिया !

पर उछला हुआ अन्न कबतक पेटमें रह सकता है ? राष्ट्रपति क्रूगर भी जानते थे कि डा० जेमिसनका हमला तो गंभीर रोगका छोटासा चिन्ह-मात्र था। जोहान्सवर्गके करोड़पति अपनी बेइज्जतीको किसी तरह भी धो डालनेका प्रयत्न न करे, यह हो नहीं सकता था। फिर जिन सुधारोंके लिए डा० जेमिसनके हमलेकी योजना की गई थी उनमेंसे तो एक भी नहीं हो पाया था। इसलिए करोड़पति मुंह बंद किये बैठे रहे यह मुमकिन नहीं था। उनकी मांगोंके साथ दक्षिण अफ्रीकामे ब्रिटिश साम्राज्यके प्रधान प्रतिनिधि ( हाई कमिश्नर) लार्ड मिल्लरकी पूरी हमदर्दी थी। वैसे ही मि० चेवरलेनने भी ट्रांसवालके विद्रोहियोंके प्रति राष्ट्रपति क्रूगरकी महती उदारताकी सराहना करनेके साथ ही सुधार करनेकी आवश्यकताकी ओर भी उनका ध्यान खींचा था। सभी मानते थे कि बिना तलवार उठाये यह भगडा मिटनेवाला नहीं है। स्वानोके मालिकोंकी मांगे ऐसी थीं कि उनका अन्तिम परिणाम ट्रांसवालमें बोम्बरोंकी प्रधानताका नष्ट हो जाना ही हो सकता था। दोनों पक्ष समझते थे कि आखिरी नतीजा लड़ाई ही है। इसलिए दोनों उसकी तैयारी कर रहे थे। इस समयका शब्द-युद्ध देखने लायक था। राष्ट्रपति क्रूगर बाहरसे अधिक हथियार मंगाते तो ब्रिटिश एजेंट उन्हें चेतावनी देता कि आत्मरक्षाके लिए अग्नेज सरकारको भी दक्षिण अफ्रीकामे थोड़ी सेना लानी होगी। जब ब्रिटिश सेना दक्षिण

अफ्रीकामे दाखिल होती तो राष्ट्रपति क्रूगरकी ओरसे ताना मारा जाता और ज्यादा तैयारी की जाती। यो एक पक्ष दूसरेपर दोष लगाता और दोनो युद्धकी तैयारी करते जाते।

राष्ट्रपति क्रूगर जब पूरी तैयारी कर चुके तब उन्होंने देखा कि अब बैठे रहना तो अपनी गरदन खुद दुश्मनके हाथमे दे देना है। ब्रिटिश साम्राज्यके पास धन-जनका अक्षय्य भंडार है। वह लंबे अरसेतक धीरे-धीरे तैयारी करते और राष्ट्रपति क्रूगरको समझाते-बुझाते न्यायकी बिनती करते हुए वक्त गुजार सकता है और यो दुनियाको दिखा सकता है कि जब राष्ट्रपति क्रूगर खान मालिकोको न्याय दे ही नहीं रहे है तब हमे निरुपाय होकर युद्ध करना पड़ रहा है। यो कहकर वह ऐसी जवर्दस्त तैयारीके साथ युद्ध करेगा कि बोअर उसके सामने टिक ही नहीं सकेगे और उन्हें दीन बनकर उसकी मांगे मंजूर करनी पड़ेगी। जिस जातिके १८ से लगाकर साठ सालतकके सारे पुरुष कुशल योद्धा हो, जिसकी स्त्रिया भी चाहे तो तलवारके हाथ दिखा सकती हो, जिस जातिमे स्वतंत्रता धार्मिक सिद्धांत माना जाता हो, वह जाति चक्रवर्ती राजाके बलके सामने भी दैन्य ग्रहण नहीं करेगी ! बोअर जनता ऐसी ही वीर थी।

आरेज फ्री स्टेटके साथ राष्ट्रपति क्रूगरने पहले ही मंत्रणा कर ली थी। इन दोनों बोअर राज्योंकी एक ही पद्धति थी। राष्ट्रपति क्रूगरका यह इरादा बिल्कुल ही नहीं था कि ब्रिटिश मांगको पूरा-पूरा या इस हदतक मंजूर कर ले कि खानोंके मालिकोको संतोष हो जाय। अतः दोनो राज्योंने सोचा कि जब युद्ध होना ही है तब अब इसमे जितनी देर की जायगी उतना ही वक्त ब्रिटिश सल्तनतको अपनी तैयारी बढ़ानेके लिए मिलेगा। फलतः राष्ट्रपति क्रूगरने अपना अंतिम विचार और आखिरी मांग लार्ड मिल्लरको लिख भेजी। इसके साथ ही ट्रांसवाल और आरेज फ्री स्टेटकी सरहदोंपर फौज

भी जमादी । इसका नतीजा दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता था । ब्रिटिश साम्राज्य जैसा चक्रवर्ती राज्य घमकीके सामने कब झुक सकता है ? 'अल्तिमेटम'की अवधि पूरी हुई और बोअर सेना विद्युद्बलसे आगे बढ़ी । उसने लेडी स्मिथ, किवरली और मेफोकिंगका घेरा डाल दिया । इस प्रकार १८९९ में यह महायुद्ध आरम हुआ । पाठक जानते ही हैं कि इस युद्धके कारणोंमें यानी ब्रिटिश मागोंमें बोअर राज्योंमें भारतीयोंकी परिस्थिति, और उनके साथ होनेवाला व्यवहार भी शामिल था ।

इस अवसरपर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका कर्तव्य क्या है, यह महत्वपूर्ण प्रश्न उनके सामने उपस्थित हुआ । बोअर लोगोंमेंसे तो सारा पुरुषवर्ग लड़ाईपर चला गया । वकीलोंने वकालत छोड़ी, किसानोंने अपने खेत छोड़े, व्यापारियोंने अपनी कोठियों-दुकानोंपर ताले डाल दिए, नौकरी करनेवालोंने नौकरी छोड़ी । अंग्रेजोंकी तरफसे बोअरोंके बराबर तो नहीं, फिर भी केप कॉलोनी, नेटाल और रोडेसियामें असैनिक वर्गके बहुसंख्यक लोग स्वयंसेवक बने । बहुतसे बड़े अंग्रेज वकील और व्यापारियोंने उनमें नाम लिखाया । जिस अदालतमें मैं वकालत करता था उसमें भी अब बहुत ही थोड़े वकील दिखाई दिये । बड़े वकीलोंमेंसे तो अधिकांश लड़ाईके काममें लग गये थे । हिन्दुस्तानियों पर जो तुहमते लगाई जाती हैं उनमेंसे एक यह है, "ये लोग दक्षिण अफ्रीकामें केवल पैसा कमाने और जोड़नेके लिए आते हैं । हम (अंग्रेजों) पर वे निरे भार रूप हैं और जैसे क्रीडा काठके भीतर बसकर उसको कुरेदकर खोखला कर देता है वैसे ही ये लोग हमारा कलेजा कुरेदकर खा जानेके लिए ही आये हैं । इस देशपर हमला हो, हमारा घरवार लूट जानका वक्त आजाय तो ये हमारे कुछ भी काम आनेवाले नहीं । हमें लुटेरोसे अपना ही बचाव नहीं करना होगा, इन लोगोंकी रक्षा भी करनी होगी ।"

इस आरोपपर भी हम सभी भारतीयोंने विचार किया। हम सबको जान पडा कि यह आरोप मिथ्या, निराधार है। इसे सिद्ध करनेका यह बहुत बढिया मौका है। पर दूसरी ओरसे नीचे लिखी बातें भी सोचनी पडी :

“हमें तो अंग्रेज और बोअर दोनों एकसा सताते हैं। ट्रांसवालमें दुःख हो और नेटाल, केप कॉलोनीमें न हो, सो बात नहीं है। कोई अंतर है तो केवल भाषाका। फिर हमारी स्थिति तो गुलाम कौमकी-सी कही जाती है। हम जानते हैं कि बोअर जैसी मुट्ठीभर आदिमियोंकी कौम अपने अस्तित्वके लिए लड़ रही हैं। इस दशामे भी हम उसका विनाश होनेमें सहायक क्यों हो ? अतमे व्यवहारकी दृष्टिसे देखे तो कोई यह कहनेका साहस नहीं कर सकता, कि बोअर इस लड़ाईमें हार जाएंगे। वह जीत गए तो हमसे बदला चुकानेमें कब चूकनेवाले हैं ?”

इस दलीलको पेश करनेवाला हमसेसे एक सबल पक्ष था। मैं खुद भी इस दलीलको समझता और उसको मुनासिब वजन भी देता था। फिर भी वह मुझे ठीक नहीं लगी और उसके भीतर भरे हुए अर्थका उत्तर मैंने अपने आपको और कौमको इस प्रकार दिया

“दक्षिण अफ्रीकामे हमारी हस्ती महज ब्रिटिश प्रजाकी हेसियतसे ही है। हरएक अर्जीमें हमने ब्रिटिश प्रजाकी हेसियतसे ही हक मागे हैं। ब्रिटिश प्रजा होनेमें हमने गौरव माना है, या अपने ऊपर शासन करनेवालो और दुनियासे यह मनवाया है कि उसमें हमारा गौरव है। राज्याधिकारियोंने भी हमारे हककी रक्षा केवल इसीलिए की है कि हम ब्रिटिश प्रजाजन हैं और जो थोड़े-बहुत हक बचाए जा सके हैं वह भी हमारे ब्रिटिश प्रजा होनेसे ही। जब अफ्रीका और हमारा भी घरवार लुट जानका खतरा हो तब महज दर्शककी

तरह दूरसे तमाशा देखते रहे तो यह हमारे मनुष्यत्वको शोभा नहीं देगा। यही नहीं, यह अपने कष्टको और बढा लेना भी होगा। जिस आरोपको हम मिथ्या मानते हैं उसको झूठा साबित कर देनेका हमें अनायास अवसर मिला है। इस अवसरको खो देना अपने हाथों ही उस इल्जामकी सचाईका सबूत पेश कर देना होगा। फिर हमारे ऊपर अधिक दुःख आए और अंग्रेज और ज्यादा ताना मारें तो यह अचरजकी बात न होगी। यह तो हमारा ही अपराध माना जायगा। अंग्रेजोंके सारे आरोप आधार-रहित हैं, उनमें दलीलके लायक भी दम नहीं है, यह कहना अपने आपको ठगने जैसा है। यह सही है कि ब्रिटिश साम्राज्यमें हमारी हैसियत गुलाम की-सी है, पर अबतक हमारा व्यवहार यही रहा है कि साम्राज्यमें रहते हुए गुलामीसे छूटनेकी कोशिश करते रहे। हिंदुस्तानके समी नता इसी नीतिका अनुसरण कर रहे हैं। हम भी यही करते रहे हैं। अगर हम चाहते हों कि ब्रिटिश साम्राज्यके अंग बने रहकर ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त करें और उन्नति करें तो इस वक्त लड़ाईमें तन-मन-धनसे अंग्रेजोंकी मदद करके बैसा करनेका यह सुनहला मौका है। बोअरोंका पक्ष न्यायका पक्ष है, यह बात अधिकांशमें स्वीकार की जा सकती है; पर किसी राज्यतंत्रके अंदर रहकर प्रजावर्गका प्रत्येक जन हर मामलेमें अपनी निजकी रायपर अमल नहीं कर सकता। राज्याधिकारी जितने काम करें सब ठीक ही हों, यह नहीं होता। फिर भी प्रजावर्ग जबतक शासन-विशेषको स्वीकार करता है तबतक उसके कार्योंके अनुकूल होना और उनमें सहायता करना उसका स्पष्ट धर्म है।

“फिर प्रजाका कोई वर्ग धार्मिक दृष्टिसे राज्यके किसी कार्यको अनीतिमय मानता हो तो उसका फर्ज है कि उस कार्यमें विघ्न डालने या सहायता करनेके पहले राज्यको उस

अनीतिसे वचानेकी कोशिश पूरे तौरसे और जानकी जोखिम उठाकर भी करे। हमने ऐसा कुछ नहीं किया। ऐसा धर्म हमारे सामने उपस्थित भी नहीं है और न हममेंसे किसीने यह कहा या माना है कि ऐसे सार्वजनिक और व्यापक कारणसे हम इस लड़ाईमें शामिल होना नहीं चाहते। अतः प्रजारूपमें हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि लड़ाईके गुण-द्रोषका विचार न कर जब वह हो ही रही है तो उसमें यथाशक्ति सहायता करे। अंतमें यह कहना या मानना कि वोअर राज्योंकी जीत होनेपर—वे न जीतेगे यह माननेके लिए कोई भी कारण नहीं है—हम चूल्हेसे निकलकर भाड़में गिरेगे और पीछे वे मनमाना वर चुकाएंगे, वीर वोअर-जाति और खुद अपने साथ भी अन्याय करना है। यह बात तो महज हमारी नामर्दाकी निशानी गिनी जायगी। ऐसा सोचना तक अपनी वफादारीको बट्टा लगाना होगा। कोई अंग्रेज क्या क्षणभरके लिए भी यह सोच सकता है कि अंग्रेज हार गए तो मेरी अपनी क्या दशा होगी? लड़ाईके मैदानमें उतरनेवाला कोई भी आदमी अपनी मनुष्यता गंवाए बिना ऐसी दलील कर ही नहीं सकता।”

यह दलील मैंने १८९९ में सामने रखी थी और आज भी उसमें कहीं रद्दोवदलकी गुजाइश नहीं दिखाई देती। अर्थात् ब्रिटिश राज्यतंत्रके प्रति जो मोह उस वक्त मेरे मनमें था, उस राज्यतंत्रके अधीन रहकर अपनी आजादी हासिल कर लेनेकी जो आशा उस समय मैंने बांधी थी वह मोह और वह आशा आज भी मेरे मनमें बनी हो तो मैं अक्षरशः यही दलील दक्षिण अफ्रीकामें और वैसे परिस्थितिमें यहाँ भी पेश करूंगा। इस दलीलका खडन करनेवाली बहुतेरी दलीले मैंने दक्षिण अफ्रीकामें सुनी और उसके बाद विलायतमें भी सुनी। फिर भी अपने विचार बदलनेका

कोई भी कारण में नहीं देख सका। मैं जानता हूँ कि मेरे आजके विचारोंका प्रस्तुत विषयके साथ कुछ भी संबंध नहीं; पर ऊपरका भेद जता देनेके लिए दो सबल कारण हैं। एक तो यह कि यह पुस्तक उतावलीसे हाथमें लेनेवाला इसे धीरजके साथ और ध्यानपूर्वक पढ़ेगा, यह आशा रखनेका मुझे कोई हक नहीं। दूसरे पाठकोंको मेरी आजकलकी सरगर्मीके साथ उपर्युक्त विचारोंका मेल बैठाना कठिन होगा। दूसरा कारण यह है कि इस विचार-श्रेणीके अन्दर भी सत्यका ही आग्रह है। जैसा अन्तरमें है वैसा ही दिखाना और तदनुसार आचरण करना धर्माचरणकी आखिरी नहीं, पहली सीढ़ी है। धर्मकी इमारत इस नींवके बिना खड़ी करना असंभव है।

अब हम पिछले इतिहासकी ओर लौटें।

मेरी दलील बहुतोंको पसंद आई। मैं पाठकोंसे यह मनवाना नहीं चाहता कि यह दलील अकेले मेरी ही थी। फिर यह दलील पेश की जानेके पहले भी लड़ाईमें साथ देनेका विचार रखनेवाले बहुतेरे हिंदुस्तानी थे ही; पर अब व्यावहारिक प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि युद्धके इस नक्कारखानेमें हिंदुस्तानी तूतीकी आवाज कौन सुनेगा? उसकी क्या गिनती होगी? हथियार तो हममेंसे किसीने कभी हाथमें लिया ही नहीं था। युद्धके बिना हथियारवाले काम करनेके लिए भी तालीम तो मिलनी ही चाहिए। यहाँ तो एक तालपर कूच करना भी हममेंसे किसीको नहीं आता था। सेनाके साथ लंबी मजिलें करना, अपना सामान खुद लादकर चलना, यह भी हमसे कैसे होगा? फिर गोरे हम सबको कुली ही समझेंगे। अपमान भी करेंगे, तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेंगे। यह सब कैसे सहन होगा? हमने फौजमें भरती होनेकी मांग की तो इस मांगको मंजूर कैसे करायेंगे? अन्तमें हम सब इस



निश्चयपर पहुँचे कि इस मांगको मंजूर करानेके लिए जोरदार कोशिश करे। काम कामको सिखाता है। इच्छा होगी तो शक्ति ईश्वर देगा ही। सौपा हुआ काम कैसे होगा, इसकी चिन्ता छोड़ दे। युद्ध-कार्यकी जितनी शिक्षा मिल सके उतनी ले ले और एक बार सेवा-धर्म स्वीकार करनेका निश्चय कर लें तो फिर मान-अपमान के विचारको दूर रखे। अपमान ही तो उसे सहकर भी सेवा करते रहे।

अपनी मांगको मंजूर करानेमें हमें बेहद कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उनका इतिहास रोचक है, पर उसे देनेका यह स्थान नहीं। इसलिए इतना ही कह देना काफी होगा कि हममेंसे मुख्य जनोंने घायलों और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेकी शिक्षा प्राप्त की, अपनी शारीरिक स्थितिके विषयमें डाक्टरका सर्टिफिकेट हासिल किया और लडाईपर जानेकी मांग सरकारके पास भेज दी। इस पत्र और मांगको मंजूर करनेके लिए उसमें जो आग्रह दिखाया गया था उसका बहुत अच्छा असर हुआ। पत्रके उत्तरमें सरकारने हमारा उपकार माना, पर उस वक्त हमारी मांग मंजूर करनेसे इन्कार किया। इस बीच बोरोंका बल बढ़ता गया। उनका बढ़ाव जबदस्त बाढकी तरह हुआ और नेटालकी राजधानीतक पहुँच जानेका खतरा दिखाई देने लगा। हजारों जखमी हुए। हमारी कोशिश तो जारी ही थी। अतमें 'एम्ब्युलेस कोर' (घायलोंको उठाने और उनकी सेवा करनेवाले दस्ते) के रूपमें हमें स्वीकार कर लिया गया। हम तो लिख ही चुके थे कि अस्पतालोंमें पाखाने साफ करने या भाँड़ लगानेका काम भी हमें मंजूर होगा। अतः एम्ब्युलेस कोर बनानेका सरकारका विचार हमें स्वागत करने योग्य जान पड़े, इसमें कोई अचरजकी बात नहीं। हमारा प्रस्ताव स्वतंत्र और गिरमिट-मुक्त भारतीयोंके विषयमें ही था, पर हमने सलाह दी थी कि

गिरमिटियोंको भी इसमें शामिल कर लेना वांछनीय है। इस वक्त तो सरकारको जितने भी आदमी मिल सके उतने दरकार थे। इससे सब कोठियोंमें भी निमन्त्रण भेजे गये। फलतः लगभग ११०० भारतीयोंका शानदार विशाल दस्ता डर्बनसे रवाना हुआ। उसके प्रस्थानके समय श्री एस्कंबने, जिनके नामसे पाठक परिचित ही हैं और जो नेटालके गोरे स्वयं-सेवकोंके महानायक थे, हमें धन्यवाद और आशीर्वाद दिया।

अंग्रेजी अखबारोंको यह सब चमत्कार-सा लगा। हिंदुस्तानी युद्धमें कुछ भी मदद देगे इसकी उन्हें आशा ही नहीं थी। एक अंग्रेजने अपने एक प्रमुख पत्रमें एक स्तुतिकाव्य लिखा, जिसके टेककी पकितका अर्थ यह है, "अन्ततः हम सभी एक ही साम्राज्यके बन्धे हैं।"

इस दस्तेमें ३०० से ४०० तक गिरमिट-मुक्त हिंदुस्तानी थे जो स्वतंत्र भारतीयोंकी कोशिशसे इकट्ठा हुए थे। इनमेंसे ३७ मुखिया माने जाते थे। इन्हीं लोगोंके हुस्ताकरसे सरकारके पास प्रस्ताव भेजा गया था और दूसरोंको इकट्ठा करनेवाले भी यही थे। नेताओंमें बैरिस्टर, क्लर्क, मनीम आदि थे। बाकीके लोगोंमें कारीगर, राज, बढ़ई और मामूली मजदूर वगैरह थे। इनमें हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, उत्तर भारत वाले इस प्रकार सभी वर्गोंके लोग थे। व्यापारी वर्गमेंसे, कह सकते हैं कि एक भी आदमी नहीं था; पर व्यापारियोंने अपना हिस्सा पैसेके रूपमें दिया और काफी दिया।

इतने बड़े दस्तेको जो फौजी भत्ता मिलता है उसके अतिरिक्त दूसरी जरूरतें भी होती हैं और वे पूरी हो जाय तो इस फठिन जीवनमें कुछ राहत मिल जाती है। ऐसी राहत देने-  
 10. चीजे जुटानेका भार व्यापारी वर्गने अपने सिर लिया।  
 २५के साथ-साथ जिन घायलोंकी हमें सेवा करनी पड़ती थी उनके लिए भी मिठाई, बीड़ी-सिगरेट आदि देनेमें

उन्होंने अच्छी मदद की। हमारा पडाव जब किसी नगरके पास होता तो वहाँके व्यापारी ऐसी मदद देनेमें पूरा हिस्सा लेते थे।

जो गिरमिटिए हमारे दस्तेमें शामिल हुए थे उनके लिए उनकी अपनी कोठियोंसे अग्रज नायक भेजे गए थे; पर काम तो सबका एक ही था। सबको साथ ही रहना भी होता था। ये गिरमिटिए हमें देखकर बहुत खुश हुए और एक पूरे दस्तेकी व्यवस्था सहज ही हमारे हाथमें आ गई। इससे यह सारा दस्ता हिंदुस्तानी दस्ता ही कहा गया और उसके कामका यश भी भारतीय जनताको ही मिला। सब पूछिये तो गिरमिटियोंके इसमें शामिल होनेका यश भारतीय जनता नहीं ले सकती थी, उसके अधिकारी तो कोठीवाले ही थे। पर इतना सही है कि दस्ते संगठित हो जानेके बाद उसकी व्यवस्थाका यश स्वतंत्र भारतीय अर्थात् भारतीय जनता ही ले सकती थी और इसका स्वीकार जनरल वूलरने अपने खरीतोमें किया है।

हमें घायलो और पीड़ितोंकी सेवा-शुश्रूषाकी शिक्षा देनेवाले डाक्टर वूथ भी मेडिकल सुपरिटेण्डेंटके रूपमें हमारे दस्तेके साथ थे। ये भले पादरी थे और भारतीय ईसाइयोंमें काम करते हुए भी सबके साथ मिलते-जुलते थे। ऊपर जिन ३७ आदमियोंको मैंने नेताओंमें गिनाया है उनमेंसे अधिकांश इस भले पादरीके शिष्य थे।

जैसे हिंदुस्तानियोंका दस्ता बना था वैसे ही यूरोपियनोंका भी बनाया गया था। दोनोंको एक ही जगह काम भी करना होता था।

हमारा प्रस्ताव बिना शर्तके था। पर स्वीकार-पत्रमें यह जता दिया गया था कि हमें तोप या बंदूककी मारकी हदमें जाकर काम नहीं करना होगा। इसके मानी यह होते थे कि

रणक्षेत्रमे जो सिपाही घायल हो उन्हे सेनाके साथ रहनेवाला स्थायी सेवादल (ऐम्ब्युलेस कोर) उठाकर फौजके पीछे, तोप-बंदूककी मारके वाहर पहुंचा दे। गीरोका और हमारा तात्कालिक सेवादल संगठित करनेका कारण यह था कि लेडी स्मियमे घिरे हुए जनरल व्हाइटको छुड़ानेके लिए जनरल वूलर महाप्रयास करनेवाले थे और इतमे इतने आदमियोंके घायल होनेका डर था कि स्थायी सेवादल उन्हे सम्हाल नहीं सकता था। लड़ाई ऐसे प्रदेशमे हो रही थी जहा रणक्षेत्र और केन्द्रके बीच पक्की सड़के भी नहीं थी। इस कारण घोड़ा-भाड़ी आदि सवारियोंसे घायलोंको ले जाना भी मुमकिन नहीं था। केन्द्रीय शिविर सदा किसी-न-किसी रेलवे स्टेशनके पास रखा जाता था और वह मैदानसे सात-आठसे लगाकर पच्चीस मीलतकके फासले पर होता था।

हमे काम तुरत मिल गया और वह जितना हमने सोचा था उससे ज्यादा कड़ा था। घायलोंको उठाकर ७-८ मील ले जाना तो मामूली बात थी, पर अकसर बुरी तरह घायल सैनिकों और अफसरोंको उठाकर हमे पच्चीस-पच्चीस मील ले जाना पड़ता था। रास्तेमें उन्हे दवा भी देनी पड़ती थी। कूच सवेरे ८ बजे शुरू होता और शामके पांच बजे छावनीके अस्पतालपर पहुंच जाना पड़ता। यह बहुत कठिन काम समझा जाता। घायलोंको उठाकर एक ही दिनमे २५ मील ले जानेका मौका तो एक ही बार आया। फिर शुरूमे अंग्रेजोंकी हार-पर-हार हो गई और जस्मियोंकी तादाद बहुत बढ़ गई। इससे हमे मारके अंदर ले जानेका विचार भी अधिकारियोंको ताकपर रख देना पड़ा। पर मुझे यह बताना होगा कि जब ऐसा मौका आया तब हमसे यह कह दिया गया कि आपके साथ की हुई शर्तके अनुसार आप लोग ऐसी जगह नहीं भेजे जा सकते जहा आपको तोपका गोला या बंदूककी गोली लगनेका खतरा हो। इसलिए

अगर आप इस खतरेमें न पडना चाहते हो तो आपको इसके लिए मजबूर करनेका जनरल बूलरका जरा भी इरादा नहीं। पर आप यह जोखिम उठा लेंगे तो सरकार आपका अहसान मानेगी। हम तो जोखिम लेना चाहते ही थे। खतरेसे बाहर रहना हमें कभी पसंद नहीं आया था। अतः हम सबने इस अवसरका स्वागत किया, पर किसीको न गोली लगी और न कोई और तरहकी चोट पहुंची।

इस दस्तेके रोचक अनुभव तो कितने ही हैं, पर उन सबको देनेके लिए यहां स्थान नहीं। फिर भी इतना बता देना चाहिए कि हमारे दस्तेको, जिसमें अनघड, शिक्षा-संस्कार-रहित गिरमिटिए भी शामिल थे, यूरोपियनोंके स्थायी सेवादल और काली फौजके गोरे सिपाहियोंसे अकसर मिलने-जुलने और साथ काम करनेके मौके आते, पर हममेंसे किसीको यह नहीं जान पडा कि गोरे हमारे साथ अशिष्ट व्यवहार करते हैं या हमें तुच्छ समझते हैं। गोरोके तात्कालिक दस्तेमें तो दक्षिण अफ्रीकामें वसे हुए गोरे ही भरती हुए थे। लडाईके पहले वे हिंदुस्तानी विरोधी आन्दोलन करनेवालोंमेंसे थे, पर इस सकट-कालमें हिंदुस्तानी अपने निजके दुःख भूलकर हमारी मददके लिए आगे आये हैं, इस ज्ञान और इस दृश्यने उनके दिलको भी क्षण भरके लिए पिघला दिया था। जनरल बूलरके खरीतेमें हमारे कामकी तारीफ की गई थी, यह लिख चुका हू। ३७ मुखियोंको लडाईमें अच्छा काम करनेके लिए तमगे भी दिए गये।

लेडी स्मिथके छुटकारेके लिए जनरल बूलरने जो यह हमला किया था उसके पूरा होनेके दो महीनेके अंदर ही हमारे और गोरोके दस्तेको भी घर जानेकी इजाजत दे दी गई। लडाई तो इसके बाद बहुत दिनोतक चलती रही। हम तो फिर शामिल होनेके लिए सदा ही तैयार थे और विघटनके आदेशके

साथ यह कह दिया गया था कि फिर ऐसी जबर्दस्त जगी कार्रवाई करनी पड़ी तो सरकार आपकी सेवाका उपयोग अवश्य करेगी।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयों द्वारा युद्धमे अर्पित यह सहायता नगण्य गिनी जायगी। उनके काममे ज़ानका खतरा तो कह सकते हैं कि विलकूल ही नहीं था। फिर भी शुद्ध इच्छाका असर तो हुए बिना रहता ही नहीं। फिर इस इच्छाका अनुभव ऐसे बक्त हो जब कोई उसकी आशा न रखता हो तब तो उसकी कीमत दुनी आकी जाती है। जबतक लड़ाई चलती रही, भारतीयोंके विषयमे ऐसी सुंदर भावना बनी रही।

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले मुझे एक जानने योग्य वृत्तांत सुना देना चाहिए। लंडी स्मिथमे घिरे हुए लोगोंमे अंग्रेजोंके साथ-साथ वहां बसनेवाले इक्के-दुक्के हिंदुस्तानी भी थे। उनमे कुछ व्यापारी और शेष गिरिमिटिया थे, जो रेलवे कर्मचारी और गोरे गृहस्थोंके यहां खिदमतगारी करते थे। उनमे एक प्रभुसिंह नामका गिरिमिटिया था। घिरे हुए आदमियोंको अफसर कुछ काम तो सौंपता ही है। एक बड़ा ही जोखिमवाला और उतना ही मूल्यवान् काम कूलियोंमे गिने जानेवाले प्रभुसिंहके जिम्मे किया गया था। लंडी स्मिथके पासकी पहाड़ीपर बोधर लोगोंकी एक 'पोम्-पोम' तोप थी। इसके गोलोंसे बहुत-से मकान धराशायी हुए और बहुत-से लोगोंने जानसे भी हाथ धोया। तोपसे गोलके दगने और दूरके निशाने तक पहुचनेमे एक-दो मिनट तो लग ही जाते हैं। इतनी देरकी चेताबनी भी घिरे हुए लोगोंको मिल जाय तो वे किसी-न-किसी आडमे छिप जाते और अपनी जान बचा लेते। प्रभुसिंहको एक पेडके नीचे बैठनेकी इयूटी दी गई थी। जबसे तोप दगने लगी और जबतक दगती रही तबतक उसे वहां बैठे और तोपवाली पहाड़ीकी ओर आँख लगाये

रहना पड़ता । ज्योंही उसे आग भड़कती दिखाई दे, तुरत घटा बजा देना होता । उसे सुनकर जैसे विल्लीको देखकर चूहे अपने विलमे घुस जाते हैं वैसे ही जानलेवा गोलेके आनेकी सूचनाका घटा बजते ही नगरवासी अपनी-अपनी छिपनेकी जगहमें छिप जाते और अपनी जान बचा लेते ।

प्रभुसिंहकी इस अमूल्य सेवाकी सराहना करते हुए लेडी स्मिथके फौजी अफसरने लिखा है कि प्रभुसिंहने ऐसी निष्ठासे काम किया कि एक बार भी वह घटा बजानेसे नहीं चूका । यह बतानेकी जरूरत शायद ही हो कि प्रभुसिंहको खुद तो सदा खतरेमें ही रहना पड़ता था । यह बात नेटालमे तो मगहूर हुई ही, लार्ड कर्जन (हिंदुस्तानके तत्कालीन वाइसराय) के कानतक भी पहुची । उन्होंने प्रभुसिंहको भेट करनेके लिए एक काश्मीरी जामा भेजा और नेटालकी सरकारको लिखा कि प्रभुसिंहको यह उपहार समारोह-पूर्वक प्रदान किया जाय और जिस कारगुजारीके लिए उसे यह दिया जा रहा है उसका जितना ढिंडोरा पीटा जा सकता हो पीटा जाय । यह काम डर्बनके मेयरको सौंपा गया और डर्बनके टाउनहालमे सार्वजनिक सभा करके प्रभुसिंहको उक्त उपहार अर्पित किया गया । यह दृष्टांत हमें दो बातें सिखाता है एक तो यह कि हम किसी भी मनुष्यको तुच्छ न समझे । दूसरी यह कि डरपोक-से-डरपोक आदमी भी अवसर आनेपर वीर बन सकता है ।

: १० :

### लडाईके बाद

युद्धका मुख्य भाग १९०० में पूरा हो गया । इस बीच लेडी स्मिथ, किबरली और मेफेकिंगका छुटकारा हो गया

था। जनरल क्रोजे हार चुके थे। बोअरोंने ब्रिटिश उपनि-  
वेशोंका जितना भाग जीत लिया था वह सब ब्रिटिश सल्त-  
नतको वापस मिल चुका था। लाई किचनरने ट्रांसवाल  
और ऑरेंज फ्री स्टेटको भी जीत लिया था। अब कुछ बाकी  
था तो केवल 'बानर युद्ध' (गोरीला वारफेयर)।

मैंने सोचा कि दक्षिण अफ्रीकामें अब मेरा काम पूरा  
हो गया मान लिया जा सकता है। एक महीनेके बदले में  
छ दरस रह गया। कार्यकी रूप-रेखा बघ गई थी। फिर भी  
भारतीय जनताके खुशीसे इजाजत दिये बिना मेरा निकास  
नहीं हो सकता था। मैंने अपने साथियोंको बताया कि मेरा  
इरादा हिंदुस्तानमें लोकसेवा करनेका है। स्वार्थके बदले  
सेवाधर्मका पाठ मैं दक्षिण अफ्रीकामें पढ़ चुका था। उसकी  
धुन समा चुकी थी। मनसुखलाल नाजर दक्षिण अफ्रीकामें  
थे ही। खान भी थे। दक्षिण अफ्रीकासे ही गये हुए कितने  
ही भारतीय युवक बैरिस्टर होकर लौट भी चुके थे।  
अतः मेरा देश लौटना किसी तरह अनुचित नहीं माना जा  
सकता था। यह सब दलीले देते हुए भी मुझे इस शर्तपर  
इजाजत मिली कि दक्षिण अफ्रीकामें कोई अनसोची अड़चन  
आ पड़े और मेरी जरूरत समझी जाय तो कौम मुझे  
चाहे जव वापस बुला सकती है और मुझे तुरत वापस जाना  
होगा। यात्राका और मेरे रहनेका खर्च कौमको उठाना  
होगा। यह शर्त मंजूर कर मैं देश लौटा।

मैंने बम्बईमें बैरिस्टरी करनेका निश्चय किया और  
चेवर ले लिया। इसमें मुख्य हेतु तो था स्वर्गीय गोखलेकी  
सलाहसे और उनकी देखरेखमें सार्वजनिक कार्य करना,  
पर साथ ही आजीविका कमानेका भी उद्देश्य था।  
मेरी वकालत भी कुछ चल निकली। दक्षिण अफ्रीकाके  
साथ जो मेरा इतना गहरा संबंध जुड़ गया था उससे



वहासे लौटे हुए मक्किलोसे ही मुझे इतना पैसा मिल जाता था कि मेरा खर्च आसानीसे चल जाता। पर मेरे भाग्यमे स्थिर होकर बैठना लिखा ही न था। मुक्किलसे तीन-चार मंहीने बंबईमे स्थिर होकर बैठा हुगा कि दक्षिण अफ्रीकासे तार आया—“स्थिति गंभीर है। मि० चैवरलेन जल्दी ही आ रहे है। आपकी उपस्थिति आवश्यक है।”

बम्बईका दफ्तर और घर समेटा और पहले ही जहाजसे दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हो गया। यह सन् १९०२ के अतका समय था। १९०१के आखिरमें मैं हिंदुस्तान लौटा था। १९०२के मार्च-अप्रैलमे बंबईमे दफ्तर खोला। तारसे मैं पूरी बात जान नहीं सका था। मैंने अटकल लगाई कि सकट कहीं ट्रांसवालमे ही होगा। पर चार-छ महीनेके अदर लौट सकूंगा, यह सोचकर बाल-बच्चोको साथ लिए बिना ही मैं चल दिया था। मगर ज्योही टर्बन पहुचा और सारी हकीकत सुनी मैं दिग्भ्रम हो गया। हममेंसे बहुतोंने सोचा था कि युद्धके बाद सारे दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंकी हालत सुवर जायगी। ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें तो कोई कठिनाई ही नहीं सकती, क्योंकि लार्ड लेंसडाउन, लार्ड सेलबर्न आदि बड़े ब्रिटिश अधिकारियोने कहा था कि वोअर राज्योमे भारतीयोकी विपम स्थिति भी इस युद्धका एक कारण है। प्रिटोरियामे रहनेवाला ब्रिटिश राजदूत भी अनेक बार मेरे सामने कह चुका था कि ट्रांसवाल ब्रिटिश उपनिवेश हो जाय तो हिंदुस्तानियोंके सारे कष्ट तुरंत मिट जायगे। यूरोपियन भी मानते थे कि राज्य-व्यवस्था बदल जानेपर ट्रांसवालके पुराने (भारतीय विरोधी) कानून हिंदुस्तानियोंपर लागू नहीं हो सकेंगे। यह बात इतनी सर्वमान्य हो गई थी कि नीलाम करनेवाले जो गोरे जमीनकी बोली बोक्ते समय लडाईके पहले हिंदुस्तानियोंकी बोली मजूर नहीं करते थे वे

अब खुले तौरपर उसे स्वीकार करने लगे। कितने ही हिंदु-स्तानियोंने इस तरह नीलाममें जमीन खरीद भी ली। पर जब वे तहसीलमें जमीनकी रजिस्ट्री कराने गये तो मालके अफसरने १८८५ का कानून सामने रख दिया और दस्तावेजकी रजिस्ट्री करनेसे इन्कार कर दिया। डर्बनमें उतरनेपर मैंने इतना तो सुन लिया। नेताओंने मुझसे कहा कि आपको ट्रांसवाल जाना है। मि० चेंबरलेन पहले तो यही आयगे। यहाकी (नेटालकी) स्थितिसे भी उनको वाकिफ करा देना जरूरी है। यहाका काम निवटाकर उन्हीके पीछे-पीछे आपको ट्रांसवाल जाना होगा।

नेटालमें श्री चेंबरलेनसे एक शिष्टमडल मिला। उन्होने सारी बातें बड़े सौजन्यके साथ सुन ली और नेटालके मंत्रिमडलके साथ वाते करनेका वचन दिया। नेटालमें जो कानून युद्धके पहले बन गए थे उनमें तुरंत हेर फेर होनेकी आशा मैं खुद नहीं करता था। इन कानूनोंका वर्गन पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका है।

पाठक यह तो जानते ही हैं कि लड़ाईके पहले चाहे जो हिंदुस्तानी चाहे अब ट्रांसवालमें दाखिल हो सकता था। पर मैंने देखा कि अब ऐसी स्थिति नहीं है। फिर भी इस वक्त जो रूकावटें थी वे गोरे और हिंदुस्तानी दोनोंपर समान रूपसे लागू होती थी। आज भी देशकी दशा ऐसी थी कि बहुतसे लोग एक साथ उसमें भर जाय तो सबको अन्न-वस्त्र भी पुरा न मिल सके। लड़ाईके कारण बन्द हुई बहुतसी दुकानें अब भी बन्द थी। दुकानोंका अधिकांश माल बीयर सरकार साफ कर गई थी। अतः मैंने मनमें सोचा कि अगर यह रूकावट एक बड़ी मुद्दतके लिए ही हो तो भय करनेका कारण नहीं, पर गोरे और हिंदुस्तानीके लिए ट्रांसवाल जानेका परवाना लेनेकी रीतिमें अंतर था और यह भेद ही

भयका कारण हो गया। परवाने देनेके दफ्तर दक्षिण अफ्रीकाके-जुदा-जुदा बदरगाहोमे खोले गये थे। गोरेको तो कह सकते हैं कि मांगते ही परवाना मिल जाता था, पर हिंदुस्तानियोंके लिए तो ट्रांसवालमे एक एशियाटिक विभाग स्थापित किया गया था।

यह अलग महकमेकी स्थापना एक नयी घटना थी। हिंदुस्तानियोंको इस महकमेके अफसरके पास अर्जी भेजनी होती। वह मजूर हो गई तो डबैन या किसी दूसरे बदरगाहसे आमतौरसे परवाना मिल जाता था। यह अर्जी मुझे भी देनी होती तो मि० चेरलेनके ट्रांसवालसे चल देनेके पहले परवाना मिलनेकी आशा नहीं रखी जा सकती थी। ट्रांसवालके भारतीय वैसे परवाना प्राप्त कर मुझे नहीं भेज सके थे। यह बात उनके बसके बाहर थी। मेरे परवानेका आधार उन्होने डबैनसे मेरे परिचय, मेरे सबधका बनाया था। परवाना देनेवाले अफसरसे मेरी जान-पहचान नहीं थी, पर डबैनके पुलिस सुपरिटेण्डेण्टसे थी। इसलिए उन्हें साथ लेजाकर अपनी पहचान दिला दी। १८९३ मे मैं एक सालतक ट्रांसवालमे रह चुका हूँ, यह अधिकार बताकर मैंने परवाना हासिल किया और प्रिटोरिया पहुँचा।

यहाँ मैंने बिल्कुल दूसरा ही वातावरण पाया। मैंने देखा कि एशियाटिक विभाग एक भयानक महकमा है और महज हिंदुस्तानियोंको दबानेके लिए कायम किया गया है। उसके अफसर उन लोगोंसे थे जो युद्धकालमे हिंदुस्तानी सेनाके साथ दक्षिण अफ्रीका गए थे और भाग्यपरीक्षाके लिए वहाँ रह गए थे। उनसे कितने तो घूसखोर थे। दो अफसरोपर मुकदमा भी चला। जुरीने तो उन्हें छोड़ दिया, पर चूँकि उनके घूस खानेके वारेमे कोई सदेह नहीं रह गया था, इसलिए वे नौकरीसे अलग कर दिये गए। पक्षपातकी

### सहाईके वाद

तो कोई हद ही न थी, जहाँ इस तौरपर एक खास महकमा कायम किया गया हो और जब वर्ग-विशेषके स्वत्वोपर अंकुश रखनेके लिए ही उसका निर्माण हुआ हो तब अपनी हस्ती कायम रखनेके लिए और वह अपने कर्तव्यका पालन ठीक तौरसे कर रहा है यह दिखानेके लिए उसका झुकाव नए-नए अंकुश बूँदते रहनेकी ओर ही होता है। हुआ भी यही। मैंने देखा कि मुझे फिरसे श्रीगणेश करना होगा। एशियाटिक महकमेको तुरंत इसका पता नहीं लगा सका कि मैं ट्रांसवालमे कैसे दाखिल हो गया। मुझसे पूछनेकी तो यकायक उसकी हिम्मत हुई नहीं। मैं मानता हूँ कि उसके अधिकारियोने इतना तो माना होगा कि मैं चोरीसे नहीं दाखिल हुआ हूँगा। इधर-उधरसे पूछताछकर उन्होंने यह भी मालूम कर लिया कि मैंने परवाना कैसे हासिल कर लिया। प्रिटोरियाका शिष्ट-मण्डल भी मि० चेवरलेनके पास जानेको तैयार हुआ। जो आवेदनपत्र उनके सामने पेश किया जानेवाला था उसका मसविदा मैंने बना दिया। पर एशियाटिक महकमेने मुझे उनके सामने जानेकी मनाही कर दी। भारतीय नेताओंने सोचा कि ऐसी दशामे हमें भी मि० चेवरलेनसे मिलने नहीं जाना चाहिए; पर मुझे यह विचार नहीं रुचा। मैंने उन्हें यह सलाह दी कि मेरा जो अपमान हुआ है उसे मुझे तो पी ही जाना चाहिए, कौमको भी उसकी परवा नहीं करनी चाहिए। अर्जी तो तैयार है ही, मि० चेवरलेनको उसे सुना देना बहुत जरूरी है। हिंदुस्तानके एक वैरिस्टर मि० जार्ज गाडफे वहाँ मौजूद थे। मैंने उन्हें अर्जी पढ़ देनेके लिए तैयार कर लिया। शिष्ट-मण्डल गया। मेरी बात उठी तो मि० चेवरलेनने कहा—“मि० गाधीसे तो मैं डेनमें मिल चुका हूँ। इसलिए यह सोचकर कि वहाँके लोगोका वृत्तांत यहीके लोगोसे सुनना ज्यादा अच्छा

होगा मैंने उनसे मिलनेसे इन्कार कर दिया ।” मेरी दृष्टिसे तो इस उत्तरने आगमें घीका काम दिया । एगियाटिक महकमेने जो सिखाया था मि० चेवरलेन वही बोले । जो हवा हिंदुस्तानमें बहा करती है वही उक्त विभागने ट्रांसवालमें बहा दी । गुजराती भाइयोको यह बात मालूम होनी ही चाहिए कि वम्बईका रहनेवाला चंपारनमें अथेज अफसरोंके लिए परदेसी होता है । इस नियमके अनुसार उर्वनमें रहनेवाला मैं ट्रांसवालकी स्थिति कैसे जान सकता हूँ, यह पाठ एगियाटिक विभागने मि० चेवरलेनको पढाया । उनको क्या मालूम कि मैं ट्रांसवालमें रह चुका हूँ और न रहा होऊँ तो भी ट्रांसवालकी पूरी परिस्थितिसे परिचित हूँ । सवाल एक ही था ट्रांसवालकी परिस्थितिसे सर्वाधिक परिचित कौन है ? हिंदुस्तानसे मुझे खास तौरसे बुलाकर भारतीय जनताने इस प्रश्नका उत्तर दे दिया था, पर हुकूमत करनेवालेके सामने न्यायशास्त्रकी दलील नहीं चल सकती, यह कोई नया अनुभव नहीं । मि० चेवरलेनपर इस वक्त स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियोंका इतना असर था और गोरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए वह इतने आतुर थे कि उनके हाथों न्याय होनेकी आशा तनिक भी नहीं थी या बहुत ही कम थी । पर न्याय पानेका एक भी उचित उपाय भूलसे या स्वाभिमानवश किये बिना न रह जाय, इस खयालसे शिष्ट-मण्डल उनके पास भेजा गया ।

पर मेरे सामने १८९४से भी अधिक त्रिपम प्रसंग उपस्थित हो गया । एक दृष्टिसे देखनेसे मुझे ऐसा दिखाई दिया कि मि० चेवरलेन यहांसे खाना हुए कि मैं हिंदुस्तानको वापस जा सकता हूँ । दूसरी ओर मैं यह भी साफ देख सकता था कि अगर मैं कौमको भयावह स्थितिमें देखते हुए भी हिंदुस्तानमें सेवा करनेके अभिमानसे वापस जाऊँ तो जिस सेवा-

धर्मकी भाँकी मुझे हुई है वह दूषित हो जायगी। मैंने सोचा कि मेरी सारी जिंदगी भले ही दक्षिण अफ्रीकामें बीत जाय, पर जबतक धिरे हुए बादल बिखर नहीं जाते या हमारी सारी कोशिशके बादजद और अधिक उमडकर कौमर फट नहीं पड़ते, तबतक मुझे ट्रांसवालमें ही रहना चाहिए। मैंने नेताओंके साथ इस प्रकारकी बातचीत की और १८९४ की तरह वकालतकी आमदनीसे गुजर करनेका अपना निश्चय भी बताना दिया। कौमको तो इतना ही चाहिए था।

मैंने तुरत ट्रांसवालमें वकालत करनेकी इजाजतकी दरखास्त दे दी। डर था कि यहाँ भी वकीलका मण्डल मेरी अर्जीका विरोध करेगा, पर वह निराधार निकला। मुझे सनद मिल गई और मैंने जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला। ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंकी सबसे बड़ी आवादी जोहान्सबर्गमें ही थी। इसलिए मेरी आजीविका और सार्वजनिक काम दोनोंकी दृष्टिसे जोहान्सबर्ग ही मेरे लिए अनुकूल केन्द्र था। एशियाटिक विभागकी अष्टताका कट्टा अनुभव मुझे दिन-दिन हो रहा था और वहाँके भारतीय मंडल (ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन) का सारा जोर इस सदनको दूर करनेकी ही ओर लग रहा था। १८८५ के कानूनको रद्द कराना तो अब दूरका लक्ष्य हो गया था। तात्कालिक कार्य एशियाटिक विभागके रूपमें जो बाढ़ हमारी ओर चढ़ी आ रही थी उससे अपना बचाव करना था। लांड मिल्नर, लांड सेलवोन जो वहाँ आये थे, सर आर्थर लॉली जो ट्रांसवालमें लफिनेट गवर्नर थे और पीछे मद्रासके गवर्नर हुए, इन तथा इनसे नीचेकी श्रेणीके अधिकारियोंके पास भी निष्पत्ति-मण्डल गये। मैं अकेले भी अकसर उनसे मिलता। थोड़ी-बहुत राहत भी मिलती। पर वह सभी फटे कपड़ेमें पैबंद लगा देना जैसा था। लुटेरे हमारा सारा धन हर लें और पीछे

हम गिडगिडावे तो उसमेसे कुछ लौटा दे, इसमे हम जिस प्रकारका सन्तोष मान सकते हैं कुछ वैसा ही सतोष हमें मिलता। जिन अहलकारोंके वरखास्त किये जानेकी बात ऊपर लिख चुका हूँ उनपर इस आन्दोलनके फलस्वरूप ही मुकदमा चलाया गया। भारतीयोंके प्रवेशके विषयमे जो आशका होनेकी बात पहले बता चुका हूँ वह सही निकली। गोरोंको परवाना लेना जरूरी नहीं रहा, पर हिंदुस्तानियोंके लिए उसकी पख लगी ही रही। ट्रांसवालकी पुरानी बोअर सरकारने जैसे कड़े कानून बनाये थे वैसी कडाईमे उनपर अमल नहीं होता था। यह कुछ उसकी उदारता या भलमनसाहत नहीं थी, बल्कि उसका शासन-विभाग लापरवाह था और इस विभागके अधिकारी भले हो तो भलमनसी बरतनेका उन्हें जितना अवकाश पिछली सरकारकी अधीनतामे था उतना ब्रिटिश सरकारकी मातहतमे नहीं था। ब्रिटिश राज्यतंत्र पुराना होनेसे दृढ़ और व्यवस्थित हो गया है और अफसरो-अहलकारोंको उसमे यत्रकी तरह काम करना पडता है; क्योंकि उनके ऊपर एकके बाद एक चढते-उतरते अंकुश लगे हुए हैं। इससे ब्रिटिश विधानमे राज्यपद्धति उदार हो तो प्रजाको उसकी उदारताका अधिक-से-अधिक लाभ मिल सकता है और अगर वह पद्धति जुल्म करनेवाली या कजूस हो तो इस नियंत्रित शासनतंत्रमे उसका दबाव भी वह पूरा-पूरा अनुभव करती है। इसकी उलटी स्थिति ट्रांसवालकी पुरानी शासन-व्यवस्था जैसे राज्यतंत्रमे होती है। उदार कायदे-कानूनका लाभ मिलना न मिलना अधिकांशमे उस विभागके अधिकारियोंके भले-बुरे होनेपर अवलंबित होता है। अतः जब ट्रांसवालमे ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ तो भारतीयोंसे सबंध रखनेवाले सभी कानूनोंपर उत्तरोत्तर अधिक कडाईसे अमल होने लगा। पकडसे बचनेके जो रास्ते पहले खुले रह

गये थे वे सब बन्द कर दिये गये। यह तो हम देख ही चुके हैं कि एशियाटिक विभागकी नीति कड़ाईकी होनी ही चाहिए थी। अतः पुराने कानून कैसे रद्द कराये जायं, यह सवाल तो अलग रहा, पर उनकी कठोरता अमलमें नरम कैसे कराई जा सकती है, फिलहाल तो इसी दृष्टिसे भारतीय जनताको प्रयत्न करना रहा।

एक सिद्धांतकी चर्चा जल्दी या देरसे हमें करनी ही होगी और इस जगह कर देनेसे आगे पैदा होनेवाली परिस्थिति और भारतीय दृष्टिबिन्दुको समझनेमें कुछ आसानी हो सकती है। ज्योंही ट्रांसवाल और औरेंज फ्री स्टेटमें ब्रिटिश पताका फहराने लगी, लाड मिल्लरने एक कमेटी नियुक्त की। उसका काम था दोनों राज्योंके पुराने कानूनोंकी जांचकर ऐसे कानूनोंकी सूची तैयार करना जो प्रजाके अधिकारपर प्रतिबन्ध लगाते हैं या ब्रिटिश विधानके तत्वके विरुद्ध हैं। भारतीयोंकी स्वतंत्रतापर आघात करनेवाले कानून भी साफ-तौरसे इस सूचीमें आते थे। पर यह कमेटी नियुक्त करनेमें लाड मिल्लरका उद्देश्य हिंदुस्तानियोंके कष्टोंका नहीं, बल्कि अंग्रेजोंके कष्टोंका निवारण था। जिन कानूनोंसे अप्रत्यक्ष रीतिसे अंग्रेजोंको बाधा होती थी उन्हें जितनी जल्दी हो सके रद्द कर देना उनका उद्देश्य था। कमेटीकी रिपोर्ट बहुत ही थोड़े समयमें तैयार हो गई और छोटै-बड़े कितने ही कानून जो अंग्रेजोंके स्वार्थके विरोधी थे, कह सकते हैं कि कलमके एक ही फरटिमें रद्द कर दिये गए।

इसी कमेटीने भारतीय विरोधी कानूनोंको भी छांटकर अलग किया। वे एक पुस्तकके रूपमें छापे गये, जिसका उपयोग या हमारी दृष्टिसे दुरुपयोग एशियाटिक विभाग आसानीसे करने लगा।

अब अगर भारतीय विरोधी कानून विना हिंदुस्तानियोंका



नाम उनमें रखे और इस ढंगपर बनाये गए हों कि वे खास तौरसे उन्हींके खिलाफ न हो, बल्कि सबपर लागू होते हो, सिर्फ उनपर अमल करना न करना अधिकारीकी मर्जीपर छोड़ा गया हो, या उन कानूनोंके अदर ऐसे प्रतिबन्ध रखे गये हो जिनका अर्थ तो सार्वजनिक हो, पर उनकी अधिक चोट हिन्दु-स्तानियोंपर ही पड़ती हो, तो ऐसे कानूनोंसे भी कानून बनाने-वालोंका अर्थ सिद्ध हो सकता था और फिर भी वे सार्वजनिक रूपसे लागू होनेवाले कहे जाते। उनसे किसीका अपमान न होता और कालक्रमसे जब विरोधका भाव नरम हो जाता तब कानूनमें कोई हेरफेर किये बिना, केवल उदार दृष्टिसे उसपर अमल होनेसे, जिस जाति-वर्गके विरुद्ध वह कानून बना होता वह बच जाता। जिस प्रकार दूसरी श्रेणीके कानूनोंको मने सार्वजनिक कानून कहा है, वैसे ही पहले प्रकारके कानूनोंको एकदेशीय या जातीय कानून कह सकते हैं। दक्षिण अफ्रीकामे उन्हे रंग-भेदकारी कानून कहते हैं, इसलिए कि उनमें चमड़ेके रंगका भेद करके काले या गेहुआ रंगके चमड़ेवाली जनतापर गोरोंके मुकाबले अधिक अंकुश रखा जाता है।

जो कानून बन चुके थे उनमेंसे ही एक मिसाल लीजिये। पाठकोंको याद होगा कि मताधिकार (हरण) का जो पहला कानून नेटालमें पास हुआ और जो पीछे साम्राज्य सरकार द्वारा रद्द कर दिया गया उसमें इस आशयकी धारा थी कि एशियाई मात्रको आगेसे चुनावमें मत देनेका अधिकार न होगा। अब ऐसे कानूनको बदलना ही तो लोकमतको इतना शिक्षित करना होगा कि अधिकांश जन एशियाइयोंसे द्वेष करनेके बदले उनकी ओर मित्रभाव रखनेवाले हो जाय। जब ऐसा सुभव-सर आये तभी नया कानून बनाकर यह रंगका दाग दूर किया जा सकता है। यह हुआ एकदेशीय या रंग-भेद करनेवाले

कानूनका दृष्टान्त । अब ऊपर बताया हुआ कानून रद्द होकर उसको जगहपर जो दूसरा कानून बना उसमें भी मूल उद्देश्यकी लगभग रक्षा कर ली गई थी, फिर भी वह सार्वजनिक था और रग-भेदका डक उसमेंसे दूरकर दिया गया था । इस कानूनकी एक दफाका भावार्थ यह है . “ जिस देशकी जनताको ‘पार्लिमेटरी फ्रेचाइज’ अर्थात् ब्रिटिश जनताको अपनी साधारण समा-सदस्यके चुनावमें मत देनेका जैसा अधिकार प्राप्त है वैसा मताधिकार नहीं है उस देशका निवामी नेटालमें मताधिकारी नहीं हो सकता । ” इसमें कहीं भी हिंदुस्तानी या एशियाईका नाम नहीं आता । हिंदुस्तानमें इंग्लैंडका-सा मताधिकार है या नहीं, इस विषयमें विधान-शास्त्री तो भिन्न-भिन्न मत देंगे । पर दलीलकी खातिर मान लीजिये कि हिंदुस्तानमें उस वक्त यानी १८९४ में मताधिकार नहीं था या आज भी नहीं है, फिर भी नेटालमें मताधिकारियों—बोटेके अधिकारियोंके नाम दर्ज करनेवाला अधिकारी हिंदुस्तानियोंका नाम बोट-सूचीमें लिख ले तो यकायक कोई यह नहीं कह सकता कि उसने गैरकानूनी काम किया । सामान्य अनुमान सदा प्रजाके अधिकारकी ओर किया जाता है । अतः उस वक्तकी सरकार जबतक विरोध करनेका इरादा न करले तबतक ऊपर लिखे हुए कानूनके मौजूद रहते हुए भी भारतीयों और दूसरोंके नाम बोट-सूचीमें दर्ज किये जा सकते हैं अर्थात् कुछ दिनोंमें नेटालमें हिंदुस्तानीसे नफरत करनेका भाव घट जाय, वहाँकी सरकार हिंदुस्तानियोंका विरोध न करना चाहे तो कानूनमें कुछ भी फेरफार किये बिना हिंदुस्तानियोंके नाम बोटरोके रजिस्टरमें दर्ज किये जा सकते हैं । सामान्य या सार्वजनिक कानूनकी यह खूबी होती है । ऐसी और मिसालें दक्षिण अफ्रीकाके उन कानूनोंसे दी जा सकती हैं जिनका जिक्र पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका है । इसलिए

बुद्धिमानी की राजनीति यही मानी जाती है कि एकदेशीय—वर्ग या जाति विशेषपर ही लागू होनेवाले—कानून कम-से-कम बनाये जाय। विलकुल ही न बनाना तो सर्वोत्कृष्ट नीति है। कोई कानून जब एक बार बन गया तो उसे बदलनेमें अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। लोकमत जब बहुत शिक्षित समझदार हो जाय तभी कोई कानून रद्द किया जा सकता है। जिस लोकतन्त्रमें सदा कानूनोंमें रद्दोबदल होती रहती है वह लोकतन्त्र सुव्यवस्थित नहीं माना जा सकता।

ट्रांसवालमें एशियाइयोंके खिलाफ जो कानून बने थे उनमें भरे हुए जहरका अन्दाजा अब हम अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। ये सारे कानून एकदेशीय थे। इनके अनुसार एशियावासी चुनावमें मत नहीं दे सकता था। सरकारने जो रकबे या महल्ले ठहरा दिये थे उनके बाहर न जमीन खरीद सकता था और न रख सकता था। इन कानूनोंके रद्द हुए बिना अधिकारी वर्ग हिंदुस्तानियोंकी मदद कर ही नहीं सकता था। ये कानून सार्वजनिक नहीं थे। इसीसे लार्ड मिल्लरकी कमेटी उन्हें अलग छांट सकी थी। वे सार्वजनिक होते तो दूसरे कानूनोंके साथ वे सब कानून भी रद्द हो गये होते, जिनमें एशियाइयोंका नाम तो खासतौरसे नहीं लिया गया है, पर जिनका अमल उन्हींके खिलाफ होता था। अधिकारीवर्ग यह तो कह ही नहीं सकता था—“हम क्या कर सकते हैं? हम लाचार हैं। जबतक नई धारा सभा इन कानूनोंको रद्द नहीं कर देती तबतक हमें तो उनको अमलमें लाना ही होगा।”

जब ये कानून एशियाटिक महकमेके हाथमें आये तो उसने उनपर पूरे तौरसे अमल करना शुरू किया। इतना ही नहीं, शासक-मंडल अगर उन कानूनोंको अमल करने योग्य माने तो उनमें जो त्रुटियाँ छूट गई हों, बचावके रास्ते रह गये

हों, उन्हें वंद कर देनेके नये अधिकार भी उसे प्राप्त करने ही होंगे । दलील तो सीधी-सादी मालूम होती है । कानून अगर बुरे हैं तो उन्हें रद्द कर देना चाहिए और अच्छे हैं तो उनमें जो त्रुटियाँ रह गई हों उन्हें दूर कर देना चाहिए । कानूनोंपर अमल करानेकी नीति शासक-मंडलने स्वीकार कर ली थी । भारतीय जनता बोअर-युद्धमें अंग्रेजोंके कंधे-से-कंधा सटाकर खड़ी हुई थी और जानकी जोखिम उठाई थी, पर यह तो तीन-चार बरसकी पुरानी बात हो गई थी । ट्रांसवालका ब्रिटिश राजदूत भारतीय जनताका पक्ष लेकर लड़ा था, यह भी पुराने राजतंत्रकी बात थी । युद्धके कारणोंमें भारतीयोंके कष्ट भी बताये गये थे; पर यह ऐसे अधिकारियोंकी घोषणा थी जो दूरदर्शितासे रहित और स्थानीय अनुभवसे कोरे थे । स्थानीय अनुभवने तो स्थानीय अधिकारियोंको साफ वता दिया कि बोअर-राज्यमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ जो कानून बनाये गये थे वे न यथेष्ट थे और न व्यवस्थित । हिंदुस्तानी जब जीमे आये ट्रांसवालमें घुस आये और जहाँ जैसे जीमे आये रोजगार करने लगे तब तो अंग्रेज व्यापारियोंकी भारी हानि होगी । इन और ऐसी दूसरी दलीलोंने गोरे और उनके प्रतिनिधि-शासक-मंडलके दिमागपर कसकर कब्जा जमाया । गोरे कम-से-कम समयमें अधिक-से-अधिक पैसा इकट्ठा कर लेना चाहते थे । हिंदुस्तानी इसमें थोड़ा भी हिंसा बटाएँ, यह उन्हें कब पसन्द आता ? राजनीतिमें तत्त्वज्ञानका ढोंग भी घुसा । दक्षिण अफ्रीकाके वृद्धिमान पुर्तबोका सन्तोष निरी बर्नियाशाही, अपने लाभ, स्वार्थकी दलीलसे नहीं हो सकता था । अन्याय करनेके लिए भी मानव-बुद्धि सदा ऐसी दलीलों बूझती है जो उसे ठीक लगे । दक्षिण अफ्रीकाकी वृद्धिने भी यही किया । जनरल स्मट्स आदिने जो दलीलें दीं वे इस प्रकार थी :

“दक्षिण अफ्रीका पश्चिमकी सभ्यताका प्रतिनिधि है। हिंदुस्तान पूर्वकी सभ्यताका केंद्र-स्थान है। दोनो सभ्यताओंका सम्मिलन हो सकता है, इस बातको इस जमानेके तत्त्वज्ञानी तो स्वीकार नहीं करते। इन दोनो सभ्यताओंकी प्रतिनिधि जातियोंका छोटे समुदायोमें भी सगम हो तो इसका परिणाम विस्फोटके सिवा और कुछ नहीं हो सकता। पश्चिम सादगीका विरोधी है, पूर्वके लोभ सादगीको प्रधान पद देते हैं। इन दोनोका मेल कैसे हो सकता है? इन दोनोमें कौन सभ्यता अधिक अच्छी है, यह देखना राजकाजी अर्थात् व्यावहारिक पुरुषोंका काम नहीं। पश्चिमकी सभ्यता अच्छी हो या बुरी; पर पश्चिमकी जनता उसे ही अपनाये रहना चाहती है। उस सभ्यताके रक्षार्थ पश्चिमकी जनताने अयक प्रयत्न किया है। खूनकी नदियां बहाई है। अनेक प्रकारके दूसरे दुःख सहै है। अतः पश्चिमकी जनताको अब दूसरा रास्ता नहीं सूझनेका। इस दृष्टिसे देखा जाय तो हिंदुस्तानी और गोरोंका सवाल न व्यापारद्वेषका है और न वर्णद्वेषका। केवल अपनी सभ्यताके रक्षणका, अर्थात् आत्मरक्षाके उच्चतम अधिकारके उपयोग और उससे प्राप्त कर्तव्यके पालनका सवाल है। हिंदुस्तानियोंके दोष निकालना भाषणकर्ताओंको लोगोको भड़कानेके लिए भले ही रुचता हो, पर राजनैतिक दृष्टिसे विचार करनेवाले तो यही मानते और कहते हैं कि भारतीयोंके गुण ही दक्षिण अफ्रीकामें दोषरूप हो रहे हैं। अपनी सादगी, अपने लंबे समयतक श्रम करनेके धैर्य, अपनी किफायतशारी, अपनी परलोक-परायणता, अपनी सहनशीलता, इत्यादि गुणोंके कारण ही हिंदुस्तानी दक्षिण अफ्रीकामें अप्रिय हो रहे हैं। पश्चिमकी जनता साहसिक, अधीर, दुनियावी आवश्यकताओंको बढ़ाने और उन्हें पूरी करनेमें मग्न, खाने-पीनेकी शौकीन, शरीरश्रम बचानेको आतुर और उडाळ

स्वभावकी है। इससे उसे यह डर रहता है कि पूर्वकी सभ्यताके हजारों प्रतिनिधि दक्षिण अफ्रीकामे बस गये तो पश्चिमके लोगोका पछाड़ा जाना निश्चित ही है। इस आत्मघातके लिए दक्षिण अफ्रीकामे बसनेवाली पश्चिमकी जनता हर्गिज तैयार नहीं हो सकती और इस जनताके हिमायती उसे इस खतरेमें कभी नहीं पड़ने देंगे।”

मैं समझता हूँ, भले-से-भले और चरित्रवान् यूरो-पियन इस दलीलको जिस शकलमें पेश करते हैं मैंने उसी रूपमें निष्पक्षभावसे यहां उसे उपस्थित किया है। मैं ऊपर इस दलीलको तत्त्वज्ञानका ढोंग बता आया हूँ; पर इससे मैं यह सूचित करना नहीं चाहता कि इस दलीलमें कुछ भी सार नहीं है। व्यावहारिक दृष्टि, अर्थात् तात्कालिक स्वार्थ-दृष्टिसे तो उसमें बहुत-कुछ सार है, पर तार्त्विक दृष्टिसे वह निरा ढोंग है। मेरी छोटीसी अक्लको तो यही दिखाई देता है कि तटस्थ मनुष्यकी बुद्धि ऐसे निर्णयको स्वीकार नहीं कर सकती। कोई सुधारक अपनी सभ्यताको वैसी असहाय स्थितिमें नहीं डालेगा जैसी स्थितिमें ऊपरकी दलीले देनेवालोंने अपनी सभ्यताको डाल दिया है। पूर्वके किसी तत्त्वज्ञानीको यह भय होता हो कि पश्चिमकी जनता पूर्वके साथ आजादीसे मिले-जुले तो पूर्वकी सभ्यता पश्चिमकी बाढमें डालूकी तरह वह जायगी। यह मैं नहीं जानता। पूर्वके तत्त्वज्ञानको जहाँतक मैं समझ पाया हूँ, मुझे तो यही दिखाई देता है कि पूर्वकी सभ्यता पश्चिमके स्वतंत्र सगमसे निर्भय रहती है। यही नहीं, वैसे सम्पर्कका स्वागत करती है। इसकी उलटी मिसालें पूर्वमें दिखाई दे तो जिस सिद्धांतका प्रतिपादन मैंने किया है उसको इससे आंच नहीं आती, क्योंकि मैं मानता हूँ कि इस सिद्धांतके समर्थनमें अनक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। कुछ भी हो, पश्चिमके तत्त्वज्ञानियोंका दावा तो यह है कि

पश्चिमकी सभ्यताका मूल सिद्धांत यही है कि पशुवल सर्वोपरि है और इसीसे इस सभ्यताके हिमायती पशुबलके रक्षणमें अपने समयका अधिक-से-अधिक भाग लगाते हैं। उनका तो यह भी सिद्धांत है कि जो राष्ट्र अपनी आवश्यकताएँ नहीं बढ़ाता उसका अंतमें नाश होना निश्चित है। इसी सिद्धांतका अनुसरण करके तो पश्चिमकी जातियाँ दक्षिण अफ्रीकामें बसी हैं और अपनी सख्याकी तुलनामें सैकड़ों गुना बड़ी तादादवाले हबशियोंको अपने वशमें कर लिया है। उन्हें हिंदुस्तानकी रक जनताका भय हो ही कैसे सकता है? इस सभ्यताकी दृष्टिसे वस्तुतः उन्हें कुछ भी भय नहीं है, इसका सबसे बड़ा सबूत तो यह है कि हिंदुस्तानी अगर सदाके लिए दक्षिण अफ्रीकामें मजदूर बनकर ही रहते तो उनके बसनेके विरुद्ध कोई आन्दोलन उठा ही नहीं होता।

अतः जो चीज बाकी रह जाती है वह है केवल व्यापार और वर्ण। हजारों युरोपियनोंने लिखा और कबूल किया है कि हिंदुस्तानियोंका व्यापार छोटे अंग्रेज व्यापारियोंके लिए हानिकारक है और गेहुएँ रगसे नफरत तो फिलहाल गोरे चमड़ेवाली जातियोंकी हड्डी-हड्डीमें व्याप्त हो गई है। उत्तरी अमरीकामें कानूनमें सबका बराबर हक है, पर वहाँ भी बुकरटी वाशिंगटन जैसा पुरुष, जिसने ऊँची-से-ऊँची पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त की थी, जो अतिशय चरित्रवान और ईसाई धर्मको माननेवाला था और जिसने पश्चिमकी सभ्यताको पूरे तौरपर अपना लिया था, राष्ट्रपति रूजवेल्टके दरबारमें न जा सका और न आज तक जा सकता है। वहाँके हबशियोंने पश्चिमी सभ्यताको स्वीकार कर लिया है। वे ईसाई भी बन गये हैं; पर उनका काला चमड़ा उनका अपराध है और उत्तरी अमरीकामें अगर लोक व्यवहारमें उनका तिरस्कार किया जाता है तो दक्षिण अमरीकामें अपराधके सदेह-

मात्रसे गोरे उन्हें जिंदा जला देते हैं। दक्षिण अमरीकामें इस दंडनीतिका एक खास नाम भी है जो आज अंग्रेजी भाषाका प्रचलित शब्द हो गया है। वह है 'लिच-ला।' लिच-ला के मानी उस दंडनीतिके है जिसके अनुसार पहले सजा दी जाती है, पीछे अपराधका विचार किया जाता है। यह प्रथा लिच नामके व्यक्तिसे चली है। अतः उसीके नाम पर इसका नामकरण हुआ है।

इस विवेचनसे पाठक देख सकते हैं कि ऊपर दी हुई तात्त्विक मानी जानेवाली दलीलमे अधिक तत्त्व या सार नहीं है। पर वे यह अर्थ भी न करें कि यह दलील देनेवाले सभी लोग उसे झूठी जानते हुए भी पेश करते हैं। उनमेंसे बहुतेरे सचाईके साथ मानते हैं कि उनकी दलील तात्त्विक है। हो सकता है कि हम वैसी स्थितिमें हों तो हम भी वैसी ही दलील पेश करें। कृष्ण ऐसे ही कारणोंसे 'बुद्धि. कर्मानुसारिणी' कहावत निकली होगी। इसका अनुभव किसको नहीं हुआ होगा कि हमारी अन्तर्वृत्ति जैसी बनी हो वैसी ही दलीले हमें सूझा करती हैं और वे दूसरेके गले न उतरे तो हमें असन्तोष, अधीरता और अन्तमें रोष भी होता है।

इतनी बारीकीमें मैं जानबूझकर गया हूँ। मैं चाहता हूँ कि पाठक भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको समझें और जो अवतक वैसा न करते आये हों वे भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको समझने और उनका आदर करनेकी आदत डालें। सत्याग्रहका रहस्य समझने और खासकर इस अस्त्रको आजमानेके लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहनशक्तिकी अति आवश्यकता है। इसके बिना सत्याग्रह ही नहीं सकता। यह पुस्तक कृष्ण लिखनेके शौकसे तो लिखी नहीं जा रही है। दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासका एक प्रकरण जनताके आगे रखना भी उसका उद्देश्य नहीं। मेरा हेतु तो यह है कि जिस वस्तुके लिए मैं जीता



हू, जीना चाहता हू और यह मानता हू कि जिसके लिए मरनेको भी उतना ही तैयार हूँ, वह वस्तु कैसे पैदा हुई, उसका पहला सामुदायिक प्रयोग किस तरह किया गया, इसको सारी जनता जाने, समझे और जहांतक पसन्द करे और उसकी शक्ति हो वहांतक उसे अमलमे भी लाये ।

अब हम अपनी कहानीको फिर चलाये । हम यह देख चुके कि ब्रिटिश शासनाधिकारियोंने यह निर्णय किया कि ट्रांसवालमे नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोके और पुराने बाशिन्दोकी स्थिति ऐसी कठिन कर दे कि वे ऊबकर ट्रांसवाल छोड़ दे और न छोड़े तो लगभग मजदूर बनकर ही रह सके । दक्षिण अफ्रीकाके महान माने जानेवाले कितने ही राजपुरुष एकाधिक बार कह चुके हैं कि इस देशमें हिंदुस्तानी लकड़हारे और पानी भरने वालेके रूपमे ही खप सकते हैं । ऊपर जिस एशियाटिक विभागकी चर्चा की गई है उसके अधिकारियोंमें मि० लायनल कर्टिस भी थे जो हिंदुस्तानमे रह चुके थे और दो अमली शासन पद्धति (डायर्की) की खोज और प्रचार करनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध हैं । वह एक कुलीन घरानेके नौजवान हैं । कम-से-कम उस वक्त, १९०५-६ में तो नौजवान ही थे । लार्ड मिलनरके विश्वासपात्र थे । हर कामको शास्त्रीय पद्धतिसे ही करनेका दावा करते थे, पर उनसे भारी भूलें भी हो सकती थी । जोशुन्सबर्गकी म्युनिसिपैलिटीको अपनी एक ऐसी ही गलतीसे १४ हजार पौडके घाटेमे डाल दिया था । उन्होंने इस बातकी खोज की कि नये हिंदुस्तानियोंका आना रोकना हो तो इस बारेमें सरकारका पहला कदम यह होना चाहिए कि हरएक पुराने हिंदुस्तानीका नाम-पता इस तौरपर दर्ज कर लिया जाय कि उसके बदले दूसरा इस देशमें दाखिल न हो सके और हो तो तुरंत पकड़ लिया जाय । ट्रांस-

वालमे अंग्रेजी राज्य कायम होनेके बाद हिंदुस्तानियोंके लिए जो परवाने निकाले गए थे उनमें उनके हस्ताक्षर और जो हस्ताक्षर न कर सके तो उनके अंगुठे की निशानी ली जाती थी। पीछे किसी अधिकारीने सुझाया कि उनका फोटो भी ले लिया जाय। जों फोटो, अंगुठेकी निशानी और दस्तखत तीनों लिए जाने लगे। इसके लिए किसी कानून-कायदेकी जरूरत तो थी नहीं, अतः नेताओंको तुरंत इसकी खबर भी नहीं हो सकी। धीरे-धीरे उन्हे इन नवीनताओंकी खबर हुई। जनताकी ओरमें अधिकारियोंके पास आवेदनपत्र भेजे गए, शिष्ट-मण्डल भी भेजे गए। अधिकारियोंकी दलील यह थी कि चाहे जो आदमी चाहे जिस रीतिसे इस देशमें दाखिल हो जाय, यह हमसे सहन नहीं हो सकता। अतः सभी हिंदुस्तानियोंके पास एक ही तरहका परवाना होना चाहिए और उसमें इतना ब्योरा होना चाहिए कि परवाना पानेवाला असल आदमी ही उसके जरिए इस देशमें दाखिल हो सके, दूसरा कोई नहीं। मैंने यह सलाह दी कि गोकि कोई कानून तो ऐसा नहीं है जिसकी रूसे हम ऐसे परवाने रखनेको बंधे हो, फिर भी जबतक शांति-रक्षा कानून मौजूद है तबतक ये लोग हमसे परवाना तो मांग ही सकते हैं। जैसे हिंदुस्तानमें भारतरक्षा कानून (डिफेंस आव इंडिया ऐक्ट) था वैसे ही दक्षिण अफ्रीकामें शांति-रक्षा कानून (पीस प्रिजर्वेशन ऑर्डिनेंस) था और जैसे हिंदुस्तानमें भारत-रक्षा कानून महज जनताको तग करनेके लिए ही लबी मुद्दततक कायम रखा गया वैसे ही यह शांति-रक्षा कानून भी महज हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए रख छोड़ा गया था। गोरोक ऊपर एक तरहसे उसका अमल बिलकुल ही नहीं होता था। अब अगर परवाना लेना ही हो तो उसमें पहचानकी कोई निशानी तो होनी ही चाहिए। इसलिए जो लोग अपना नाम न लिख सकते हों उनका अंगुठे-

की निशानी लगाना ठीक ही था। पुलिसवालोंने यह बात बूढ़ निकाली है कि दो आदमियोंकी अंगुलियोंकी रेखाएँ एकसी होती ही नहीं। उनके रूप और सख्याका उन्होंने वर्गीकरण किया है और इस शास्त्रके जानकार दो अंगूठोंकी छापकी तुलना करके एक-दो मिनटमें ही कह सकते हैं कि वे अलग-अलग आदमियोंके अंगूठेकी हैं या एक ही आदमीके अंगूठेकी। फोटो देना मुझे तो तनिक भी पसंद नहीं था और मुसलमानोंकी दृष्टिसे तो इसमें धार्मिक आपत्ति भी थी।

अन्तमें अधिकारियोंके साथ हमारी बातचीतके फलस्वरूप यह तै पाया कि हरएक हिंदुस्तानी अपना पुराना परवाना देकर उसके बदलेमें नये नमूनेके परवाने बनवाले और नये आनेवाले हिंदुस्तानी नये नमूनेके परवाने ही ले। यह करना हिंदुस्तानियोंका कानूनन फर्ज नहीं था, पर इस आशासे लगभग सभी भारतीयोंने अपनी खुशीसे फिरसे परवाने लेना मंजूर कर लिया कि कहीं उनपर नई रक़ावटें न लगादी जायं, दूसरे वे दुनियाको यह दिखा देना चाहते थे कि भारतीय जनता घोषा देकर किसीको इस देशमें नहीं घुसाना चाहती और शांतिरक्षा कानूनका उपयोग नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको हैरान करनेके लिए न किया जायगा। यह कोई ऐसी-वैसी बात न थी। जो काम करना हिंदुस्तानियोंको कानूनसे तनिक भी फर्ज नहीं था उसे उन्होंने पूरे एका और बड़ी ही शीघ्रतासे कर दिखाया। यह उनकी सचाई, व्यवहार-कुशलता, भलमनसी, समझदारी और नम्रताका चिह्न था। इस कामसे भारतीय जनताने यह भी साबित कर दिया कि ट्रांसवालके किसी भी कानूनका किसी भी रीतिसे उल्लंघन करना वह चाहती ही नहीं। हिंदुस्तानी समझते थे कि जिस सरकारके साथ जो जनसमाज इतनी भलमनसीका बरताव करेगा वह उसे अपना-येगी, अपना विशेष प्रेमपात्र समझेगी। ट्रांसवालकी ब्रिटिश सर-

कारने इस भारी भलमनसीका बदला किस प्रकार दिया, इसे हम अगले प्रकरणमें देखेंगे।

: ११ :

## भलमनसीका बदला—खूनी कानून

परवानोंका रद्दोबदल होनेतक हम १९०६ में प्रवेश कर चुके थे। १९०३ में मैं ट्रांसवालमें फिर दाखिल हुआ था। उस सालके लगभग मध्यमें मैंने जोहान्सबर्गमें दफ्तर खोला। यानी दो बरस ऐशियाटिक महकमेके हमलोंका सामना करनेमें ही गये। हम सबने मान लिया था कि परवानों का ऋगडा तै होते ही सरकारको पुरा संतोष हो जायगा और भारतीय जनताको कुछ क्षाति मिलेगी। पर उसके भाग्यमें क्षाति थी ही नहीं। मि० लायजल कर्टिसका परिचय पिछले प्रकरणमें दे चुका हू। उन्होने सोचा कि हिंदुस्तानियोंके नये परवाने ले लेनेसे ही गोरोंका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। उनकी दृष्टिसे बड़े कामोंका आपसके समझौतेसे होना ही काफी नहीं था। ऐसे कामोंके पीछे कानूनका बल होना चाहिए। तभी उनकी शोभा है और उनके मूलभूत सिद्धांतोंकी रक्षा हो सकती है। मि० कर्टिसका विचार था कि हिंदुस्तानियोंको जकड़नेके लिए कोई ऐसा काम किया जाय जिसका असर सारे दक्षिण अफ्रीकापर पड़े और अंतमें दूसरे उपनिवेश भी उसका अनुकरण करें। उनकी रायमें जबतक दक्षिण अफ्रीकाका एक भी दरवाजा हिंदुस्तानियोंके लिए खुला रहेगा तबतक ट्रांसवाल सुरक्षित नहीं माना जा सकता। फिर उनकी दृष्टिसे सरकार और भारतीय जनताके बीच समझौता होनेसे तो भारतीय जनताकी प्रतिष्ठा और बढ़ जाती थी। उनका

इरादा इस प्रतिष्ठाको बढ़ानेका नहीं, बल्कि घटानेका था। उनको हिंदुस्तानियोंकी रजामदीकी जरूरत नहीं थी। वह तो चाहते थे उनपर बाहरी प्रतिबंध लगाकर उन्हें थर्रा देना। अतः उन्होंने एशियाटिक ऐक्टका मसविदा बनाया और सरकारको सलाह दी कि जबतक इस मसविदेके अनुसार कानून बनकर तैयार नहीं हो जाता तबतक हिंदुस्तानियोंका लुक-लिपकर ट्रांसवालमें दाखिल होना रोक्ना नहीं जा सकता और जो इस तरह यहा पहुंच जाय उन्हें निकाल बाहर करनेकी प्रचलित कानूनमें कोई व्यवस्था नहीं है। मि० कटिसकी दलीले और मसविदा सरकारको पसंद आया और उसने इस मसविदेके अनुरूप बिल ट्रांसवालकी धारा समामें पेश करनेके लिए ट्रांसवालके सरकारी गजटमें प्रकाशित कर दिया।

इस बिलकी तफसीलमें जानेके पहले एक महत्त्वकी घटनाकी चर्चा थोड़े शब्दोंमें कर देना आवश्यक है। सत्याग्रहकी प्रेरणा करनेवाला मैं ही हूँ। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि पाठक मेरी स्थितियोंकी पूरी तरह समझले। यों जब ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंपर प्रतिबंध लगानेके प्रयत्न हो रहे थे, नेटालमें वहाँके हबशियों—जुलू लोगोंने बगावत कर दी। इस झगड़ेको बगावत कह सकते हैं या नहीं, इस बारेमें मुझे शक था और आज भी है। फिर भी नेटालमें इस घटनाका परिचय सदा इसी नामसे दिया गया है। इस मौकेपर भी नेटालमें रहनेवाले बहुतसे ग़ोरे इस विप्लवको शांत करनेमें सहायता देनेके लिए स्वयंसेवकके रूपमें सेनामें भरती हुए। मैं भी नेटालका ही निवासी माना जाता था। इसलिए मैंने सोचा कि मुझे भी उसमें काम करने चाहिए। भारतीय जनताकी अनुमति प्राप्तकर मैंने सरकारको लिखा कि घायलोंकी सेवा करनेवाली एक छोटी-सी टुकड़ी खड़ी करनेकी

इजाजत मुझे दे दी जाय । सरकारने प्रस्ताव स्वीकार किया । अतः मैंने ट्रांसवालका घर तोड़ दिया । वालवन्वोंको नेटालमें उस चेतपर भेज दिया जहाँसे 'इंडियन ओपीनियन' नामका साप्ताहिक अखबार निकाला जाता था और जहाँ मेरे सहकारी रहते थे । दफ्तर कायम रखा, क्योंकि मैं जानता था कि मुझे इसमें बहुत दिन नहीं लगेंगे ।

२०-२५ आदमियोंकी छोटीसी टुकड़ी खड़ी करके मैं फौजमें शामिल हो गया । इस छोटी-सी टुकड़ीमें भी लगभग सभी जातियोंके भारतीय थे । इस टुकड़ीको एक महीने सेवा करनी पड़ी । हमें जो काम सौंपा गया उसको मैंने सदा ईश्वरका अनुग्रह माना है । मैंने देखा कि जो हवशी जस्मी होते थे उन्हें हम ही उठायें तो वे उठें, नहीं तो वही पड़े सड़ा करें । इन जस्मियोंके जस्मोंकी भरहम-पट्टी करनेमें कोई भी गोरा हाथ न बटाता । जिस शस्त्रवेद्य डा० सैवेजकी मातहतमें हमें काम करना था वह स्वयं अतिशय दयालु थे । घायलोंको उठाकर अस्पताल पहुंचा देनेके बाद उनकी सेवा-शुश्रूषा हमारे कार्य-क्षेत्रके बाहरकी बात हो जाती थी । पर हम तो यह सोच कर गए थे कि जो भी सेवा हमें सौंपी जाय वह हमारी कर्तव्य-परिधिके अन्दर ही होगी । अतः इस भले डाक्टरने हमसे कहा कि मुझे कोई भी गोरा हबशियोंकी सेवा करनेके लिए नहीं मिलता और मुझमें यह शक्ति नहीं कि किसीको इसके लिए मजबूर कर सकूँ । आप यह दयाका काम करें तो आपका अहसान मानूंगा । हमने इस कामका स्वागत किया । कितने ही हबशियोंके जस्म पांच-पांच, छः-छः दिनसे साफ़तक नहीं किये गये थे, इससे उनसे दुर्गंध आ रही थी । इन सबको साफ़ करना हमारे सिर पड़ा और हमें यह सेवा बहुत रुची । हवशी हमारे साथ बात तो कर ही नहीं सकते थे; पर उनकी चेष्टाओं और उनकी आंखोंमें हम यह देख सकते थे कि उनका

मन कह रहा है कि मानों भगवानने ही हमें उनकी सहायताके लिए भेज दिया हो। इस काममें अकसर हमें चालीस-चालीस मीलकी मजिल करनी होती।

एक महीनेमें हमारा काम समाप्त हो गया। अधिकारियोंको सतोप हुआ। गवर्नरने कृतज्ञता-प्रकाशका पत्र लिखा। हमारी टुकड़ीमें तीन गुजराती थे, जिन्हें साजेंटका अधिकार दिया गया था। उनके नाम जानकर गुजरातियोंको प्रसन्नता होगी। उनमें एक थे उमियागकर, दूसरे सुरेन्द्रराय मेढ और तीसरे हरिशंकर जोगी। तीनों कस हुए वदनके थे और तीनोंने बड़ी कड़ी मेहनत की। दूसरे भारतीयोंके नाम मुझे इस वक्त याद नहीं आ रहे हैं। पर एक पठान भी उनमें था, यह मुझे अच्छी तरह याद है। यह भी याद है कि हम उसके बराबर बोझ उठा लेते थे और कूचमें भी उसके साथ-साथ रहते थे, यह देखकर उसे अचरज होता था।

इस टुकड़ीके कामके सिलसिलेमें मेरे दो विचार, जो अरसेसे मनमें धीरे-धीरे पक रहे थे, पूरी तरह पक गये। उनमें एक तो यह है कि सेवाधर्मका प्रधानपद देनेवालेको ब्रह्मचर्यका पालन करना ही चाहिए, दूसरा यह कि सेवाधर्म स्वीकार करनेवालेको गरीबीको सदाके लिए अपना लेना चाहिए। वह किसी ऐसे धर्ममें न लगे जिससे सेवाधर्मके पालनमें उसे कभी सकोच होनेका अवसर आये, या उसमें तनिक भी रुकावट हो सके।

मैं इस टुकड़ीमें काम कर रहा था तभी जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी ट्रांसवाल लौट आनेकी चिट्ठियाँ और तार आ रहे थे। अतः फिनिक्समें सब लोगोंसे मिलकर मैं तुरंत जोहान्सवर्ग पहुंचा और वहाँ वह बिल पढा जिसके बारेमें ऊपर लिख चुका हूँ। बिलवाला गजट २२ अगस्त १९०६ ई० का मैं दफ्तरसे घर ले गया था। घरके पास एक

छोटीसी पहाड़ी थी। वहाँ अपने साथीको लेकर इस विलका उलथा 'इंडियन ओपीनियन' के लिए करने लगा। ज्यों-ज्यों मैं उसकी धाराओंको पढ़ता गया त्यों-त्यों मेरा कलेजा अधिकाधिक कांपने लगा। उसमें मैं भारतीयोंके द्वेषके सिवा और कुछ भी नहीं देख सका। मुझे दिखाई दिया कि अगर यह विल पास हो गया और भारतीयोंने उसे मजूर कर लिया तो दक्षिण अफ्रीकासे उनके पैर जड़मूलसे उखड़ जायंगे। मुझे स्पष्ट दिखाई दिया कि भारतीय जनताके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। मुझे यह भी दिखाई दिया कि अर्जी अब देने-से सफलता नहीं मिली तो वह चुप नहीं बैठ सकती। इस कानून-के सामने सिर झुकानेसे मर मिटना बेहतर है। पर मरें कैसे ? भारतीय जनता किस खतरेमें कूदे या कूदनेका साहस करे कि उसके सामने विजय या मृत्यु इन दोके सिवा तीसरा रास्ता रह ही न जाय ? मेरे सामने तो ऐसी संगीन दीवार खड़ी हो गई कि मुझे रास्ता सूझा ही नहीं। जिस प्रस्तावित बिलमें मेरे अतरमें इतनी हलचल मचा दी थी उसका ब्यौरा पाठकों-को जान लेना ही चाहिए। उसका सार यह है :

"द्रासवालमें रहनेका हक रखनेवाला हरएक भारतीय पुरुष, स्त्री और आठ बरस या इससे ऊपरका लड़का-लड़की एशियाई दफ्तरमें अपना नाम दर्ज कराके परवाना हासिल करे। यह परवाना लेते समय पुराना परवाना अधिकारी (रजिस्ट्रार) को सौंप दे। नाम दर्ज करनेकी अर्जीमें नाम, ठिकाना, जाति, उम्र आदि लिख दें। रजिस्ट्रार प्रार्थीके शरीरपर जो खास निशान हों उन्हें नोट कर ले और उसकी दसो उगलियों और अंगुठेका निशान ले ले। जो भारतीय स्त्री-पुरुष नियत अवधिके अंदर ऐसी दख्खाने न दे, उसका द्रासवालमें रहनेका हक रद्द हो जायगा। दख्खाने न देना कानूननू अपराध माना जायगा। उसके लिए जेलकी सजा



मिल सकती है, जुर्माना किया जा सकता है और अदालत उचित समझे तो देशनिकालेका दंड भी दे सकती है। बच्चोंकी ओरसे मां-बापको दख्वास्त देनी होगी और उंगलियोंके निशान आदि लेनेके लिए उन्हें रजिस्ट्रारके सामने हाजिर करनेकी जिम्मेदारी भी मां-बापपर होगी। मां-बापने इस कर्त्तव्यका पालन नहीं किया हो तो १६ वरसका होनेपर बालकको खुद यह फर्ज अदा करना चाहिए। उसके अदा न किये जानेपर मां-बाप जिस-जिस दंडके पात्र होते हैं उस दंडके अधिकारी १६ की उम्रको पहुंचते हुए लड़की-लड़के भी माने जायगे। प्रार्थीको जो परवाना या रजिस्ट्रीका सर्टिफिकेट दिया जाय उसे हर पुलिस अफसरके सामने, जब और जहां वह मांगा जाय, पेश करना लाजिमी होगा। उसे पेश न करना अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकती है। राह चलते व्यक्तिसे भी परवाना पेश करनेको कहा जा सकता है। परवानेकी जांचके लिए पुलिस अफसर घरमें भी घुस सकते हैं। ट्रांसवालके बाहरसे आनेवाले भारतीय स्त्री-पुरुषको जांच करनेवाले अफसरके सामने अपना परवाना पेश करना ही होगा। कोई कामसे अदालतमें जाय या मालके दफ्तरमें व्यापार या बाइसिकिल रखनेको अनुमतिपत्र लेने जाय तो वहां भी अफसर उससे परवाना मांग सकता है। अर्थात् कोई भारतीय किसी भी सरकारी दफ्तरमें उस दफ्तरसे संबद्ध कार्यके लिये जाय तो अफसर उसकी प्रार्थना स्वीकार करनेसे पहले उससे उसका परवाना मांग सकता है। उसे पेश करने या उसे रखनेवाले व्यक्तिसे अधिकारी इस वारेमें जो कुछ पूछे उसे बतानेसे इन्कार करना भी अपराध माना जायगा और अदालत उसके लिए भी जेल या जुर्मानेकी सजा दे सकती है।”

दुनियाके किसी भी हिस्सेमें स्वतंत्र मनुष्योंके लिए इस

तरहका कानून है, इसका पता मुझे नहीं है। मैं जानता हूँ कि नैटालके गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंके लिए परवानेका कानून बहुत सख्त है पर वे बचारे तो स्वतंत्र लोग माने ही नहीं जा सकते। फिर भी कह सकते हैं कि उनके परवानेका कानून इस कानूनकी तुलनामें नरम है, और उस कानूनके तोड़नेकी सजा तो इस कानूनमें निर्दिष्ट दण्डके सामने कुछ भी नहीं है। लाखोंका कारवार करनेवाला रोजगारी इस कानूनके अनुसार देश निकालेकी सजा पा सकता है, ग्रामी इस कानूनका भंग होनेसे उसके बिलकुल तबाह हो जानेकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। धर्मवान् पाठक आगे चलकर देख सकेंगे कि इस अपराधकेलिए लोगोंको देशनिकालेकी सजा भी मिल चुकी है। जरायम पेशा जातियोंके लिए हिंदुस्तानमें कितना कड़ा कानून है। इस कानूनमें जो दसों उंगलियोंकी निशानी लेनेकी दफा थी वह तो दक्षिण अफ्रीकामें बिलकुल नई बात थी। इस विषयका कुछ साहित्य पढ़ जाना चाहिए, यह सोचकर मैं मि० हेनरी नामक पुलिस अफसर की लिखी हुई 'उंगलियोंकी निशानी' (फिंगर इंप्रेशन्स) पुस्तक पढ़ गया। उसमें मैंने देखा कि इस प्रकार कानून उंगलियोंका निशान केवल अपराधियोंसे ही लिया जा सकता है। अतः जबदस्ती दसों उंगलियोंकी छाप लेनेकी बात मुझे अति भयानक लगी। स्त्रियोंको और वैसे ही १६ वरसके अदरके लड़के-लड़कियोंको भी परवाना लेना होगा, यह बात इस बिलमें पहलेपहल रखी गई थी।

अगले दिन कुछ गण्यमान्य हिंदुस्तानियोंको इकट्ठा कर मैंने इस कानूनका अक्षर-अक्षर समझाया। फलतः उसका जो असर मुझपर हुआ था वही उनपर भी हुआ। उनमेंसे एक तो आवेशमें आकर बोल उठे—“कोई मेरी स्त्रीसे परवाना मांगने आया तो मैं उसको वही गोली मार दूंगा, पीछे मेरा जो होना हो वह होता रहे।” मैंने उन्हें शांत किया और सबको

सुनाकर कहा—“यह मामला बहुत ही गभीर है। यह विल अगर पास हो गया और हमने उसे मान लिया तो उसका अनुकरण सारे दक्षिण अफ्रीकासे किया जायगा। मुझे तो उसका उद्देश्य ही इस देशमें हमारी हस्ती मिटा देना मालूम होता है। यह कानून आखिरी सीढ़ी नहीं है, बल्कि हमें सताकर दक्षिण अफ्रीकासे भगा देनेका पहला कदम है। अतः हमपर केवल ट्रांसवालमें बसनेवाले १०-१५ हजार हिंदुस्तानियोंकी ही जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय मात्रकी है। फिर अगर हम इस विलका अर्थ पूरे तौरपर समझ सकते हों तो सपुर्ण भारतवर्षकी प्रतिष्ठाकी जिम्मेदारी भी हमपर ही आती है; क्योंकि इस विलसे केवल हमारा ही अपमान नहीं होता, बल्कि इसमें सारे हिंदुस्तानका अपमान है। अपमानका अर्थ ही है निर्दोष व्यक्तिका मान भंग होना। हम इस कानूनके पात्र हैं यह तो कोई कह ही नहीं सकता। हम निर्दोष हैं और राष्ट्रके एक भी निर्दोष व्यक्तिका अपमान सारे राष्ट्रका अपमान है। अतः इस कठिन अवसरपर हमने जल्दवाजीकी, अधीरता दिखाई, क्रोध किया तो उससे इस हमलेसे नहीं बच सकेंगे। पर अगर शांतिसे उपाय ढूँढकर बक्तपर उसका अवलम्बन करे, आपसमें एकता रखें और अपमानका सामना करते हुए जो कष्ट पड़ें उन्हें भेले ले तो मैं मानता हूँ कि ईश्वर स्वयं ही हमारी सहायता करेगा।” विलकी गभीरता सबने समझ ली और यह निश्चय किया कि सार्वजनिक सभा करके कुछ प्रस्ताव पास किये जायें। यहूदियोंकी एक नाटकशाला भाड़ेपर लेकर उसमें सभा की गई।

अब पाठक समझ सकते हैं कि इस प्रकरणके शीर्षकमें इस विलका परिचय ‘खूनी कानून’ कहकर क्यों दिया गया है। यह विशेषण मैंने इस प्रकरणके लिए नहीं गड़ा है,

वल्कि इस विशेषणका उपयोग दक्षिण अफ्रीकामे ही इस कानूनका परिचय देनेके लिए प्रचलित हो गया था।

: १२ :

## सत्याग्रहका जन्म

१९०६ की ११ वीं सितंबरको उक्त नाटकशालामे सभा हुई। ट्रांसवालके भिन्न-भिन्न नगरोसे प्रतिनिधि बुलाये गये। पर मुझे कबूल करना होगा कि जो प्रस्ताव मैंने बनाये थे उनका पूरा अर्थ मैं खुद नहीं समझ सका। उनसे क्या नतीजे निकलेंगे, इसका भी अबाजा उस वक्त नहीं कर सका था। सभा हुई। नाटकशाला ठसाठस भर गई थी। कुछ नया करना है, कुछ नया होना है—यह भाव मैं हरएकके चेहरेपर देख सकता था। ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके अध्यक्ष श्री अब्दुलगनी सभापतिके आसन पर विराज रहे थे। वह ट्रांसवालके बहुत ही पुरानेवाले वाशिदोमेसे थे। मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन नामक प्रसिद्ध फ़र्मके हिस्सेदार और उसकी जोहान्सवर्गकी शाखाके व्यवस्थापक थे। जो प्रस्ताव सभामे उपस्थित किये गये उनमे सच पूछिए तो एक ही महत्त्वका प्रस्ताव था। उसका आशय यह था कि इस बिलके विरोधमे सब उपाय करते हुए भी अगर वह पास हो जाय तो भारतीय उसके आगे सिर न झुकाएं और सिर न झुकानेसे जो-जो कष्ट सहने पड़े उन्हें सह लें।

यह प्रस्ताव मैंने सभाको पूरी तरह समझा दिया। सभाने भी शांतिसे उसे सुन लिया। सभाका सारा कामकाज तो हिंदी या गुजरातीमे ही होता था, इसलिए यह तो ही नहीं सकता था कि कोई भी उसकी कोई बात न समझ पाये।

हिंदी न समझनेवाले तामिल और तेलगू भाइयोंके लिए उन भाषाओंके बोलनेवाले सारी बातोंको पूरे तौरपर समझा देते थे । प्रस्ताव नियम-पूर्वक उपस्थित किया गया । बहुतांशने अनुमोदन-समर्थन भी किया । उनमें एक बोलनेवाले सेठ हाजी हवीव थे । ये भी दक्षिण अफ्रीकाके बहुत पुराने और अनुभवी वाशिदे थे । उन्होंने बड़ा ही जोशीला भाषण दिया । आवेशमें आकर यहाँतक कह गये—“यह प्रस्ताव हमें खुदाको साक्षी करके स्वीकार करना है । हमें चाहिए कि नामर्द बनकर इस कानूनके सामने कभी सिर न झुकाए । इसलिए मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि हरगिज इस कानूनके ताबे न होऊंगा । और मैं इस सारे जल्लोको सलाह देता हूँ कि सब लोग खुदाको साक्षी करके कसम खायें ।”

प्रस्तावके समर्थनमें और भी तीखे और जोरदार भाषण हुए थे । सेठ हाजी हवीव जब बोल रहे थे और कसमकी बातपर पहुँचे तो मैं तुरत चौका और सावधान हो गया । तभी मैं अपनी निजकी और कौमकी जिम्मेदारीको पूरे तौरपर समझ सका । कौमने अबतक कितने ही प्रस्ताव पास किये थे । अधिक विचार या नये अनुभवसे उनमें फेरफार भी किये गये । यह भी हुआ कि सवने उन निश्चयोपर अमल नहीं किया । स्वीकृत प्रस्तावमें रद्दबदल, उससे सहमत हुए लोगोंका इन्कार आदि सारी दुनियामें सार्वजनिक जीवनके सामान्य अनुभव हैं । पर ऐसे प्रस्तावोंमें कोई ईश्वरका नाम बीचमें नहीं लाता । तात्त्विक दृष्टिसे विचार किया जाय तो निश्चय और ईश्वरका नाम लेकरकी हुई प्रतिज्ञामें कोई अन्तर होनाही नहीं चाहिए । बुद्धिशाली मनुष्य सोच-समझकर कोई निश्चय करे तो उससे वह डिगिता नहीं । उसकी निगाहमें उसका बजन ईश्वरको साक्षी करके की हुई प्रतिज्ञाके बराबर ही होता है । पर

दुनिया तात्त्विक निर्णयोसे नहीं चलती। ईश्वरको साक्षी बनाकर की हुई प्रतिज्ञा और सामान्य निश्चयके बीच वह जमीन-आसमानका अंतर मानती है। सामान्य निश्चयको बदलनेमें निश्चय करने वाला शर्माता नहीं, पर प्रतिज्ञा करनेवाला अगर अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ता है तो वह खुद तो शर्माता ही है, समाजभी उसको धिक्कारता है और पापी समझता है। इन बातोंकी जड़ इतनी गहरी हो गई है कि कानून भी कसम खाकर कहीं हुई बात झूठी ठहरे तो कसम खाने-वालेको अपराधी मानता है और सख्त सजा मिलती है।

इन विचारोंसे भरा हुआ मैं जो प्रतिज्ञाओंका अनुभवों था और उनके मीठे फल चख चुका था, ऊपर लिखी प्रतिज्ञाकी बात सुनकर भयसे स्तब्ध हो गया। उसके परिणाम एक क्षणमें मेरे मानसचक्रके सामने आ गये। इस घबराहटसे जोश पैदा हुआ और यद्यपि मैं इस सभामें प्रतिज्ञा करने या लोगोंसे करानेका इरादा लेकर नहीं गया था फिर भी सेठ हाजी हवीवका सुभाव मुझे बहुत पसंद आया। पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी सोचा कि इस प्रतिज्ञाके सारे नतीजोंसे लोगोंको बाकिफ करा देना चाहिए, प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहिए। इसके बाद अगर वे प्रतिज्ञा कर सकें तो उसका स्वागत करना चाहिए और न कर सकें तो मुझे समझ लेना होगा कि अभी वे आखिरी कसौटीपर चढ़नेको तैयार नहीं हुए हैं। अतः मैंने सभापतिसे प्रार्थना की कि मुझे सेठ हाजी हवीवके कथनका अर्थ समझानेकी इजाजत दें। मुझे इसकी इजाजत मिल गई। मैं उठा और जो कुछ कहा उसका खुलासा जैसा आज मुझे याद है वैसा नीचे दे रहा हूँ :

“मैं सभाको यह बात समझा देना चाहता हूँ कि वाजतक जो प्रस्ताव हमने स्वीकार किये हैं और जिस रीतिसे स्वीकार किये हैं उन प्रस्तावों और उस रीतिसे इस प्रस्ताव और इसकी

रीतिमें भारी अतर है। यह प्रस्ताव अति गभीर है, क्योंकि इसपर पूरा-पूरा अमल होनेपर दक्षिण अफ्रीकामें हमारी हस्तीका रहना-मिटना अवलंबित है। यह प्रस्ताव स्वीकार करनेकी जो रीति हमारे भाईने सुझायी है वह जितनी गभीर है उतनी ही नवीन है। मैं खुद इस रीतिसे निश्चय करानेका विचार करके यहां नहीं आया था। इस यशके अधिकारी अकेले सेठ हाजी हवीव है और इसकी जवाबदेही भी उन्हींपर है। उन्हें मैं मुबारकवाद देता हूँ। इनका सुझाव मुझे बहुत रुचा है, पर आप उसे स्वीकार कर लेंगे तो आप भी उनकी जिम्मेदारीमें साक्षी हो जाएंगे। यह जिम्मेदारी क्या है, यह आपको समझ लेना चाहिए और कौमके सलाहकार और सेवकके रूपमें उसे पूरे तौरपर समझा देना मेरा फर्ज है।

“हम सभी एक ही सिरजनहारको माननेवाले हैं। उसको मुसलमान भले ही खुदा कहकर पुकारें, हिंदू भले ही उसको ईश्वरके नामसे भजे, पर है वह एक ही स्वरूप। उसको साक्षी करके, उसको बीचमें रखकर हम कोई प्रतिज्ञा करें या कसम खाए, यह कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। ऐसी कसम खाकर अगर हम उससे फिर जायें तो हम कौमके, दुनियाके और खुदाके सामने गुनहगार होंगे। मैं तो मानता हूँ कि सावधानीसे, शुद्धबुद्धिसे मनुष्य कोई प्रतिज्ञा करे और पीछे उसको तोड़ दे तो वह अपनी इसानियत, अपनी मनुष्यताको खो बैठता है। और जैसे पारा चढ़ा हुआ तांबेका सिक्का रुपया नहीं है—यह मालूम होते ही उसकी कोई कीमत नहीं रहती, इतना ही नहीं, बल्कि उस छोटे सिक्केका मालिक दण्डका पात्र हो जाता है—वैसे ही झूठी कसम खानेवालेकी भी कोई कीमत नहीं होती, बल्कि लोक-परलोक दोनोंमें वह दण्डका अधिकारी होता है। सेठ हाजी हवीव ऐसी ही गभीर कसम खानेकी हमें सलाह दे रहे हैं। इस सभामें

## सत्याग्रहका जन्म

ऐसा एक भी आदमी नहीं है जो बालक या नासमझ माना जा सके। आप सभी पुरख्ता उम्रवाले हैं, दुनिया देखते हुए हैं, बहुतेरे तो प्रतिनिधि हैं और कमोबेश जिम्मेदारी भी उठा चुके हैं। अतः इस समारं एक भी आदमी नहीं है जो 'मैंने बिना समझे प्रतिज्ञा कर दी थी' कहकर कभी उस बंधनसे निकल सके।

"मैं जानता हूँ कि प्रतिज्ञाएँ, व्रत आदि गंभीर अवसरोंपर ही लिए जाते हैं। उठते-बैठते प्रतिज्ञा करनेवाला जरूर ठोकर खायगा और गिरेगा। पर इस देशमें, अपने सामाजिक जीवनमें मैं प्रतिज्ञा करने योग्य किसी अवसरकी कल्पना कर सकता हूँ तो वह अवसर अवश्य उपस्थित है। बहुत सम्हाल-कर और डर-डरके कदम उठाना बुद्धिमानी है। पर डर और सम्हालकी भी हद्द होती है। हम उस हद्दको पहुंच गये हैं। सरकार सम्यताकी मर्यादा लांघ गई है। हमारे चारों ओर जब उसने दावानल सुलगा दिया है तब भी हम बलिदानकी पुकार न करे और सोच-विचारमें पड़े रहे तो हम नालायक और नामदं साबित होंगे। अतः यह अवसर शपथ लेनेका है, इस विषयमें तनिक भी शंका नहीं। पर इस शपथकी शक्ति अपनेमें है या नहीं, यह हरएक को खुद सोच लेना होगा। ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे पास नहीं किये जाते। जितने लोग कसम खाएं उतने ही उस कसमसे बचेगे। ऐसी कसम दिखावेके लिए नहीं खाई जाती। उसका असर यहांकी सरकार, बड़ी (साम्राज्य) सरकार या भारत सरकारपर क्या होगा, इसका स्थाल कोई तनिक भी न करे। हरएक अपने हृदयपर हाथ रख उसको ही टटोले। अगर उसकी अन्त-रौत्मा कहे कि तुममें शपथ लेनेकी शक्ति है तभी शपथ ले, तभी वह फलवती होगी।

"अब दो शब्द परिणामके विषयमें। बड़ी-से-बड़ी आशा



पूर्वों तो यह कह सकते हैं कि अगर सब लोग अपनी कसमपर कायम रहें और भारतीय जनताका बड़ा भाग कसम खा सके तो यह कानून (आर्डिनेंस) या तो पास ही न होगा या पास होगा तो तुरत रद्द हो जायगा। कौमको अधिक कष्ट न सहना पड़ेगा। हो सकता है कि कुछ भी कष्ट न सहना पड़े। पर कसम खानेवालेका धर्म जैसे एक ओरसे श्रद्धापूर्वक आशा रखना है, वैसे ही दूसरी ओरसे नितांत आशा-रहित होकर कसम खानेको तैयार होना है। इसलिए मैं चाहता हू कि हमारी लडाईंमे जो कड़वे-से-कड़वे परिणाम हमारे सामने आ सकते हैं, उनकी तसवीर इस सभाके सामने खींचू। मान लीजिए कि यहाँ उपस्थित हम सब लोग शपथ ले लेते हैं। हमारी सख्या अधिक-से-अधिक ३ हजार होगी। यह भी हो सकता है कि वाकीके १० हजार भारतीय कसम न खाय। शुरूमे तो हमारी हंसी होनी ही है। फिर इतनी सारी चेतावनी दे देनेपर भी यह मुमकिन है कि कसम खाने वालोंमे कुछ या बहुत-से पहली ही परीक्षामे कमजोर साबित हो जाय। हमे जेल जाना पड़े, जेलमे अपमान सहने पड़े। भूख-प्यास, सरदी-गरमी भी सहनी पड़े। कड़ी मशक्कत करनी पड़े। उद्धत दरोगाओं (वांडरो) के कोड़े खाने पड़े। जुर्माना हो और कुर्कीमे हमारा माल-असवाब भी बिक जाय। लडनेवाले बहुत थोड़े रह गये तो आज हमारे पास बहुत पैसा होते हुए भी हम कल कगाल हो जा सकते हैं। हमे देशनिकालकी सजा भी मिल सकती है। जेलमे भूखे रहते और दूसरे कष्ट सहते हुए हममेसे कुछ बीमार हो सकते हैं और कोई मर भी सकता है। अर्थात्, थोड़ेमे कहा जा सकता है कि यह बात तनिक भी नामुमकिन नहीं कि जितने कष्टोंकी कल्पना हम कर सकते हैं वे सभी हमें सहने पड़े और समझदारी इसीमे है कि ये सारे कष्ट सहन करने होंगे यह मानकरही

हम कसम खायें। मुझसे कोई पूछे कि इस लड़ाईका अंत क्या होगा और कब होगा तो मैं कह सकता हूँ कि अगर सारी कौम परीक्षामें पूरी तरह उत्तीर्ण हो गईं तो लड़ाईका फैसला बहुत जल्दी हो जायगा। पर अगर हमसे बहुतसे संकटका सामना होनेपर फिसल गये तो लड़ाई लंबी होगी। पर इतना तो मैं हिम्मतके साथ और निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि जबतक मुट्ठीभर लोग भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहनेवाले होंगे तबतक इस युद्धका एक ही अंत सम्भिये—अर्थात् इसमें हमारी जीत ही होगी।

“अब दो शब्द अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारीके बारेमें भी कह दूँ। यद्यपि मैं प्रतिज्ञा करनेकी जोखिमोंको बता रहा हूँ, पर साथ ही आपको शपथ खानेकी प्रेरणा भी कर रहा हूँ। इसमें मेरी अपनी जिम्मेदारी कितनी है, इसे मैं पूरे तौरपर समझता हूँ। हो सकता है कि आवेशमें या गुस्सेमें आकर इस समय उपस्थित लोगोंका बड़ा भाग प्रतिज्ञा करले, पर संकट-कालमें कमजोर साबित हो, और मुट्ठीभर लोग ही अंतका ताप सहन करनेके लिए रह जायें। फिर भी मुझ जैसे आदमीकेलिए तो एक ही रास्ता होगा—‘भर मिटना, पर इस कानूनके आगे सिर न झुकाना।’ मैं तो मानता हूँ कि मान लीजिये ऐसा होनेकी तनिक भी संभावना नहीं, फिर भी फर्ज कर लीजिए कि सब गिर गये और मैं अकेला ही रह गया, तो भी मेरा विश्वास है कि प्रतिज्ञाका भंग मुझसे हो ही नहीं सकता। यह कहनेका मतलब आप समझ लें। यह घमंडकी बात नहीं, बल्कि खासतौरसे इस मंचपर बैठे हुए नेताओंको सावधान करनेकी बात है। अपनी मिसाल लेकर मैं नेताओंसे विनयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि अगर आपमें अकेला रह जानेपर भी दृढ़ रहनेका निश्चय या वसा करनेकी शक्ति न हो तो आप इतना ही न करे कि खुद प्रतिज्ञा न करे,

वल्कि लोगोके सामने यह प्रस्ताव रखकर उनसे प्रतिज्ञा कराई जाय, इसके पहले ही आप अपना विरोध लोगोपर प्रकट कर दे और अपनी सम्मति उसमें न दे । यह प्रतिज्ञा यद्यपि हम सब साथ मिलकर करना चाहते हैं तो भी कोई इसका यह अर्थ कदापि न करे कि एक या अनेक लोग अपनी प्रतिज्ञाको तोड़ दें तो दूसरे सहज ही उसके वधनसे मुक्त हो सकते हैं । हरएक अपनी-अपनी जिम्मेदारीको समझ कर स्वतंत्र रूपसे प्रतिज्ञा करे और यह समझकर करे कि दूसरे कुछ भी करें, पर मैं खुद तो मरते दम तक उसका पालन करूंगा ही ।”

इस आग्रहका भाषण करके मैं अपनी जगहपर बैठ गया । लोगोंने अतिशय शांतिसे उसका एक-एक शब्द सुना । दूसरे नेता भी बोले । सबने अपनी और श्रोताओंकी जिम्मेदारीका विवेचन किया । सभापति उठे । उन्होंने भी स्थितिको समझाया और अन्तमें सारी सभाने खड़े होकर हाथ उठाकर और ईश्वरकी साक्षी करके प्रतिज्ञा की कि यह कानून पास हो गया तो हम उसके आगे सिर न झुकाएंगे । वह दृश्य मर्म तो कभी भूलनेका नहीं । लोगोके उत्साहकी सीमा न थी । अगले ही दिन इस नाटकशालामें कोई घुघंटना हुई और सारी नाटकशाला जलकर खाक हो गई । तीसरे दिन लोग मेरे पास यह खबर लाये और कौमको यह कहकर मुबारकवाद देने लगे कि नाटकशालाका भस्म हो जाना शुभ शकून है । जैसे नाटकशाला जल गई वैसे ही यह कानून भी एक दिन आगकी नजर हो जायगा । इन लक्षणोका मुझपर कभी असर न हुआ था । अतः मैंने इस घटनाको कोई महत्त्व न दिया । यहाँ उसका उल्लेख केवल यह बतानेके लिए किया है कि लोगोंने इस समय कितना शौर्य और श्रद्धा थी । इन दोनों बातोके दूसरे बहुतसे चिह्न पाठक अगले प्रकरणोंमें देखेंगे ।

यह विराट सभा करनेके बाद काम करनेवाले बैठ नहीं रहे। जगह-जगह सभाएं की गईं और सर्वत्र सर्वसम्मतिसे प्रतिज्ञाएं दुहराई गईं। 'इंडियन ओपीनियन'में अब यह खनी कानून ही चर्चाका मुख्य विषय था। दूसरी ओर स्थानीय (प्रादेशिक) सरकारसे मिलनेके भी यत्न किये गये। उपनिवेश सचिव मि० डन्कनके पास एक शिष्ट-मंडल भेजा गया। प्रतिज्ञाकी बात उन्हें सुनाई गई। इस शिष्ट-मंडलमें सेठ हाजी हवीव भी थे। उन्होंने कहा—“कोई अफसर मेरी स्त्रीकी उंगलियोंका निशान लेने आया तो मैं अपने गुस्सेको जरा भी कावूमें न रख सकूंगा। मैं उसको वही मार डालूंगा और फिर अपने आपको खतम कर दूंगा!” मंत्री महोदय क्षण भर सेठ हाजी हवीवके मुहकी ओर ताकते रह गये। फिर कहा—“यह कानून औरतों पर लागू हो या नहीं, इस बारेमें सरकार विचार कर ही रही है। इतना इतमीनान ती मैं आप लोगोंको अभी दिला सकता हू कि स्त्रियोंसे सबध रखनेवाली धाराए वापस ले ली जाएगी। इस विषयमें आपकी भावनाको सरकार समझ सकती है और उसका लिहाज करना चाहती है। पर दूसरी दफाओके बारेमें तो मुझे खेदके साथ वता देना होगा कि सरकार दृढ़ है और रहेगी। जनरल बोथा चाहते हैं कि आप भली भांति सोच-विचारकर इस कानूनको मजूर कर लें। गोरोंकी हस्तीके लिए सरकार उसको जरूरी समझती है। कानूनके मूल उद्देश्यकी रक्षा करते हुए व्यौरेके बारेमें आपको कोई सुझाव पेश करना हो तो सरकार उसपर अवश्य ध्यान देगी। शिष्ट-मंडलको मेरी सलाह है कि अगर आप कानूनको स्वीकार करके तफसीलके बारेमें ही सुझाव पेश करें तो इसमें आपका हित है।” मंत्री महोदयके साथ जो दलीलें की गईं उन्हें मैं यहां नहीं देता; क्योंकि वे सभी दलीलें पीछे दी जा चुकी

है। उनके सामने रखनेमें भेद केवल भाषाका था। दलीलें तो वही थी। मन्त्रीजीको यह सूचित करके कि आपकी सलाह होते हुए भी कोई इस कानूनको मजूर नहीं कर सकता और स्त्रियोंको उससे मुक्त रखनेके इरादके लिए सरकारको धन्यवाद देकर शिष्ट-मंडलने उनसे विदा ली। स्त्रियोंकी मुक्ति भारतीय जनताके आन्दोलन की वदौलत हुई या सरकारने ही और विचार करके मि० कर्टिसकी शास्त्रीय पद्धतिको अस्वीकार करके कुछ लोक-व्यवहारका भी लिहाज किया, यह कहना कठिन है। सरकारी पक्षका कहना था कि सरकारने भारतीयोंके आन्दोलनके कारण नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूपसे विचार करके ही यह निश्चय किया है। चाहे जो हो, पर भारतीय जनताने तो 'काकतालीय न्याय'से यह मान ही लिया कि यह उसके आन्दोलनका ही फल है और इससे लड़नेका उत्साह बढ़ा।

कौमके इस सकल्प या आन्दोलनको कौनसा नाम दिया जाय, यह हमसे कोई नहीं जानता था। उस वक्त मैं इस आन्दोलनको 'पैसिव रेजिस्टेंस' कहता था। 'पैसिव रेजिस्टेंस' का अर्थ भी पूरी तरह नहीं समझता था। इतना ही समझा था कि किसी नई वस्तुका जन्म हुआ है। लडाई ज्यो-ज्यो आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों 'पैसिव रेजिस्टेंस' नामसे उलझन पैदा होने लगी और इस महान् युद्धका अग्नेजी नामसे ही परिचय देना मुझे लज्जा-जनक जान पड़ा। फिर कौमकी जवानपर यह शब्द चढ़ भी नहीं सकता था। अतः 'इंडियन ओपीनियन' में सबसे अच्छा नाम ढूँढ निकालनेवालेके लिए छोटे-से इनामकी घोषणा की। कुछ नाम मिले। इस वक्त तक इस युद्धके अर्थ की 'इंडियन ओपीनियन' में भली भाँति चर्चा हो चुकी थी। इससे प्रतियोगिता करनेवालोंके पास खोजके लिए काफी मसाला हो गया था। भगनलाल गाधीने भी इस

प्रतियोगितामें भाग लिया। उन्होंने 'सदाग्रह' नाम भेजा। इस शब्दको पसंद करनेका कारण बताते हुए उन्होंने लिखा कि हिंदुस्तानी कौमिका यह आन्दोलन एक भारी आग्रह है और यह आग्रह 'सद्' अर्थात् शुभ है। इसलिए यह नाम पसंद किया। उनकी दलीलका सार मैंने थोड़ेमें दिया है। मुझे यह नाम रुचा। फिर भी जिस वस्तुका समावेश मैं करना चाहता था उसका समावेश उसमें नहीं होता था। इसलिए मैंने 'द' को 'त्' करके और उसमें 'य' जोड़कर 'सत्याग्रह' नाम बनाया। सत्यमें शांतिका अंतर्भाव माना और आग्रह किसी भी वस्तुका किया जाय तो उसमेंसे बल उत्पन्न होता है। अतः आग्रहमें बलका भी समावेश किया, और भारतीय आन्दोलनको 'सत्याग्रह' अर्थात् शांतिसे उत्पन्न होनेवाले बलके नामसे पुकारना शुरू किया। तभीसे इस संग्रामके लिए 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दका उपयोग बंद कर दिया गया, यहाँतक कि अंग्रेजी लेखोंमें भी 'पैसिव रेजिस्टेंस' का उपयोग त्याग दिया और उसके बदले 'सत्याग्रह' या कोई दूसरा अंग्रेजी शब्द लिखना आरंभ किया। इस प्रकार जिस वस्तुका परिचय सत्याग्रहके नामसे दिया जाने लगा उस वस्तु और सत्याग्रह नामका जन्म हुआ। अपने इतिहासको आगे बढ़ानेके पहले 'पैसिव रेजिस्टेंस' और 'सत्याग्रह' का भेद हम समझ ले, यह जरूरी है। इसलिए अगले प्रकरणमें हम यह भेद समझेंगे।

: १३ :

### 'सत्याग्रह' बनाम 'पैसिव रेजिस्टेंस'

आन्दोलन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों अंग्रेजोंको

भी उससे दिलचस्पी होती गई। मुझे यह बता देना चाहिए कि यद्यपि ट्रांसवालके अग्रेजी अखबार आम तौरसे खूनी कानूनके पक्षमें ही लिखते थे और गोरोंके विरोधका समर्थन करते थे, फिर भी कोई प्रसिद्ध भारतीय उनको कुछ लिख भेजता तो वे खुशीसे उसको छापते थे। भारतीय सरकारके पास जो अर्जिया भेजते उन्हें भी पूरा-पूरा या उनका सार प्रकाशित कर देते। बड़ी सभाओमें कभी-कभी अपने रिपोर्टर भेजते और जब ऐसा न होता तो जो रिपोर्ट हम लिखकर भेज देते वह छोटी होती तो छाप देते।

यह भलमनसी भारतीय जनताके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई और आन्दोलन बढनेपर कुछ प्रमुख यूरोपियन भी उसमें रस लेने लगे। इन मुखियोंमें जोहान्सबर्गके लखपती मि० हॉस्कन भी थे। इनमें वर्ण-द्वेष तो आदिसे ही नहीं था। पर आन्दोलन आरंभ होनेके बाद हिंदुस्तानियोंके मसलेसे उन्हें गहरी दिलचस्पी हो गई। जमिस्टन नामका एक नगर है जो जोहान्सबर्गका उपनगर-सा है। वहाके गोरोंने मेरा भाषण सुननेकी इच्छा प्रकट की। सभा हुई। मि० हॉस्कनने उसमें हमारे आन्दोलनका और मेरा परिचय देते हुए कहा— "ट्रांसवालके भारतीयोंने न्याय प्राप्तिके लिए, दूसरे उपाय निष्फल हो जानेपर 'पैसिव रेजिस्टेंस' का अवलंबन किया है। उन्हें चुनावमें मत देनेका अधिकार नहीं। उनकी सख्या थोड़ी है। वे निर्बल हैं, उनके पास हथियार नहीं। इसलिए उन्होंने 'पैसिव रेजिस्टेंस' को, जो निर्बलोका हथियार है, ग्रहण किया है।" यह सुनकर मैं चौका और जो भाषण करने में गया था उसने दूसरा ही रूप ले लिया। मि० हॉस्कनकी दलीलका खंडन करते हुए मैंने 'पैसिव रेजिस्टेंस' को 'सोल-फोर्स' यानी आत्मबल बताया। इस सभामें मैंने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' शब्दके उपयोगसे भयानक भ्रम होनेकी

संभावना है। सामान्यतः दो दलीलें और ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ और आत्मबलका भेद समझानेके लिए जो कुछ और कहनेकी आवश्यकता है उसे मिलाकर मैं दोनोंके बीच रहनेवाले विरोधको समझानेकी कोशिश करूंगा।

‘पैसिव रेजिस्टेंस’ इन दो शब्दोंका उपयोग अंग्रेजी भाषामें पहले-पहल किसने किया और कब किया, इसका पता तो मुझे नहीं है। पर ब्रिटिश जनतामें जब-जब किसी छोटे समुदायको कोई कानून पसंद नहीं आया तब-तब उसने उस कानूनके विरुद्ध विद्रोह करनेके बदले उस कानूनके सामने सिर न झुकानेका ‘पैसिव’ अर्थात् हलका कदम उठाया और उसके फलस्वरूप जो सजा मिले उसे भुगत लेना पसंद किया। कुछ वरस पहले जब ब्रिटिश पार्लियामेंटने शिक्षाका कानून (एजुकेशन-ऐक्ट) पास किया तब डाक्टर क्लिफर्डके नेतृत्वमें ‘नान-कनफार्मिस्ट’ नामक इसाई सम्प्रदायने ‘पैसिव रेजिस्टेंस’का अवलंबन किया था। इंग्लैंडकी स्त्रियोन मताधिकार पानेके लिए जो जव-दंस्त आन्दोलन किया था उसे भी ‘पैसिव रेजिस्टेंस’का नाम दिया गया था। इन दोनों आन्दोलनोंको ध्यानमें रखकर ही मि० हॉस्किनने कहा कि ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ निर्बल अथवा मताधिकार-रहितका हथियार है। डाक्टर क्लिफर्डके पक्षको मताधिकार प्राप्त था, पर आम सामान्य उसकी संख्या इतनी कम थी कि वह वोटके बलसे शिक्षा-कानूनका पास होना नहीं रोक सका, अर्थात् यह पक्ष सख्याबलमें कमजोर ठहरा। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए यह पक्ष शस्त्रका उपयोग कभी करता ही नहीं, सो बात नहीं थी। पर इस काममें उसका उपयोग करके वह सफल नहीं हो पाता। सुब्यवस्थित राज्य-तंत्रमें हर वक्त यकायक बगावत करके ही हक हासिल करनेका तरीका चल ही नहीं सकता। फिर डाक्टर क्लिफर्डके पक्षके कुछ इसाई सामान्य रीतिसे हथियारका इस्तेमाल हो



सकता हो तो भी उसका विरोध करते । स्त्रियोंके आन्दोलनमें मताधिकार तो था ही नहीं । संख्या और शरीर-बलमें भी वे कमजोर थीं । अतः यह उदाहरण भी मि० हॉस्किनकी दलीलका पोषण ही करता था । स्त्रियोंके आन्दोलनमें हथियारके उपयोगका त्याग नहीं किया गया था । उनके एक पक्षने तो मकानोंमें आग लगाई और पुरुषोंपर हमला भी किया । किसीकी हत्या करनेका इरादा उन्होंने कभी किया हो यह तो मैं नहीं सोचता; पर मौका मिलनेपर लोगोंकी मरम्मत करना और इस प्रकार कुछ-न-कुछ उपद्रव खड़े करते रहना तो अवश्य उनका उद्देश्य था ।

पर हिंदुस्तानियोंके आन्दोलनमें हथियारके लिए तो कहीं और किसी भी स्थितिमें स्थान ही नहीं था, और ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ेंगे पाठक देखेंगे कि बड़े-बड़े कष्ट पड़नेपर भी सत्याग्रहियोंने शरीरबलसे काम नहीं लिया और वह भी ऐसे मौकोंपर जब इस बलका सफलता-पूर्वक उपयोग करनेमें वे समर्थ थे । फिर हिंदुस्तानियोंको मताधिकार नहीं था और वे कमजोर थे यह दोनों बातें सही हैं । फिर भी आन्दोलनकी योजनाका इनके साथ कोई संबंध नहीं था । यह कहनेमें मेरा आशय यह नहीं है कि भारतीय जनताके पास मताधिकारका या हथियारका बल होता तो भी वह सत्याग्रह ही करती । मताधिकारका बल हो तो सत्याग्रहके लिए बहुत करके अवकाश ही नहीं होता । हथियारका बल हो तो बिपक्षी अवग्य सम्हलकर चलता है । अतः यह भी समझमें आनेवाली बात है कि हथियार-बलवालेके लिए सत्याग्रहके अवसर थोड़े ही आएंगे । मेरे कहनेका तात्पर्य इतना ही है कि मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि भारतीय आन्दोलनकी कल्पनामें शस्त्रबलकी शक्यता-अशक्यताका सवाल मेरे मनमें उठा ही नहीं । सत्याग्रह केवल आत्माका बल है और जहां

और जितने अंशमें हथियार बानी शरीरबल या पशुबलका उपयोग होता हो या सोचा जाता हो वहा उतने अंशमें आत्मबलका कम उपयोग होता है। मैं मानता हूँ कि ये दोनों शुद्ध विरोधी शक्तियाँ हैं और आन्दोलनके जन्मकालमें भी यह विचार मेरे मनमें पुरा-पुरा बैठ गया था।

पर यहां हमें इसका निर्णय नहीं करना है कि ये विचार योग्य हैं या अयोग्य। हमें तो केवल ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ और सत्याग्रहके बीचके अंतरको ही समझ लेना है। हमने यह देख लिया कि इन दोनों शक्तियोंके बीच मूलमें ही बहुत बड़ा अंतर है। इस भेदको समझे बिना अपने आपको ‘पैसिव रेजिस्टर’ या सत्याग्रही माननेवाले दोनोंको एक ही चीज मान ले तो यह दोनोंके साथ अन्याय है और इसके वुरे नतीजे भी होंगे। हम खुद दक्षिण अफ्रीकामें ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ शब्दका उपयोग किया करते थे। उससे मताधिकारके लिए लड़नेवाली स्त्रियोंकी वीरता और आत्मबलका हमपर आरोप करके हमें यश देनेवाले तो बहुत थोड़े होते, पर हम भी उन स्त्रियोंकी तरह लोगोके जान-मालको नुकसान पहुंचानेवाले मान लिये जाते और मि० हॉस्किन जैसे उदार हृदयके सच्चे मित्रने भी हमें कमजोर मान लिया। विचारमें यह बल है कि मनुष्य अपने आपको जैसा मानता है अंतमें वैसा ही बन जाता है। हम यह मानते रहे कि हम निर्बल हैं, इसलिए निरुपाय होकर ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ का उपयोग कर रहे हैं और दूसरोसे भी यही मनवाया करें तो ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ करते हुए हम कभी बलवान हो ही नहीं सकेंगे और मौका मिलते ही इस निर्बलके हथियारको फेंक देंगे। इसके विपरीत अगर हम सत्याग्रही हों और अपने आपको सबल मानकर इस ताकतको इस्तेमाल करें तो इसके दो स्पष्ट परिणाम होते हैं। बलके विचारका पोषण करते हुए हम दिन-दिन अधिक बलवान होते जाते हैं

और ज्यों-ज्यों हमारा बल बढ़ता जाता है त्यों-त्यों सत्याग्रहका तेज बढ़ता जाता है और इस शक्तिका उपयोग छोड़ देनेका मौका हम कभी ढूँढते ही नहीं। फिर 'पैसिव रेजिस्टेंस' में जहाँ प्रेम-भावका अवकाश नहीं, वहाँ सत्याग्रहमें बैरभावके लिए अवकाश नहीं। इतना ही नहीं, बल्कि वह अघमें माना जायगा। 'पैसिव रेजिस्टेंस' में मौका मिले तो शस्त्र-बलका उपयोग किया जा सकता है, सत्याग्रहमें शस्त्र-बलके उपयोगके लिए अच्छे-से-अच्छे अवसर उपस्थित हों तो भी वह सर्वथा त्याज्य है। 'पैसिव रेजिस्टेंस' अक्सर शस्त्र-बलके उपयोगकी तैयारी समझा जाता है। सत्याग्रहका उपयोग इस रूपमें किया ही नहीं जा सकता। 'पैसिव रेजिस्टेंस' हथियारकी ताकतके साथ-साथ चल सकता है। सत्याग्रह तो शस्त्र-बलका नितान्त विरोधी है। इसलिए दोनोंका मेल कभी मिल ही नहीं सकता, यानी दोनोंका साथ निभ ही नहीं सकता। सत्याग्रहका उपयोग अपने प्रिय जनोके साथ भी हो सकता है और होता है, 'पैसिव रेजिस्टेंस' का उपयोग वस्तुतः प्रियजनोके साथ ही नहीं सकता, अर्थात् प्यारोंको बैरी मानिये तभी उसके साथ 'पैसिव रेजिस्टेंस' किया जा सकता है। 'पैसिव रेजिस्टेंस' में विपक्षको दुःख देने, हैरान करनेकी कल्पना सदा विद्यमान रहती है और उसे दुःख देते हुए खुद कष्ट सहना पड़े तो उसे सह लेनेको तैयार रहना होता है। पर सत्याग्रहमें विरोधीको दुःख देनेका खयाल तक नहीं होना चाहिए। उसमें तो स्वयं दुःखको मोल लेकर-सहकर विरोधीको जीत लेनेकी ही बात सोची जानी चाहिए।

इस प्रकार इन दो शक्तियोंके बीचके मुख्य भेद मने गिना दिये। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' के जो गुण-या दोष कहिए-मने गिनाये हैं वे हर प्रकारके 'पैसिव रेजिस्टेंस' में पाये जाते हैं। पर यह दिखाया जा सकता है कि

‘पैसिव रेजिस्टेंस’ के बहुतेरे उदाहरणोंमें ये दोष देखनेमें आये हैं। मुझे यह भी पाठकोंको बता देना चाहिए कि इंसा मसीहको बहुतेरे इसाई ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ के आदि-नेताके रूपमें मानते हैं; पर वहां तो ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ का अर्थ शुद्ध सत्याग्रह ही मानना चाहिए। इस अर्थमें ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ के अधिक उदाहरण इतिहासमें नहीं मिलते। टाॅलस्टॉयने रूसके दुखोबोर लोगोंकी मिसाल दी है। वह ऐसे ही ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ यानी सत्याग्रहकी है। हजरत ईसाके बाद हजारों ईसाइयोंने जो जुल्म बर्दाश्त किये हैं उस वक्त ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ शब्दका उपयोग होता ही नहीं था। अतः उनके समान निर्मल उदाहरण जो मिलते हैं उन्हें मैं तो सत्याग्रह ही कहूंगा और अगर आप उन्हें ‘पैसिव रेजिस्टेंस’की मिसाल माने तो ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ और सत्याग्रहमें कोई भेद नहीं रहता। इस प्रकरणका उद्देश्य तो यह दिखाना है कि अंग्रेजीमें ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ शब्दका व्यवहार आमतौरसे जिस अर्थमें होता है, सत्याग्रहकी कल्पना उससे बिलकुल अदी है।

जैसे ‘पैसिव रेजिस्टेंस’ के लक्षण गिनाते हुए, इस शक्तिका उपयोग करनेवालेके साथ किसी भी रीतिसे अन्याय न हो इस खयालसे मुझे ऊपर लिखी चेतावनी देनी पडी है, वैसे ही सत्याग्रहके गुण गिनाते हुए मुझे यह बता देना भी जरूरी है कि जो लोग अपने आपको सत्याग्रही कहते हैं उनकी ओरसे मैं उन सारे गुणोंका दावा नहीं करता। मैं इस बातसे अनभिज्ञ नहीं हूँ कि सत्याग्रहके जो गुण मैंने ऊपर बताये हैं उनसे कितने ही सत्याग्रही निरे अनजान हैं। बहुतेरे यह मानते हैं कि सत्याग्रह निर्वलोका हथियार है। कितनोंके मुहसे मैंने यह भी सुना है कि सत्याग्रह शास्त्र-बलसे काम लेनेकी तैयारी है पर मुझे फिरसे कह देना चाहिए कि सत्याग्रही किन गुणोंसे युक्त देखनेमें आते हैं यह मैंने नहीं बताया है, बल्कि यह दिखानेका यत्न

किया है कि सत्याग्रहकी कल्पनामे कौन-कौनसी बातें हैं और उसके अनुसार सत्याग्रहीको कैसा होना चाहिए। जिस शक्तिसे काम लेना ट्रासवालमे भारतीयोंने आरंभ किया, पाठक उस शक्तिको स्पष्ट रूपसे समझ ले और वह शक्ति 'पैसिव रेजिस्टेंस' के नामसे परिचित शक्तिके साथ मिला न दी जाय, इस विचारसे इस शक्तिके अर्थका सूचक शब्द ढूढना पडा और उस वक्त उसमे किन-किन वस्तुओका समावेश माना गया था, यही बता देना, थोडेमे, इस प्रकरणके लिखनेका उद्देश्य है।

: १४ :

### विलायतको शिष्ट-मण्डल

ट्रासवालमें खनी कानूनके खिलाफ अजिया आदि भेजनेके जो-जो काम करने थे सब कर दिये गए। धारा सभाने स्त्रियोंसे सबध रखनेवाली दफा निकाल दी। बाकीका विल लगभग उसी रूपमें पास हुआ जिस रूपमे प्रकाशित हुआ था। कौममे इस वक्त भरपूर हिम्मत थी और उतना ही एका और एकमतता भी। अतः कोई निराश नहीं हुआ। फिर भी कोई वैध उपाय उठा न रखनेका निश्चय भी कायम रहा। ट्रासवाल इस वक्त 'क्राउन कॉलोनी' था। 'क्राउन कॉलोनी' का शब्दार्थ है वादशाही उपनिवेश, अर्थात् ऐसा उपनिवेश जिसके कानून, शासन-प्रवध आदिके लिए बड़ी सरकार जवाबदेह समझी जाती है। अत जो कानून शाही उपनिवेशकी धारा सभा पास करे उनपर वादशाहकी मजूरी महज रस्म और सौजन्यकी रक्षाके लिए नहीं लेनी होती, बल्कि जो कानून ब्रिटिश विधानके सिद्धांतके विरुद्ध हो उस कानूनको वादशाह अपने मंत्रिमंडलकी सलाहसे स्वीकृति

देनेसे इन्कार कर सकता है, और ऐसा करनेके मौके भी काफी आते हैं। इसके विपरीत उत्तरदायी शासन-व्यवस्था (रस्यांसिदल गवर्नमेण्ट) वाले उपनिवेशकी धारा सभा जो कानून बनाये उसके लिए बादशाहकी मंजूरी मुख्यतः सौजन्यकी खातिर ही ली जाती है।

शिष्ट-मण्डल इगलैंड जाय तो कौमको अपनी जिम्मेदारी और अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। इसे बतानेका भार मेरे ही सिर रहा। इसलिए मैंने अपने मंडलके सामने तीन सुझाव रखे। एक तो यह कि यद्यपि यहूदी नाटकशाला (इम्पियर थियेटर) वाली सभामें हम प्रतिज्ञाएं कर चुके हैं फिर भी प्रमुख भारतीयोंसे फिरसे व्यक्तिगत प्रतिज्ञा करा लेनी चाहिए जिससे लोगोंके मनमें कोई शंका या कमजोरी आ गई हो तो मालूम हो जाय। यह सुझाव पेश करनेमें मेरी एक दलील यह थी कि शिष्ट-मण्डल सत्याग्रहके वलसे जाय तो निर्भय होकर जाय और कौमका निश्चय विलायतमें उपनिवेश सचिव और भारत सचिवके सामने निर्भयताके साथ रख सके। दूसरा यह कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका पूरा बंदोबस्त पहलेसे ही हो जाना चाहिए। तीसरा यह कि शिष्ट-मंडलमें कम-से-कम आदमी जायं। अक्सर लोगोंका यह खयाल देखनेमें आता है कि ज्यादा आदमी जाय तो ज्यादा काम हो सकता है। इसीसे यह सूचना की गई। शिष्ट-मण्डलमें जानेवाले अपने सम्मानके लिए नहीं, बल्कि शुद्ध सेवाके उद्देश्यसे जायं इस विचारको सामने लाने और खर्च बचानेकी व्यावहारिक दृष्टि इस सुझावमें थी। तीनों सुझाव मंजूर हुए। प्रतिज्ञापत्रपर लोगोंसे हस्ताक्षर कराये गये। बहुतोंने हस्ताक्षर किये। पर मैंने देखा कि जो लोग सभामें प्रतिज्ञा कर चुके थे उनमें भी कुछ ऐसे थे जो इस्तखत करते हिचकते थे। एक बार कोई प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद उसे फिर पचास बार

दुहराना पड़े तो इसमें हिचक होनी ही नहीं चाहिए। फिर भी किसे यह अनुभव नहीं हुआ है कि लोगोने जो प्रतिज्ञा सोच-समझकर की हो उसमें भी पीछे ढीले पड़ जाते हैं या मुहसे की हुई प्रतिज्ञाको लिखते हुए घबराते हैं? पैसा भी हमारे अंदाजके अनुसार इकट्ठा हो गया। सबसे अधिक कठिनाई प्रतिनिधियोंके चुनावमें पड़ी। मेरा नाम तो था ही। पर मेरे साथ कौन जाय? इस विचारमें कमेटीने बहुत वक्त गुजारा, कितनी ही रातें बीत गईं और सभा-समितियोंमें जो बुरी आदतें देखनेमें आती हैं उनका अनुभव पूरे तौरपर हुआ। कोई कहता कि अकेले गांधी ही जाय, इससे सबका संतोष हो जायगा। पर मैंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। मोटे हिसाबसे यह कह सकते हैं कि दक्षिण अफ्रीकामें हिंदू मुसलमानका सवाल नहीं था, पर यह दावा नहीं किया जा सकता कि दोनों कौमोंके बीच जरा भी अंतर नहीं था। और इस भेदने कभी जहरीली शकल नहीं अस्तित्थारकी तो इसका कारण वहाकी विचित्र परिस्थिति किसी हदतक भले ही हो, पर इसका असल और पक्का कारण तो यही है कि नेताओंने एकनिष्ठा और सच्चे दिलसे अपना काम किया और कौमको सही रास्ता दिखाया। मेरी सलाह यह थी कि मेरे साथ एक मुसलमान सज्जनको तो होना ही चाहिए और दोसे अधिक आदमियोंकी जरूरत नहीं; पर हिंदुओंकी ओरसे तुरत कहा गया कि आप तो सारी कौमके प्रतिनिधि माने जाते हैं, इसलिए हिंदुओंका भी एक प्रतिनिधि होना ही चाहिए। कुछ यह भी कहते कि एक प्रतिनिधि कोकणों मुसलमानोंका, एक मेमनोंका और हिंदुओंमें एक किसानोंका और एक अनाविल लोगोका होना चाहिए। इस प्रकार अनेक जातियोंके दावे पेश हुए। अतमें सब समझ गये और हाजी वजीर अली और मैं यही दो आदमी एकमतसे चुने गये।

हाजी वजीर अली आघे मलायी कहे जा सकते हैं। उनके बाप हिंदी मुसलमान और मां मलायी थी। इनकी मादरी जवान डच कही जा सकती है; पर अंग्रेजी भी इतनी पढ़ ली थी कि डच और अंग्रेजी दोनों अच्छी तरह बोल सकते थे। अंग्रेजीमें भाषण करनेमें उन्हें कही अटकना नहीं पड़ता। अखबारोंमें पत्र लिखनेका अभ्यास भी कर लिया था। ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके सदस्य थे और लंबे अरसेसे सार्वजनिक कामोंमें हिस्सा लेते आ रहे थे। हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह बोल लेते थे। उनका ब्याह एक मलायी स्त्रीसे हुआ था और इस स्त्रीसे उनके बहुतसे बाल-बच्चे थे। विलायत पहुंचते ही हम दोनों काममें जुट गये। उपनिवेश सचिव और भारत सचिवके सामने जो आवेदनपत्र पेश करना था उसका मसविदा तो जहाजपर ही बना लिया था। उसको छपा डाला। लार्ड एल्विन उपनिवेश मंत्री थे, लार्ड मॉर्ले भारत-मंत्री थे। हम हिंदके दादा (दादाभाई नवरोजी) से मिले। फिर उनके जरिये कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीसे मिले। हमने अपना पक्ष उसे सुनाया और बताया कि हम तो सब पक्षोंको साथ लेकर काम करना चाहते हैं। दादाभाईकी तो यह सलाह थी ही। कमेटीको भी यह ठीक जान पड़ा। इसी तरह हम सर मंचेरजी भावनगरीसे मिले। उन्होंने भी खूब मदद की। इनकी और दादाभाईकी भी सलाह थी कि लार्ड एल्विनके पास जो शिष्ट-मण्डल जाय उसका नेता कोई तटस्थ और प्रसिद्ध एंग्लो इंडियन बनाया जा सके तो अच्छा है। सर मंचेरजीने कुछ नाम भी सुझाए। उनमें सर लेपल ब्रिफिनका भी नाम था। पाठकोको जान लेना चाहिए कि सर विलियम विल्सन हंटर इस वक्त जीवित नहीं थे। वह होते तो दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थितिसे उनका गहरा परिचय होनेके कारण वही शिष्ट-मण्डलके नेता हुए होते या उन्होंने



उमराव (लार्ड) वर्गके किसी बड़े नेताको इस कामके लिए दूढ़ दिया होता ।

हम सर लेपल ग्रिफिनसे मिले । उनकी राजनीति तो हिंदुस्तानमें चलते हुए सार्वजनिक आन्दोलनोकी विरोधी ही थी; पर इस मसलेसे उनको गहरी दिलचस्पी हो गई और सौजन्यकेलिए नहीं, बल्कि न्यायकी दृष्टिसे उन्होंने हमारा अगुआ बनना मंजूर कर लिया । उन्होंने सारे कागज-पत्र पढ़ डाले और हमारे मसलेसे पूरी जानकारी कर ली । हम दूसरे एंग्लो इंडियन सज्जनोंसे भी मिले । आम सभाके बहुतसे सदस्योंसे और जिनका कुछ भी प्रभाव था ऐसे जितने आदमियों तक हमारी पहुंच हो सकती थी उन सबसे मिले । लार्ड एल्लिनके पास शिष्ट-मण्डल गया । उन्होंने सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनली । अपनी हमदर्दी जाहिर की और साथ-ही-साथ अपनी कठिनाइयां भी बताईं । फिर भी जितना हो सके उतना करनेका वचन दिया । यही शिष्ट-मण्डल लार्ड मॉर्लेसे भी मिला । उन्होंने भी सहानुभूति प्रकट की । उनके उत्तरका सार पीछे दे चुका हूँ । सर विलियम वेडरबर्नकी कोशिशसे आम सभाके हिंदुस्तानके राज-काजसे लगाव रखनेवाले सदस्योंकी सभा उसी भवनके एक दीवानखानेमें हुई और हमने उसके सामने भी अपना पक्ष जितना हमसे हो सका रखा । इस वक्त आइरिश पक्षके नेता मि० रेडमंड थे । इसलिए हम उनसे भी खास तौरसे मिलने गये । खूलासा यह कि आम सभाके सब पक्षोंके जिन-जिन सदस्योंसे हम मिल सकते थे उन सबसे मिले । इंग्लैंडमें हमें कांग्रेसकी ब्रिटिश कमेटीकी भरपूर मदद तो थी ही । पर यहांके रीति-रिवाजके मुताबिक उसमें तो पक्ष-विशेष और मतविशेषके आदमी ही आ सकते थे । ऐसे बहुतेरे थे जो उक्त कमेटीमें तो नहीं आते थे; पर हमारे काममें पूरी मदद देते थे । हमने सोचा कि इन सबको

इकट्ठा करके हम इस काममे लगा सके तो अधिक अच्छा काम हो सकता है और इस विचारसे एक स्थायी कमेटी बनानेका निश्चय किया। सब पक्षोके लोगोको यह विचार पसंद आया।

हर एक संस्थाका आधार मुख्यतः उसका मंत्री होता है। मंत्री ऐसा होना चाहिए जिसे संस्थाके उद्देश्यपर पूरा-पूरा विश्वास हो, साथ-ही-साथ उसमे इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपना अधिकार समर्थ देनेकी शक्ति और काम करनेकी योग्यता भी हो। मि० एल० डब्ल्यू० रिचमे ये सभी गुण थे। वह दक्षिण अफ्रीकाके ही थे। वहाँ मेरे दफ्तरमे गुमास्तेका काम करते थे और इन दिनों लंदनमे बैरिस्टरी पढ रहे थे। वह इंग्लैडमे मौजूद थे और यह काम करनेके इच्छुक भी थे। इससे कमेटी (साउथ अफ्रीका ब्रिटिश इंडियन कमेटी) बनानेकी हिम्मत हम कर सके।

विलायतमे, बल्कि सारे पश्चिममे, मेरी दृष्टिसे एक असम्य रिवाज यह है कि अच्छे-से-अच्छे कामका मुहूर्त भोजनके समय रखा जाता है। ब्रिटिश प्रधान मंत्री हर साल ९ नवंबरको लंदनके लार्ड मेयरके सरकारी वासस्थान मेंशन हाँउसमे जो भाषण दिया करते हैं उसमे वह अगले वरसके अपने कार्यक्रमका संकेत करते हैं और भविष्यके विषयमे अपना निजका अनुमान बताते हैं और इस कारण यह भाषण सारी दुनियाका ध्यान अपनी ओर खींचता है। लंदनके लार्ड मेयरकी ओरसे मंत्रिमंडलके सदस्यो आदिको उसमे भोजनका निमंत्रण दिया जाता है और वहाँ भी भोजनके बाद शराबकी बोतले खुलती हैं और मेजबान तथा मेहमानकी स्वास्थ्य-कामनाके लिए सुरापान किया जाता है। जब इस शुभ या अशुभ (सब अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार विशेषण चुनले) कार्यका दौर चल रहा हो उस वक्त भाषण भी दिये जाते हैं। इसमे वाद-शाहके मंत्रिमंडलका 'टोस्ट' (स्वास्थ्य-कामना) भी शामिल

होता है। इसी (टोस्ट) के जवाबमें प्रधान मंत्रीका उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण भाषण होता है। और जैसे सार्वजनिक रूपमें वैसे ही निजी तौरपर किसीके साथ खास मशविरा या बातचीत करनी हो तो उसे भोजनका न्यौता देनेका रिवाज है। कभी खाते-खाते तो कभी खाना खतम होनेपर वह विषय छिड़ता है। हमें भी एक नहीं, अनेक बार इस रिवाजके सामने नतमस्तक होना पडा था। पर कोई पाठक इसका अर्थ यह न करे कि हममेंसे किसीने कभी अभक्ष्यका भक्षण या अपेयका पान किया। इस प्रकार हमने एक दिन दोपहरके भोजनके निमंत्रण भेजे और उसमें अपने सभी मुख्य सहायकोको आमंत्रित किया। लगभग सौ निमंत्रण भेजे गये थे। इस भोजनका प्रयोजन सहायकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और उनसे विदा लेना और साथ ही स्थायी समितिकी स्थापना भी था। उसमें भी प्रथाके अनुसार भोजनके उपरांत भाषण हुए और कमेटिकी स्थापना भी हुई। इस आयोजनसे हमारे आन्दोलनकी और अधिक प्रसिद्धि हुई।

इस प्रकार कोई ६ हफ्ते विताकर हम दक्षिण अफ्रीकाको वापस हुए। मदीरा पहुचनेपर हमें मि० रिचका तार मिला कि 'लार्ड एल्लिंगनने घोषणा की है कि मन्निमंडलने वादशाहसे ट्रांसवालके एशियाटिक ऐक्टको नामजूर करनेकी सिफारिश की है। अब हमारे हर्षका क्या पूछना! मदीरासे केप टाउन पहुचनेमें १४-१५ दिन लगते हैं। यह वक्त तो हमने बड़े चैनसे गुजारा और दूसरे कष्टोंके निवारण के लिए श्रेष्ठचिल्ली-केसे हवाई महल बनाते रहे। पर दैवगति विचित्र है! हमारे ये महल कैसे धराशायी हो गये, इसे हम अगले प्रकरणमें देखेंगे।

पर इस प्रकरणको पूरा करनेके पहले एक-दो पवित्र संस्मरणोंको दिये बिना नहीं रहा जा सकता। मुझे यह तो कह ही देना होगा कि विलायतमें हमने एक क्षण भी

वेकार नहीं जाने दिया। बहुतसे सरक्यूलर (गश्ती चिट्ठिया) आदि भेजनेका सारा काम एक आदमीके किये नहीं हो सकता था। उसमे मददकी वड़ी जरूरत थी। पैसा खर्च करनेसे बहुत-कुछ मदद मिल सकती है, पर अपने ४० सालके अनुभवसे कह सकता हूँ कि यह मदद शुद्ध स्वयंसेवककी सहायता जैसी फलदायिनी नहीं होती। सौभाग्यवश ऐसी मदद हमें मिल गई। बहुतसे भारतीय युवक जो वहाँ पढ़ते थे हमारे आसपास बने रहते और उनमेंसे अनेक सुवह-शाम, इनाम या नामकी आशा रखे बिना हमारी मदद करते। पते लिखना, नकले करना, टिकट चिपकाना, डाकघर जाकर चिट्ठिया आदि छोड़ना—किसी भी कामको उनमेंसे किसीने अपनी शानके खिलाफ कहकर करनेसे इन्कार किया हो, यह मुझे याद नहीं आता। पर इन सबको एक ओर रखदे ऐसी मदद देनेवाला दक्षिण अफ्रीकामें मिला हुआ एक अंग्रेज नित्र था। वह हिंदुस्तानमें रह चुका था। उसका नाम था सिमंड्स। अंग्रेजीमें कहावत है कि देवता जिसे प्यार करते हैं उसे जल्दी अपने पास ले जाते हैं। इस 'परदुःखभजन' अंग्रेजको भी यमदूत मरी जवानीमें उठा ले गये। 'परदुःखभजन' विशेषणके व्यवहारका विशेष कारण है। यह मला भाई जब बवंडरमें था तब यानी १८९७ में प्लेग-पीडित भारतीयोंके बीच निर्भय होकर विचरता और उनकी मदद करता था। छूतके रोगियोंकी सेवा करते हुए मौतमें तनिक भी नहीं डरना तो उसके खूनमें भर गया था। जाति या रंगका द्वेष उसे छू तक नहीं गया था। उसका स्वभाव अतिशय स्वतंत्र था। उसका एक सिद्धांत यह था कि सत्य सदा अल्पसंख्यक पक्ष यानी 'माइनारिटी'के साथ ही रहता है। इसी सिद्धांतसे प्रेरित होकर वह जोहान्सवर्गमें मेरी ओर आकृष्ट हुआ और अनेक बार विनोदमें मुझे चुना देता था कि आपका

पक्ष बढ़ा हो जाय तो आप पक्का जानिये कि मैं हरगिज आपका साथ नहीं दूंगा, क्योंकि मैं मानता हूँ कि 'मेजारिटी' (बड़े पक्ष) के हाथमें सत्य भी असत्यका रूप ले लेता है। उसका अध्ययन विस्तृत था। जोहान्सवर्गके एक करोड़पति सर जार्ज फेररका वह विश्वास-भाजन प्राइवेट सेक्रेटरी था। शार्ट हैड (लघु-लेखन) लिखनेमें तो निष्णात था। जब हम विलायत पहुंचे तो वह अनायास हमसे आ मिला। मुझे उसका पता-ठिकाना भी मालूम नहीं था। पर हम तो सार्वजनिक लोग थे, इसलिए अखबारकी चर्चाके विषय ठहरे। इससे इस भले अंग्रेजने हमें ढूँढ निकाला और कहा—“मुझसे जो कुछ सहायता हो सके वह करनेको तैयार हूँ। मुझे चपरासीका काम सौंपिये तो वह भी करूँगा और शार्ट हैडकी आवश्यकता हो तो आप जानते ही हैं कि मुझसा कुशल स्टेनोग्राफर आपको दूसरा नहीं मिलनेका।” हमें तो दोनों सहायताएँ दरकार थीं और यह कहनेमें मैं तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ कि यह अंग्रेज रात-दिन, बिना पैसा लिए, हमारी बेगार करता था। रातके बारह-बारह और एक-एक वजेतक वह सदा टाइपराइटरपर ही बैठा होता। संदेश ले जाना, डाकखाने जाना, ये काम भी सिमंड्स करता और हसते चेहरेसे। मुझे मालूम था कि उसकी माहवार आमदनी लगभग ४५ पौंडके थी; पर यह सारी आय वह मित्रों आदिकी मदद करनेमें खर्च कर डालता। उसकी उम्र उस वक्त कोई तीस बरसकी रही होगी। पर वह अविवाहित था और योही जिंदगी बिता देनेका विचार था। मैंने उससे कुछ स्वीकार करनेके लिए बहुत आग्रह किया, पर उसने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। उसका उत्तर था—“मैं इस सेवाके बदलेमें कुछ लूँ तो मैं धर्म-भ्रष्ट हो जाऊँगा।” मुझे याद है कि आखिरी रातको सामान वगैरह बाँधते हमें तीन बज गये। तबतक वह भी जागता रहा।

अगले दिन हमें जहाजपर सवार कराके ही वह हमसे जुदा हुआ। यह वियोग हमारे लिए अति दुःखद था। मुझे अनक अवसरोंपर इसका अनुभव हो चुका है कि परोपकार कुछ गेहुँए रगवालोकी बर्पाती नहीं है।

〈सार्वजनिक काम करनेवाले युवकोकी जानकारीके लिए मैं यह भी बता दूँ कि शिष्ट-मण्डलके खर्चका हिसाब रखनेका काम हमने इतनी सावधानीसे किया कि जहाजपर सोडावाटर पीना हो तो उसकी जो रसीद मिलती वह भी उतने पैसेके खर्चके सबतके तौरपर रखली जाती। तारोकी रसीदें भी इसी तरह रखी जाती। ब्यारेवार हिसावमें फुटकर खर्चके नामसे एक भी रकम लिखी जानेकी बात मुझे याद नहीं है। यह भद तो हमारे हिसावमें थी ही नहीं। 'याद नहीं' शब्द बढ़ानेका कारण यही है कि कभी शामको हिसाब लिखते वक्त दो-चार पेनी या दो चार शिलिंगका खर्च याद न रहा हो और फुटकरके नामसे लिख दिया गया हो तो नहीं कह सकता। इसीलिए अपवाद रूपमें 'याद नहीं' शब्दका व्यवहार किया है।

इस जीवनमें एक बात मुझे साफ तौरपर दिखाई दी है। वह यह कि जबसे हम होश सम्हालते हैं तभीसे ट्रस्टी या जवाबदेह बन जाते हैं। जवतक मा-बापके साथ होते हैं तवतक जो कोई काम या जो पैसा वे सौंपते हैं उसका हिसाब हमें उनको देना ही चाहिए। हमारा विश्वास करके वे हमसे हिसाब न मागें तो इससे हम अपनी जवाबदेहीसे मुक्त नहीं होते। जब हम स्वतंत्र होते हैं तब स्त्री-पुत्र आदिके प्रति जवाबदेह हो जाते हैं। अपनी कमाईके मालिक अकेले हम ही नहीं हैं। वे भी उसमें हिस्सेदार हैं। उनकी खातिर हमें पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिए। फिर जब हम सार्वजनिक जीवनमें आते हैं तब तो कहना ही क्या! मैंने देखा है कि स्वयंसेवकोंमें यह माननेकी आदत पड़ जाती है कि मानों अपने

हाथमें रहनेवाले काम या पैसेका हिसाब देना उनका फर्ज नहीं है, क्योंकि वे अविश्वासके पात्र तो हो ही नहीं सकते। यह घोर अज्ञान ही माना जा सकता है। हिसाब रखनेका विश्वास या अविश्वासके साथ कुछ भी संबंध नहीं। हिसाब रखना ही स्वतंत्र धर्म है। उसके बिना हमे अपने कामको खुद ही मंला मानना होगा। और जिस सस्थामे हम स्वयंसेवक हों उसका नेता अगर झूठी भलमनसीके डरसे हमसे हिसाब न मांगे तो वह भी दोषभागी है। काम और पैसेका हिसाब रखना जितना तनखाह देनेवालेका फर्ज है, स्वयंसेवकका उससे दूना फर्ज है। इसलिए कि उसने अपने कामको ही अपना वेतन मान लिया है। यह बात अति महत्त्वकी है और मैं जानता हूँ कि आमतौरसे बहुतेरी संस्थाओंमें इसपर जितना चाहिए उतना ध्यान नहीं दिया जाता। इसीसे उसके लिए मैंने इस प्रकरणमें इतना स्थान देनेका साहस किया है।

: १५ :

### वक्र राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केप टाउनमे उतरते ही और खास तौरसे जोहान्सबर्ग पहुंचनेपर मैंने देखा कि मदीरामें मिले हुए तारकी जो कीमत हमने आंकी थी वह कीमत उसकी नहीं थी। इसमें भेजनेवाले मि० रिचका दोष नहीं था। उन्होंने कानूनके नामजूर होनेके बारेमें जैसा सुना वैसा तार कर दिया। हम ऊपर देख चुके हैं कि इस वक्त यानी १९०६ मे ट्रांसवाल शाही उपनिवेश था। ऐसे उपनिवेशोंके राजदूत अपने उपनिवेश सगबद्ध विषयोंमें उपनिवेश सचिवको आवश्यक सलाह देनेकेलिए इंग्लैंड (लंदन) में रहा करते हैं। ट्रांसवालके दूत दक्षिण अफ्रीका-

के प्रसिद्ध वकील सर रिचर्ड सॉलोमन थे। सूनी कानून-को नामजूर करनेका निश्चय लार्ड एल्लिनने सर रिचर्डके साथ मंशाविरा करके किया था। १९०७ की पहली जनवरीसे ट्रासवालको उत्तरदायी शासनका अधिकार मिलने वाला था। अतः लार्ड एल्लिनने सर रिचर्डको यह आश्वासन दिया—“यही कानून ट्रासवालको उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद वहाँकी धारा सभा पास करे तो बड़ी सरकार उसे नामजूर नहीं करेगी। पर जबतक ट्रासवाल शाही उपनिवेश माना जाता है तबतक ऐसे भेदभाववाले कानूनके लिए बड़ी सरकार सीधी जिम्मेदार समझी जायगी और चूँकि साम्राज्य सरकारके विधानमे भेदभाववाली राजनीतिकी स्थान नहीं दिया जाता, इसलिए इस सिद्धांतका सम्मान करनेके लिए फिलहाल तो मुझे बादशाहको यह कानून नामजूर करनेकी सलाह देनी ही होगी।”

इस प्रकार महज नामके लिए कानून रद्द हो जाय और साथ ही ट्रासवालके गोरोंका काम भी बन जाय तो सर रिचर्डको इसमे कोई एतराज न था। होता क्यों? इस राजनीतिको मैंने ‘वक्र’ विशेषण लगाया है; पर मैं मानता हूँ कि इससे अधिक तीखे विशेषणका व्यवहार किया जाय तो भी इस नीतिका संचालन करनेवालोके साथ वस्तुतः कोई अन्याय नहीं होगा। शाही उपनिवेशके कानूनके लिए बड़ी सरकार प्रत्यक्षतः जिम्मेदार होती है। उसके विधानमे रंगभेद और जातिभेदके लिए स्थान नहीं। ये दोनों बातें बहुत सुंदर हैं। यह बात भी समझमे आ सकती है कि बड़ी सरकार उत्तरदायी शासन प्राप्त उपनिवेशके बनाये हुए कानूनको एकवारगी रद्द नहीं कर सकती; पर उपनिवेशके राजदूतोंके साथ गुप्त मंत्रणा करना, उन्हें पहलेसे साम्राज्यके विधानके विरुद्ध कानूनको नामजूर न करनेका वचन दे देना,



इसमे क्या उन लोगोके साथ दगा और अन्याय नहीं है जिनके हक छीने जा रहे हों ? सच पछिये तो लार्ड एल्लिनने पहलसे वचन देकर ट्रासवालके गोरुको भारतीयोके विरुद्ध अपना आन्दोलन जारी रखनेका बढ़ावा दिया। उन्हे ऐसा करना था तो भारतीय प्रतिनिधियोको इसे साफ बता देना था। सच तो यह है कि उत्तरदायी शासन भोगनेवाले उपनिवेशोके कानूनोके लिए भी बडी सरकार जिम्मेदार होती ही है। ब्रिटिश विधानके मूल सिद्धांत स्वराज्य-भोगी उपनिवेशोको भी मानने ही होते है। जैसे, कोई भी उत्तरदायित्व प्राप्त उपनिवेश कानूनन जायज गुलामीकी प्रथाका पुनरुद्धार नहीं कर सकता। लार्ड एल्लिनने अगर खूनी कानूनको अनुचित मानकर नामंजूर किया हो—और ऐसा मानकर ही वह नामंजूर किया जा सकता था—तो उनका स्पष्ट कर्तव्य था कि सर रिचर्ड सालोमनको अकेलेमे बुलाकर कह देते कि उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद ट्रासवालकी सरकार ऐसा अन्यायकारी कानून न बनाये और उसका इरादा उसे बनानेका ही हो तो उसे जिम्मेदारी सौंपी जाय या नहीं, इसपर बर्ब सरकारको फिरसे विचार करना होगा। या हिंदुस्तानियोके हकोंकी पूरी रक्षाकी धर्तपर ही ट्रासवालको जवाबदेह हुकूमत सौंपनी चाहिए थी। यह करनेके बदले लार्ड एल्लिनने ऊपरसे तो हिंदुस्तानियोकी हिमायत करनेका ढोंग किया, पर भीतरसे उसी वक्त ट्रासवालकी सरकारको सून्धी हिमायत की और जिस कानूनको खुद रद्द किया उसीको फिरसे पास करनेका बढ़ावा दिया। ऐसी बक राजनीतिका यह एक ही या पहला उदाहरण नहीं था। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासका साधारण विद्यार्थी भी ऐसी दूसरी मिसालें याद कर सकता है।

इसलिए जोहान्सबर्गमे हमने एक ही बात सुनी कि लार्ड

एल्गिन और बड़ी सरकारने हमें घोखा दिया। हमें तो मदीरा-  
में जितनी खुशी हुई थी, दक्षिण अफ्रीकामें उतनी ही मायूसी  
हुई। फिर भी इस कृटिलताका तात्कालिक परिणाम तो  
यही हुआ कि कौममें और जोश फैला और सब कहने लगे—  
“अब हमें चिंता क्या है? हमें क्या बड़ी सरकारकी सहायताके  
भरोसे लड़ना है? हमें तो अपने बलपर और जिसका नाम  
लेकर हमने प्रतिज्ञा की है उस भगवान्के भरोसे लड़ना है।  
और हम सच्चे रहे तो टेढ़ी राजनीति भी सीधी हो ही  
जायगी।”

द्रासवालमें उत्तरदायी शासनकी स्थापना हुई ~~नई~~  
उत्तरदायी धारा सभाने जो पहला कानून पास किया  
वह था बजट और दूसरा कानून यही खूनी कानून (एशिया-  
टिक रेजिस्ट्रेशन ऐक्ट) था। यह कानून ज्यो-कार्टों उसी  
रूपमें पास हुआ जिस रूपमें पहले बना और पास हुआ था।  
उसकी एक दफामें तारीख दी हुई थी। उसे बदलना तो  
अधिक दिन बीत जानेसे जरूरी ही हो गया था। अतः यह  
तारीख उसमें बदली गई। २१ मार्च १९०७ की एक ही  
बैठकमें इस कानूनकी सारी विधियां पूरी करके वह पास कर  
दिया गया। इस शाब्दिक परिवर्तनका कानूनकी सख्तीके  
साथ कोई संबंध नहीं था। वह तो जैसी थी वैसी ही बनी रही।  
अतः यह कानून रद्द हुआ था, इस बातको लोग सपनेकी तरह  
भूल गये। भारतीय जनताने अपनी रीतिके अनुसार आवेदन-  
पत्र आदि तो भेजे ही, पर इस तूतीकी आवाज उस नक्कार-  
खानेमें कौन सुनता? इस कानूनके १ जुलाई १९०७ से  
जारी होनेकी घोषणा की गई थी और भारतीयोंको ३१ जुलाई-  
के पहले परवानेके लिए दख्खिस्त देनेको हुक्म दिया गया था।  
इतनी मुद्दत रखनेका कारण हिंदुस्तानियोंपर कोई मेहर-  
वानी करना नहीं था। पद्धतिके अनुसार इस कानूनको बड़ी

सरकारकी मंजूरी मिलनी चाहिए थी। इसमें कुछ वक्त लगना ही था। फिर उसके परिशिष्टके अनुसार परचे, परवाने वगैरह तैयार कराने और भिन्न-भिन्न स्थानोंमें परवाने-के दफ्तर (परमिट आफिस) खोलनेमें भी कुछ वक्त लगता। इससे यह पाच-छ महीनेकी मुहलत ट्रासवाल सरकारने अपने ही सुभितके लिए दी थी।

: १६ :

### अहमद मुहम्मद काब्रलिया

शिष्ट-मण्डल जब विलायत जा रहा था तब एक अंग्रेज मुसा-फिरने जो दक्षिण अफ्रीकामें रह चुका था, ट्रासवालके कानून और हमारे विलायत जानेका कारण भी हमारे मुहसे सुना। वह तुरंत बोल उठा—“आप कुत्तेका पट्टा (डॉग्स कॉलर) पहननेसे इन्कार करना चाहते हैं।” इस अंग्रेजनें ट्रासवालके परवानेकी यह नाम दिया। उसने यह बात पट्टेपर अपना हर्ष और भारतीयोंके प्रति तिरस्कार प्रकट करने या अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए कही, इसे मैं उस वक्त नहीं समझ सका था और आज इस घटनाका उल्लेख करते समय भी इस बारेमें कोई निश्चय नहीं कर सकता। किसी भी मनुष्यके कथनका ऐसा अर्थ हमें नहीं करना चाहिए जिससे उसके साथ अन्याय हो। इस सुनीतिका अनुसरण करते हुए मैं यह माने लेता हूँ कि इस अंग्रेजनें अपनी हमदर्दी दिखानेके लिए ऊपरके जैसे, भावनाकी तसवीर खींच देनेवाले शब्द कहे। एक ओर ट्रास-वाल सरकार हमें यह पट्टा पहनानेकी तैयारी कर रही थी, दूसरी ओर भारतीय जनता इसकी तैयारी कर रही थी कि यह पट्टा न पहननेके अपने निश्चयपर वह किस तरह

कायम रहे और ट्रांसवालकी सरकारकी कूनीतिके विरोधमे किस तरह युद्ध किया जाय । विलायत और हिन्दुस्तानके अपने सहायकोंको पत्र लिखने और चालू परिस्थितिसे उनको परिचित कराते रहनेका काम तो चल ही रहा था । पर सत्याग्रहकी लडाईं बाह्योपचारपर बहुत कम अवलंबित होती है । भीतरी उपचार ही सत्याग्रहमे अकसीर उपचार होता है । अतः कौमके सभी अंग ताजे और चुस्त रहे, इसके यत्नमे ही नेताओंका समय जा रहा था ।

कौमके सामने एक महत्वका प्रश्न उपस्थित हुआ . सत्याग्रहका काम किस मडलकी मारफत लिया जाय ? ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनमे तो बहुतसे समासद थे । उसकी स्थापनाके समय सत्याग्रहका जन्म भी नहीं हुआ था । उस संस्थाको अनेक कानूनोका विरोध करना पडा था और आज भी करना था । कानूनोका विरोध करनेके अतिरिक्त उसे दूसरे राजनैतिक, सामाजिक आदि काम भी करने होते थे । फिर इस संस्थाके सभी सदस्योने प्रतिज्ञा की थी, यह भी नहीं कहा जा सकता था । इसके साथ-साथ सत्याग्रहमे सम्मिलित होनेसे उस संस्थाको जो बाहरकी जोखिमें उठानी पडती उनका विचार करना भी जरूरी था । सत्याग्रहकी लडाईंको ट्रांसवालकी सरकार राजद्रोह मान ले और ऐसा मानकर यह युद्ध चलानेवाली संस्थाओंको गैरकानूनी घोषित कर दे तो ? इस सस्थाके जो सदस्य सत्याग्रही नहीं होंगे उनकी स्थिति क्या होगी ? सत्याग्रहके पूर्व जिसने पैसा दिया हो उनके पैसेका क्या होगा ? ये वाते भी सोचनेकी थी । अंतमे सत्याग्रहियोंका यह दृढ़ निश्चय था कि जो लोग अश्रद्धा, अशक्ति या दूसरे किसी भी कारणसे सत्याग्रहमें शामिल न हों उनके प्रति द्वेष न रखा जाय, इतना ही नहीं, उनके साथ बर्ताव करनेमे आजके स्नेह-भावमें कोई अंतर

न आने दिया जाय और सत्याग्रहको छोड़कर और आन्दोलनोंमें उनके साथ-साथ काम किया जाय ।

इन विचारोंसे अंतमें सारी कौमने यही निश्चय किया कि सत्याग्रहकी लड़ाई किसी वर्तमान सत्याके जरिये न चलाई जाय । दूसरी संस्थाएं जितनी सहायता दे सकती हो दें और सत्याग्रहको छोड़कर और जो उपाय खूनी कानूनके विरोधमें कर सकती हों करे । अतः 'पैसिव रेजिस्टेंस एसोसियेशन' अथवा 'सत्याग्रह-मंडल' नामकी नई संस्था सत्याग्रहियोंने स्थापित की । अंग्रेजी नामसे पाठक यह समझ लें कि जिस वक्त इस नये मंडलकी स्थापना हुई उस वक्ततक सत्याग्रह नामकी खोज नहीं हो सकी थी । ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों हमें यह मालूम होता गया कि अलग संस्था स्थापित करनेसे जनताका हर तरह लाभ ही हुआ और अगर वैसा न हुआ होता तो सत्याग्रहके आन्दोलनकी शायद हानि ही हुई होती । बहुतसे लोग इस नई संस्थाके सदस्य हुए और जनताने पैसा भी खुले हाथों दिया ।

मेरे अनुभवने मुझे यह बताया है कि कोई भी आन्दोलन पैसेकी कमीसे टूटता, अटकता या निस्तेज नहीं होता । इसके मानी यह नहीं है कि कोई भी लौकिक आन्दोलन बिना पैसेके चल सकता है । पर इसका यह अर्थ अवश्य है कि जहाँ सच्चे संचालक है वहाँ पैसा अपने आप चला आता है । इसके विपरीत मुझे यह भी अनुभव हुआ है कि जिस आन्दोलनको पैसेका अतिरेक हो जाता है उसकी उसी समयसे अवनति आरंभ हो जाती है । इससे कोई सार्वजनिक संस्था पूजी इकट्ठी करके उसके व्याजसे अपना कारबार चलाये इसे पाप कहनेकी हिम्मत तो नहीं होती, इससे इतना ही कहता हूँ कि यह अयोग्य है । सार्वजनिक संस्थाकी पूजी तो जनसमुदाय ही है । जबतक वह चाहता है तभी तक उसे जीवित

रहना चाहिए। पूजा इकट्ठी करके ब्याजसे काम चलानेवाली संस्था सार्वजनिक नहीं रहती, बल्कि स्वतंत्र और स्वच्छंद हो जाती है। सार्वजनिक टीकाके अंकुशके बंध नहीं रहती। ब्याजपर चलनेवाली अनेक धार्मिक और लौकिक संस्थाओंमें कितनी बुराइयाँ घुस गई हैं, इसे बतानेका यह स्थान नहीं। यह लगभग स्वयंसिद्ध बात है।

अब हम फिर अपने मूल विषयपर आएँ। बालकी खाल निकालना और नुक्ताचीनी करना कुछ बकीलों और अंग्रेजी पढ़े हुए लोगोंका ही ठेका नहीं है। मैंने देखा कि दक्षिण अफ्रीकाके अपढ़ हिंदुस्तानी भी बहुत ही बारीक दलीलें कर सकते हैं। कितनोंने यह दलील निकाली कि पहला खूनी कानून रद्द हो गया है, इसलिए नाटकखालामें की हुई प्रतिज्ञा पूरी हो गई। जो लोग ढीले पड़ रहे थे उन्होंने इस दलीलकी छायामें आश्रय लिया। इस दलीलमें कुछ दम न था, यह तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी जिन लोगोंने उस कानूनका विरोध कानूनकी हैसियतसे नहीं, बल्कि उसके भीतर निहित तत्त्वके कारण किया था उनपर तो इस नुक्ताचीनीका कोई असर नहीं हो सकता था। पर यह होते हुए भी सलामतीकी खातिर, जन-जागरण बढ़ानेके लिए और लोगोंके भीतर जो कमजोरी आ गई है उसकी गहराई कितनी है यह देख लेनेके लिए लोगोंसे फिरसे प्रतिज्ञा कराना जरूरी समझा गया। इसलिए जगह-जगह सभाएं करके लोगोंको परिस्थिति समझाई गई और उनसे फिरसे प्रतिज्ञाएं भी कराई गईं। लोगोंका जोश कुछ ठंडा हो गया हो, यह नहीं दिखाई दिया।

इस बीच जुलाईके महीनेका अंत निकट आता जा रहा था। उसकी आखिरी तारीखको हमने ट्रांसवालकी राजधानी प्रिटोरियामें विराट् सभा करनेका निश्चय किया था। दूसरे शहरोंसे भी प्रतिनिधि बुलाये गये थे। सभा

प्रिटोरियाकी मस्जिदके मैदानमे हुई । सत्याग्रह आरम्भ होनेके बादसे लोग सभाओमें इतनी बढ़ी तादादमे आने लगे थे कि किसी मकानमे सभा करना नामुमकिन हो गया था । सारे ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंकी आवादी १३ हजारसे अधिक नहीं मानी जाती थी, जिसमेसे १० हजारसे कुछ ऊपर जोहान्सवर्ग और प्रिटोरियामें ही बसते थे । इस तादादमेसे पाँच-छः हजार लोग सभामें उपस्थित हो, यह संख्या दुनियाके किसी भी भागमे बहुत बढ़ी और अति सतोषजनक मानी जा सकती है । सार्वजनिक सत्याग्रहकी लड़ाई और किसी शर्तपर लड़ी भी नहीं जा सकती । जहा युद्धका आधार केवल अपना बल हो वहा उस विषयकी सार्वजनिक शिक्षा नहीं दी गई हो तो लड़ाई चल ही नहीं सकती । इससे यह उपस्थिति हम कार्यकर्ताओके लिए कोई अचंभेकी चीज नहीं थी । हमने शुरूसे ही निश्चय कर लिया था कि अपने आम जलसे खुले मैदानमे ही करेंगे । इससे हमारा खर्च कुछ नहीं होता था और जगहकी तगीके कारण एक भी आदमीको वापस नहीं जाना पडता था । यहीं यह बात भी लिख देना चाहिए कि ये सारी सभाएं अधिकाशमें बहुत शांत होती । आनेवाले सारी बातोंको बड़े ध्यानसे सुनते । कोई बहुत दूरपर खड़ा होनेके कारण सुन न सकता तो वक्तासे ऊंची आवाजमे बोलनेका अनुरोध करता । पाठकोंको यह बतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए कि इन सभाओमे कुर्सियो वगैरहका इंतजाम बिलकुल ही न होता । मंच इतना ही बड़ा बनाया जाता कि केवल समापति, वक्ता और समापतिके अगल-अगल दो-चार आदमी और बैठ ले । उसके ऊपर एक छोटीसी मेज और दो-चार कुर्सिया-तिपाइया रख दी जाती ।

प्रिटोरियाकी इस सभाके सभापति ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशनके कार्यकारी अध्यक्ष यूसुफ इस्माइल मिया थे । खूनी कानूनके अनुसार परवाने निकालनेका वक्त

नजदीक आता जा रहा था। इससे जैसे हिंदुस्तानियोंमें गहरा जोश होते हुए भी वे चिंतातुर थे वैसे ही जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी, उनकी सरकारके पास अमोघ बल होते हुए भी, चिंतातुर थे। एक सारी कौमको ताकतसे काम लेकर झुकाना किसीको रुच तो सकता ही नहीं। अतः जनरल बोथाने मि० हॉस्किनको इस सभामे हमें समझानेके लिए भेजा। मि० हॉस्किनका परिचय मैं ७ वें प्रकरणमें करा चुका हूँ। सभाने उनका स्वागत किया। अपने भाषणमें उन्होंने कहा—“आप जानते हैं कि मैं आप लोगका मित्र हूँ। मेरी सहानुभूति आपके साथ है, यह कहनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। मेरे बसकी बात हो तो मैं आपकी मांग जरूर मंजूर करा दू; पर यहांके सामान्य गोरोकें विरोधके विषयमें मुझे आपको कुछ बताना तो है ही नहीं। आज मैं आपके पास जनरल बोथाका भेजा हुआ आया हूँ। उन्होंने इस सभामे आकर आपको उनका सदेसा सुना देनेको कहा है। भारतीय जनताके लिए उनके दिलमें इज्जत है। उसकी भावनाओंको वह समझते हैं। पर वह कहते हैं—‘मैं लाचार हूँ। ट्रांसवालके सारे यूरोपियन ऐसा कानून मांगते हैं। मैं खुद भी इस कानूनकी जरूरत देखता हूँ। ट्रांसवाल सरकारकी शक्तको भारतीय जनता जानती है। इस कानूनको बड़ी सरकारकी सम्मति प्राप्त है। भारतीय जनताको जितना करना चाहिए था उतना उसने किया और अपने सम्मानकी रक्षा कर ली। पर जब उसका विरोध सफल नहीं हुआ और कानून पास हो गया तब उसको चाहिए कि इस कानूनको शिरोधार्य कर अपनी वफादारी और शान्ति-प्रियताका सबूत दे। इस कानूनके अनुसार जो नियम बने हैं उनमें कोई छोटा-मोटा हँर-फेर कराना हो तो इस विषयमें आपका कहना जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक



सुनेगे।” यह सदेसा सुनाकर मि० हॉस्किनने कहा—“मैं खुद भी आपको यह सलाह देता हूँ कि जनरल बोथाके सदेसेको आप मान लें। मैं जानता हूँ कि ट्रांसवालकी सरकार इस कानूनके बारेमें दृढ़ है। उसका विरोध करना दीवारसे सिर टकराना जैसा है। मैं चाहता हूँ कि आपकी कौम विरोध करके बरवाद न हो या बेकार कष्ट न भोगे।” मैंने इस भाषणके शब्द-शब्दका उलथा जनताको सुना दिया। खुद अपनी ओरसे भी चेतावनी दी। मि० हॉस्किन तालियोंकी आवाजके बीच विदा हुए।

अब भारतीयोंके भाषण शुरू हुए। इस प्रकरणके और सच पृच्छिये तो इस इतिहासके, नायकका परिचय मुझे अभी कराना बाकी है। जो लोग बोलनेको खड़े हुए उनमें स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया भी थे। मैं तो उन्हें एक मवक्किल और दुभाषियेके रूपमें ही जानता था। वह अबतक सार्व-जनिक कामोंमें आगे बढ़कर हिस्सा नहीं लेते थे। उनका अंग्रेजीका ज्ञान कामचलाऊ था। पर अनुभवसे उसको इतना बढ़ा लिया था कि अपने दोस्तोंको अंग्रेज वकीलोंके पास ले जाते तो खुद ही दुभाषियेका काम करते। दुभाषियेका काम कुछ उनका पेशा नहीं था। यह काम तो वह मित्ररूपमें ही करते थे। धधा पहले कपडेकी फेरीका करते थे, फिर अपने भाईके साथमें छोटे पैमानेपर व्यापार करने लगे। वह सुरती मेमन थे। उनका जन्म सुरत जिलेमें हुआ था और सुरती मुसलमानोंमें उनकी अच्छी इज्जत थी। उनका गुजरातीका ज्ञान भी साधारण ही था और अनुभवसे उसे भी काफी बढ़ा लिया था। पर उनकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी कि चाहे जो विषय हो उसे बहुत आसानीसे समझ लेते थे। मुकदमोंकी गृत्थिया इस तरह सुलझा लेते थे कि अकसर मैं देखकर दंग रह जाता। वकीलोंके साथ कानूनकी

वहस करते भी नहीं हिचकते थे और अकसर उनकी दलीले वकीलोके लिए भी विचारणीय होतीं ।

बहादुरी और एकनिष्ठामे उनसे बढ़ जानेवाला आदमी न मुझे दक्षिण अफ्रीकामे दिखाई दिया और न हिंदुस्तानमे । कौमके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व होम दिया था । जितनी बार उनसे मेरा सम्पर्क हुआ, मैंने उन्हें एक बातवाला पया । खुद पक्के मुसलमान थे । सूरतकी मेमन मस्जिदके मुतवल्लियो-मेंसे भी थे । पर इसके साथ-साथ हिंदू-मुसलमान दोनोंको एक निगाहसे देखते थे । मुझे एक भी ऐसा मौका याद नहीं जब उन्होंने धमन्धताके भावसे और अनुचित रीतिसे हिंदूके मुकाबिले मुसलमानकी तरफदारी की हो । वह नितात निर्भय और पक्षपात-रहित थे । इसलिए जब जरूरी मालूम होता तब हिंदू-मुसलमान दोनोंको उनके दोष बतानेमें तनिक भी संकोच न करते । उनकी सरलता और निरभिमानता अनुकरण करने योग्य थी । उनके साथ बरसोके गाढ़ परिचयके बाद वनी हुई मेरी यह पक्की राय है कि स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया जैसा मनष्य कौमको मिलना मुश्किल है ।

प्रिटोरियाकी सभामे बोलनेवालामें यह नर-रत्न भी था । उन्होंने बहुत ही छोटा भाषण दिया । वह बोले—  
“इस खूनी कानूनको हर हिंदुस्तानी जानता है । उसका अर्थ हम सभीको मालूम है । मि० हाँस्किनका भाषण मैंने ध्यान-पूर्वक सुना है । आपने भी सुना है । मुझपर तो उसका एक ही असर हुआ है कि अपनी प्रतिज्ञापर मैं और पक्का हो गया हूँ । ट्रांसवालकी सरकारका बल हम जानते है । पर इस खूनी कानूनके डरसे बड़ा डर वह हमें कौन-सा दिखा सकती है ? वह हमें जेल भेजेगी, हमारा माल नीलाम कर देगी, हमें देशसे निकाल देगी, फाँसीपर चढा देगी । ये सारी बातें सहन हो सकती है, पर यह कानून तो

सहन नहीं होगा।" मैं देख रहा था कि ये वाक्य बोलते हुए अहमद मुहम्मद काछलिया बड़े उत्तेजित होते जा रहे थे। उनका चेहरा सुर्ख हो गया था, गर्दन और माथेकी रंग खूनके जोरसे दौरा करनेके कारण उभर आई थीं। शरीरकाप रहा था। अपने दाहिने हाथकी उंगलिया गर्दनपर फेरते हुए वह गरज उठे—“मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हू कि मैं कत्ल हो जाऊंगा, पर इस कानूनके सामने सिर न झुकाऊंगा। और मैं चाहता हूँ कि यह सभा भी यही निश्चय करे।” यह कहकर वह बैठ गये। उन्होंने जब गर्दनपर उंगलिया फेरी तो मचपर बैठे हुए कुछ लोगोंके चेहरोपर मुस्कराहट आगई। जहांतक मुझे याद है, मैंने भी उनका साथ दिया। सेठ काछलियाने अपने शब्दोंमें जितना बल भरा था उतना वह अपने कामोंमें दिखा सकेंगे, इस विषयमें मेरे मनमें थोड़ी शंका थी। जब-जब मैं इस शकाकी बात सोचता हू तब-तब और यहां इस बातका उल्लेख करते हुए भी मैं लज्जित हो रहा हू। इस महान सभामें जिन बहुतोंने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया उनमें सेठ काछलिया सदा आगे रहे। उनका रंग बदलता हुआ मैंने कभी देखा ही नहीं।

सभाने तो इस भाषणका तालियोंकी गडगडाहटसे स्वागत किया। उस वक्त मैं उनको जितना जानता था उसकी बनिस्वत और सभासद कही ज्यादा जानते थे, क्योंकि उनमेंसे अधिकांशको तो इस गुदडीके लालका निजी परिचय था। वे जानते थे कि काछलियाको जो करना होता है वही कहते हैं और जो कहते हैं वही करते हैं। जोशीले भाषण और भी कई हुए। पर काछलिया सेठके भाषणको उल्लेखके लिए इस कारण चुना है कि यह भाषण उनकी भावी कार्यावलीकी भविष्यवाणी सिद्ध हुआ। जोशीले भाषण करनेवाले सभो नहीं टिक सके। इस पुर्खसिंहकी मृत्यु अपने देग-भाइयोंकी सेवा करते हुए

ही १९१८ मे अर्थात् युद्ध समाप्तिके चार साल बाद हुई ।

इनके एक संस्मरणको और कही स्थान मिलना सम्भव नहीं । इसलिए उसे भी यही दिये देता हूँ । पाठक टाल्स्टाय फार्मकी बात आगे चलकर पढ़ेंगे । उसमे सत्याग्रहियोंके कटुत्व बसते थे । सेठ काछलियाने अपने बेटेको भी शिक्षा प्राप्तिके लिए इस फार्ममे भेजा था, केवल इस दृष्टिसि कि दूसरोके लिए उदाहरण उपस्थित कर और अपने बेटेको भी सरल जीवनका अभ्यासी और जनताका सेवक बनाएं । और कह सकते हैं कि इसको देखकर ही दूसरे मुसलमान लडकोको भी उनके मा-बापने इस फार्ममे भेजा । बालक काछलियाका नाम अली था । उसकी उम्र उस वक्त १०-१२ सालकी होगी । वह नम्र, चंचल, सरल और सत्यवादी बालक था । काछलिया सेठके पहले, पर लडाईके बाद, फरिस्ते उसे भी खुदाके दरवारमे उठा लाये । मैं मानता हू कि वह जिंदा रहता तो पिताकी कीर्तिको अवश्य चार चांद लगाता ।

: १७ :

## पहली फूट

१९०७की पहली जुलाई आई । परवाना जारी करनेके दफ्तर (परमिट आफिस) खुले । कौमका हुकम था कि हरएक दफ्तरकी खलेतौरपर पिकेटिंग की जाय, यानी दफ्तरोंको जानेवाल रास्तापर स्वयंसेवक रखे जाएं और वे दफ्तरमे जानेवालोको सावधान करें । हरएक स्वयंसेवकको एक खास विल्ला दिया गया था और हरएकको खासतौरसे यह समझा दिया गया था कि परवाना लेनेवाले किसी भी

हिंदुस्तानीके साथ विनय-विरुद्ध व्यवहार न करे। उनका नाम पूछे, पर वह न बताएँ तो बलात्कार या अविनय न करे। कानूनको मान लेनेसे होनेवाली हानियोंकी जो सूची छपा रखी गई थी उसे एशियाई दफ्तरमें जानेवाले हर हिंदुस्तानीको दे दे और उसमें क्या लिखा है यह समझा दे। पुलिसके साथ भी विनयका व्यवहार करे। वह गाली दे, मारे तो शान्तिसे सह लें। मार बर्दाश्त न हो तो बहासे हट जाय। पुलिस पकड़े तो खुशीसे गिरफ्तार हो जायं। जोहान्सबर्गमें ऐसी कोई बात हो तो मुझको ही खबर दे। और कहीं हो तो उन स्थानोमें नियुक्त मंत्रियोंको खबर दे और उनकी सलाहके अनुसार काम करे। स्वयंसेवकोंकी हर एक टुकड़ीका एक मुखिया या नायक था। उसकी आज्ञाका पालन करना दूसरे स्वयंसेवकों (पहरेदारों) का फर्ज था।

भारतीय जनताके लिए इस प्रकारका यह पहला ही अनुभव था। १२ वरससे ऊपरकी उम्रवाले सब लोग 'पिकेट' या पहरेदारका काम करनेके लिए चुन लिये गये थे। इससे १२ से १८ वरस तकके नवयुवक भी बड़ी संख्यामें स्वयंसेवक बना लिए गये थे; पर स्थानीय कार्यकर्ता जिसे न जानते हों ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वीकार नहीं किया जाता था। इतनी सावधानीके अतिरिक्त हर सभामें दूसरे तौरपर लोगोको जता दिया गया था कि नुकसानके डरसे या और किसी कारणसे जो कोई नया परवाना निकलवाना चाहे, नेता उसके साथ एक स्वयंसेवक कर देगा जो साथ जाकर उसे एशियाटिक दफ्तरमें पहुंचा देगा और काम हो जानेपर उसे फिर स्वयंसेवकोंके घरके बाहर पहुंचा आयेगा। बहुतांसे इस सुरक्षाके प्रबंधका लाभ भी उठाया। स्वयंसेवकोने हर जगह बड़े उत्साहसे काम किया। वे सदा अपने काममें मुस्तैद और चौकन्ने रहते। मोटे हिसाबसे यह कह सकते

हैं कि पुलिसने उन्हें बहुत तंग नहीं किया। कभी-कभी करती तो स्वयंसेवक उसे सह लेते।

स्वयंसेवकोंने इस काममें हास्य रसका भी मिश्रण किया था जिसमें कभी-कभी पुलिस भी शामिल होती। अपना वक्त आनंदमें बितानेके लिए वे अनेक चूटकुले दूढ़ निकालते। एक बार रास्ता रोकनेके इंतजामपर वे राहदारीके कानूनके अदर गिरफ्तार कर लिये गये। यहाँ सत्याग्रहमें असहयोग न था। इसलिए अदालतमें वचाव न करनेका नियम नहीं था, यद्यपि यह सामान्य नियम था कि जनताका पैसा खर्च करके वकील रखकर वचाव नहीं कराया जायगा। इन स्वयंसेवकोंको अदालतने निरपराध कहकर छोड़ दिया। इससे उनका उत्साह और बढ़ा।

इस प्रकार जो हिंदुस्तानी परवाना लेना चाहते थे यद्यपि उनपर प्रकटमें स्वयंसेवकोंकी ओरसे कोई असभ्य व्यवहार या जोर-जबर्दस्ती नहीं होती थी, फिर भी मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि लड़ाईके सिलसिलेमें एक ऐसा भी दल खड़ा हो गया था जिसका काम बिना स्वयंसेवक बने छिपे तौरपर परवाना लेनेवालोंको मारपीटकी धमकी देना या दूसरे तौरपर नुकसान पहुंचाना था। यह दुःखद बात थी। ज्योंही इसकी खबर मिली, इसे रोकनेके लिए खूब कड़े उपाय किये गये। इसके फलस्वरूप धमकियाँ देना बंद-सा हो गया, पर उसका जड़-मूलसे नाश नहीं हुआ। धमकियोंका असर रह ही गया और मैं यह भी देख सका कि उतने अंशमें लड़ाईको नुकसान पहुंचा। जिन्हें डर लग रहा था उन्होंने तुरंत सरकारी सरक्षण ढूढ़ा और वह उन्हें मिला। यों कौममें विषका प्रवेश हुआ और जो कमजोर थे वे और भी कमजोर हो गये। इससे विपको पोषण मिला, क्योंकि दुर्बलताका स्वभाव वदला लेनेका होता ही है।

इन धमकियोंका असर बहुत ही थोडा हुआ, पर लोकमत और स्वयसेवकोंकी उपस्थितिसे परवाना लेनेवालोके नाम जनतापर प्रकट होंगे, इन दोनों बातोंका असर बहुत गहरा हुआ। एक भी हिंदुस्तानीको नहीं जानता जो यह मानता हो कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना अच्छा है। जो परवाना लेने गये वे महज इसलिए गये कि कष्ट सहने या हानि उठानेका दम उनमें नहीं था। इसीसे वे जाते हुए शरमाये भी।

एक ओर लोकलाज और दूसरी ओर अपने व्यापारको नुकसान पहुंचनेका डर इस दुहरी कठिनाईसे निकलनेका रास्ता कुछ मुखिया हिंदुस्तानियोंने ढूढ निकाला। एशियाटिक दफ्तरके साथ बातचीत कर उन्होंने यह प्रबंध किया कि दफ्तरका कोई अहलकार किसी निजी मकानमें और वह भी रातमें नौ-दस बजेके बाद जाकर उन्हें परवाना दे दे। उन्होंने सोचा कि इस प्रबंधसे कुछ वक्तवक तो उनके खूनी कानूनके सामने घटने टोक देनेकी किसीकी खबर ही नहीं होगी, और चूंकि वे नेता थे, इसलिए उनको देखकर दूसरे भी उस कानूनका मान लेंगे। इससे और कुछ न हो तो लज्जाका बोझ तो कुछ हलका हो ही जायगा। पीछे बात लोगोपर प्रकट हो गई तो उसकी चिंता नहीं।

पर स्वयसेवकोंकी चौकसी इतनी कड़ी थी कि कौमको पल-पलकी खबर मिला करती थी। एशियाटिक दफ्तरमें भी ऐसा कोई होगा ही जो सत्याग्रहियोंको इस तरहकी सूचनाएं देता रहा हो। फिर कुछ ऐसे लोग भी थे जो खुद तो कमजोर थे, पर नेताओंका खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और जो इस सद्भावसे सत्याग्रहियोंको खबर दे दिया करते थे कि वे दूढ रहे तो हम भी रह सकेंगे। यो एकवार इस चौकन्नेपनकी बदौलत कौमको

खबर मिली कि अमुक रातको अमुक दुकानमे फलां-फला आदमी परवाना लेनेवाले हैं। इससे कौमने पहले तो यह इरादा रखनेवालोंको समझानेका यत्न किया, फिर उस दुकानपर पहरा भी बैठवा दिया। पर मनुष्य अपनी कमजोरीको कबतक दबा सकता है? रातके दस-न्यारह बजे कुछ मुखियोने इस तरह परवाने लिये और एक सुरमे वजनेवाली वासरीमे विसंवादी स्वर बज उठा। दूसरे ही दिन इनके नाम भी कौमने प्रकाशित कर दिये। पर शर्मकी भी एक हद होती है! स्वार्थ जब सामने आकर खड़ा होता है तब लाज-संकोच काम नहीं देता और मनुष्य सत्पथसे भ्रष्ट हो ही जाता है। इस पहली फूटके फलस्वरूप धीरे-धीरे कोई पाच सौ आदमियोने परवाने ले लिये। कुछ दिनोंतक परवाने देनेका काम निजी मकानोमे ही होता रहा, पर ज्यो-ज्यो लाजका बल घटता गया त्यों-त्यों इन पाच सौ आदमियोमे कितने ही खुले आम भी अपने नाम दर्ज करानेके लिए एशियाटिक दफ्तरमे जाने लगे।

: १८ :

## पहला सत्याग्रही कैदी

अथक प्रयत्न करनेपर भी जब एशियाटिक दफ्तरको ५०० से अधिक आदमी नाम दर्ज करानेवाले नहीं मिल सके तब उस महकमेके अफसरोंने निश्चय किया कि अब हमे किसी-न-किसीको गिरफ्तार करना चाहिए। पाठक जर्मिस्टन नगरका नाम जानते है। वहा बहुतसे हिंदुस्तानी वसते थे। उनमे पंडित रामसुंदर नामका एक आदमी था। वह देखनेमे वहादुर आदमी-सा लगता था और दांचाल था।



थोड़े-बहुत श्लोक भी याद थे। उत्तर भारतका रहनेवाला था, इसलिए रामायणके कुछ दोहे-चौपाइया तो उसे याद होने ही चाहिए। वह पंडित कहलाता था, इससे लोगोमें उसकी प्रतिष्ठा भी थी। उसने जगह-जगह भाषण दिये। अपने भाषणोमें वह खूब जोश उडेल सकता था। अतः वहाके कुछ विघ्नसतोषी भारतीयोंने एशियाटिक दफ्तरको सुझाया कि रामसुंदर पंडितको गिरफ्तार करलें तो जर्मिस्टनके वहुतसे हिंदुस्तानी परवाने ले लेंगे। उस विभागके अधिकारी रामसुंदर पंडितको पकडनेके लिए इस लोभके वश हुए बिना नहीं रह सके। रामसुंदर पंडित गिरफ्तार कर लिया गया। इस तरहका यह पहला ही मुकदमा था। इसलिए सरकार और भारतीय जनतामें भी इससे गहरी हलचल मची। जिस रामसुंदर पंडितको अबतक केवल जर्मिस्टन ही जानता था, उसको क्षणभरमें सारा दक्षिण अफ्रीका जानने लगा। जैसे किसी महान् पुरुषपर मुकदमा चल रहा हो और वह सबकी निगाह अपनी ओर खींच ले वैसे ही सबकी आंखे रामसुंदर पंडितपर लग गईं। शांति-रक्षाके लिए किसी प्रकारके प्रबन्धकी आवश्यकता सरकारको नहीं थी, फिर भी उसने वैसा बंदोबस्त भी कर लिया। अदालतमें भी यह मानकर रामसुंदरकी इज्जत की गई कि वह सामान्य अपराधी नहीं, बल्कि हिंदुस्तानी कौमका एक प्रतिनिधि है। अदालतका कमरा उत्सुक भारतीय दर्शकोसे भर गया था। रामसुंदरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा मिली। वह जोहान्सवर्गकी जेलमें रखा गया। उसके लिए यूरोपियन वार्डमें अलग कोठरी दी गई। उससे मिलने-जुलनेमें तनिक भी कठिनाई नहीं होती थी। बाहरसे खाना भेजनेकी इजाजत थी और भारतीय जनता नित्य उसके लिए सुंदर पकवान बनाकर भेजा करती। वह जिस चीजकी इच्छा करता वह

हाजिर कर दी जाती। जनताने उसका जेल-दिवस बड़ी धूम-धामसे मनाया। कोई हताश नहीं हुआ, बल्कि लोगोंका उत्साह और बढ़ा। जेल जानेको सैकड़ों तैयार थे। एग्जि-याटिक विभागवालोकी आशा फलीभूत नहीं हुई। जमिस्टनके भारतीय भी परवाना लेने नहीं गये। हिंदुस्तानी कौम ही नफेमें रही। महीना पूरा हुआ। रामसुंदर छूटा और बाजे-गाजेके साथ जुलूस बनाकर उसको सभाके लिए नियत स्थानपर ले गये। वहाँ उत्साह बढ़ानेवाले भाषण हुए। लोगोंने फूल-मालाओंसे रामसुन्दरको ढक दिया। स्वयंसेवकोंने उसके सम्मानमें दावत दी और सैकड़ों भारतीय यह सोचकर राम-सुंदर पंडितसे मीठी इंप्रिया करने लगे कि हम भी जेल गये होते तो कैसा अच्छा होता !

पर रामसुंदर खोटा सिक्का निकला। उसका बल झूठी सतीका-सा था। एक महीनेके पहले तो जेलसे निकला ही नहीं जा सकता था, क्योंकि उसकी गिरफ्तारी अचानक हुई थी। जेलमें तो उसने वह अमीरी की जो बाहर कभी मुयस्सर नहीं हुई थी। फिर भी स्वच्छद विचरनेवाला और व्यसनी मनुष्य जेलके एकांत-वास और अनेक प्रकारके भोजन मिलते रहनेपर भी वहाँ रखे जानेवाले संयमको सहन नहीं कर सकता। यही बात रामसुंदर पंडितकी हुई। भारतीय जनता और जेलके अमले उसकी इतनी खुशामद बजा रहे थे, फिर भी जेल उसको कड़वी लगी और उसने ट्रांसवाल और युद्ध दोनोंसे आखिरी सलामकर अपना रास्ता लिया। हर कौममें कुछ चतुर दाव-पेच जाननेवाले लोग तो होते ही हैं। यही बात हरएक संग्रामके विषयमें भी कही जा सकती है। लोग रामसुंदरके रग-रेशेसे वाकिफ थे। पर उससे भी कौमका कोई अर्थ सघ सकता है, यह सोचकर उन्होंने उसका गुप्त इतिहास, उसकी पोल खुलनेसे पहले, मुझपर

प्रकट नहीं होने दिया। पीछे मुझे मालूम हुआ कि रामसुंदर गिरमिटिया था जो अपना गिरमिट पूरा किये बिना भाग आया था। उसके गिरमिटिया होनेकी बात में यहाँ घृणासे नहीं लिख रहा हूँ। गिरमिटिया होना कोई ऐब नहीं। पाठक अंतमें देखेंगे कि जिनसे इस युद्धको अतिशय शोभा मिली वे गिरमिटिए ही थे। लडाई जीतनेमें भी उनका हिस्सा बढ़े-से-बड़ा था। हा, गिरमिटसे भाग निकलना अवश्य दोष था।

पर रामसुंदरका सारा इतिहास मैंने उसके दोष दिखानेके लिए नहीं लिखा है, बल्कि उसमें जो तत्त्व छिपा है उसे प्रकट करनेके लिए ही उसका समावेश किया है। हर एक शुद्ध संग्रामके नेताओंका फर्ज होता है कि केवल शुद्ध जनोको ही लडाईमें ले; पर कितनी ही सावधानी क्यों न रखी जाय, अशुद्ध मनुष्योंका प्रवेश रोका नहीं जा सकता। फिर भी नेता निडर और सच्चे हों तो अशुद्ध जनोके अनजानमें घुस आनेसे अंतमें लडाईको नुकसान नहीं पहुंचता। रामसुंदर पंडितका सच्चा रूप प्रकट हो गया तो उसकी कोई कीमत नहीं रही। वह बेचारा पंडित न रहकर केवल रामसुंदर रह गया। कौम उसको भूल गई, पर युद्धको तो उससे बल ही मिला। युद्धके निर्मित भोगी हुई कैंद बट्टेखाते नहीं गई। उसके जेल जानेसे जो शक्ति जगी वह कायम रही और उसके उदाहरणसे दूसरे कमजोर दिलवाले अपने आप लडाईके मैदानसे खिसक गये। ऐसी कमजोरीकी कुछ और मिसालें भी सामने आईं, पर उनका इतिहास मैं नाम-धाम-सहित नहीं देना चाहता। उसे देनेसे कोई अर्थ नहीं सध सकता। पर हा, कौमकी सबलता-निर्वलता पाठकोकी निगाहसे बाहर न रहे, इस दृष्टिसे इतना कह देना जरूरी है कि रामसुंदर अकेला ही रामसुंदर नहीं था; पर मैंने देखा कि सभी रामसुंदरोंने संग्रामकी सेवा ही की।

पाठक रामसुंदरके दोष न देखे । इस जगत्में मनुष्य-मात्र अपूर्ण है । किसीकी अपूर्णता अधिक देखनेमें आती है तो हम उसकी ओर उगली उठाते हैं । वस्तुतः यह मूल है । रामसुंदर कुछ जान-बूझकर निर्बल नहीं बना । मनुष्य अपने स्वभावकी दशा बदल सकता है, उसपर अंकुश रख सकता है; पर उसे जड़मूलसे कौन मेट सकता है ? जगत्-कर्ताने इतनी स्वतंत्रता उसको दी ही नहीं । बाघ अपनी खालकी विचित्रताको बदल सकता है तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रता बदल सकता है । भाग जानेपर भी रामसुंदरको अपनी कमजोरीपर कितना पश्चाताप हुआ होगा, यह हम कैसे जान सकते हैं ? अथवा उसका भाग जाना ही क्या उसके पश्चातापका एक सबल प्रमाण नहीं माना जा सकता ? वह बेशर्म होता तो उसे भागनेकी क्या जरूरत थी ? परवाना निकलवाकर खूनी कानूनके अनुसार वह सदा जेल-भुक्त रह सकता था । यहीं नहीं, वह चाहता तो एशियाटिक दफ्तरका दलाल बनकर दूसरोंको बहका सकता था और सरकारका प्रिय भी बन सकता था । हम यह उदार अर्थ क्यों न करे कि यह करनेके बदले अपनी कमजोरी कौमको दिखानेमें उसको शर्म लगी और उसने मुह छिपा लिया, और यह करके भी उसने कौमकी सेवा ही की ?

: १६ :

### ‘इंडियन ओपीनियन’

सत्याग्रहकी लड़ाईमें बाहरके और भीतरके जितने भी साधन अपने पास थे उन सबको मुझे पाठकोके सामने रखना है । इसलिए ‘इंडियन ओपीनियन’ नामका जो साप्ताहिक पत्र

दक्षिण अफ्रीकामे आज भी निकल रहा है उसका परिचय भी उन्हे करा देना जरूरी है। दक्षिण अफ्रीकामे पहला हिंदुस्तानी छापाखाना खोलनेका यश मदनजीत व्यावहारिक नामके गुजराती सज्जनको है। यह छापाखाना कुछ वरसोतक कठिनाइयोके बीच चलाते रहनेके बाद उन्होंने अखवार निकालनेका भी इरादा किया। इसमे उन्होंने स्व० मनसुखलाल नाजरकी और मेरी सलाह ली। अखवार डर्वनसे निकला, मनसुखलाल नाजर उसके अवैतनिक संपादक हुए। अखवारमें शुरूसे ही घाटा रहने लगा। अतमे यह निश्चय हुआ कि उसमे काम करनेवालोको हिस्सेदार या हिस्सेदार सरीखा बना ले, एक खेत खरीदकर उसमे उन लोगोको आवादा करे और वहीसे अखवार निकाले। यह खेत डर्बनसे १३ मीलके पासलेपर एक सुंदर पहाडीपर अवस्थित है। उसके पासका रेलवे स्टेशन खेतसे ३ मील दूर है। उसका नाम फिनिक्स है। अखवारका नाम शुरूसे ही 'इंडियन ओपीनियन' है। एक समय वह अग्रेजी, गुजराती, तामिल और हिंदी इन चार भाषाओमें निकलता था। तामिल और हिंदीका बोझ हरे तरह भारी लगता था। ऐसे तामिल और हिंदी लेखक नहीं मिलते थे जो खेतपर रहनेको तैयार हों और उनके लेखोपर नियंत्रण भी नहीं रखा जा सकता था। इससे ये विभाग बंद कर दिये गये और अग्रेजी तथा गुजराती विभाग चालू रखे गये। सत्याग्रहकी लड़ाई जब शुरू हुई उस वक्त वह इसी रूपमें निकल रहा था। इस सस्थामें बसनेवालोमे गुजराती, हिंदुस्तानी, तामिल, अग्रेज सभी थे। मनसुखलाल नाजरकी अकाल मृत्युके बाद एक अग्रेज मित्र हर्बर्ट किचन संपादक हुए। अनन्तर हेनरी एस० एल० पोलक संपादक हुए और अनेक वर्षोतक यह भार उठाये रहे। मेरे और उनके कारावास-कालमे भले पादरी स्वर्गीय जोसफ डोकने भी कुछ दिनोतक

संपादकका काम सम्हाला। इस अखबारके जरिये हर हफ्ते कौमको हफ्तेकी सारी खबरे देनेका काम मलीभाति हो सकता था। अंग्रेजी विभागके द्वारा गुजराती न जानने-वाले हिन्दुस्तानियोंको लड़ाईकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती रहती और हिदुस्तान, इंग्लैंड और दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेजोंके लिए तो ‘इंडियन ओपीनियन’ साप्ताहिक समाचारपत्रका काम देता। मैं मानता हूँ कि जिस युद्धका मुख्य आधार आंतरिक बल हो वह अखबारके बिना लड़ा जा सकता है। पर इसके साथ-साथ मेरा यह भी अनुभव है कि ‘इंडियन-ओपीनियन’ के कारण हमें जो सुभीते मिले थे, जो शिक्षा कौमको सहज ही मिल सकती थी, जो खबरे दुनियामे जहां-जहां हिदुस्तानी बसते थे वहां-वहां फैलाई जा सकती थीं, वह शायद दूसरी तरहसे नहीं हो सकता था। इसलिए इतना तो पक्के तौरपर कहा जा सकता है कि लड़ाई लड़नेके साधनोंमें ‘इंडियन ओपीनियन’ भी एक बड़ा उपयोगी और प्रबल साधन था।

युद्धकी प्रगतिके साथ-साथ और अनुभव प्राप्त करते-करते जैसे-जैसे कौममे अनेक परिवर्तन हुए, वैसे ही ‘इंडियन ओपीनियन’ मे भी हुए। इस अखबारमे पहले विज्ञापन और बाहरकी फुटकर छपाईके काम भी लिये जाते थे। मैंने देखा कि इन दोनों कामोंमे अपने अच्छे-से-अच्छे आदमियोंको लगना पड़ता था। विज्ञापन लेने ही हों तो कौन-से लिये जायं और कौन-से न लिये जाय इसको तै करनेमे सदा घर्म-संकट उपस्थित होता था। फिर कोई विशेष विज्ञापन न लेनेका विचार हो फिर भी उसे भेजनेवाला जातिका कोई मुखिया हो तो उसका दिल दुखनेके डरसे भी न लेने योग्य विज्ञापन लेनेके लोभमें फसना पड़ता। विज्ञापन प्राप्त करने और उसके पैसे बसूल करनेमे हमारे अच्छे-से-अच्छे आदमियोंका वक्त जाता, खुशामद

करनी होती वह अलग । इसके साथ-साथ यह बात भी सोची गई कि अगर यह अखबार पैसा कमानेकी गरजसे नहीं, बल्कि कौमकी सेवाके उद्देश्यसे ही चलाया जा रहा हो तो यह सेवा जवर्दस्ती नहीं होनी चाहिए । कौम चाहे तभी होनी चाहिए । और कौमकी इच्छाका पक्का प्रमाण तो यही माना जा सकता था कि वह आवश्यक संख्यामें ग्राहक होकर उसका खर्च उठा ले । फिर हमने यह भी सोचा कि अखबार चलानेके लिए महीनेका खर्च निकालनेमें थोड़ेसे व्यापारियोंको सेवाभावके नामपर अपने विज्ञापन देनेको समझानेसे कौमके आम लोगोंको अखबार खरीदनेका कर्तव्य समझाना लुभानेवाले और लुब्ध होनेवाले दोनोंकेलिए कैसी सुंदर शिक्षा होगी । यह निश्चय हुआ और तुरत काममें लाया गया । फल यह हुआ कि जो लोग अबतक विज्ञापन आदिके भ्रमेलेमें उलझे हुए थे वे अब अखबारको सुंदर बनानेकी कोशिशमें लगे । कौम तुरत समझ गई कि 'इंडियन ओपीनियन'की मालिकी और उसे चलानेकी जिम्मेदारी दोनों उसी की है । हम सब काम करनेवाले निश्चित हो गये । हमें बस इतनी चिंता करनी रही कि कौम अखबार मागे तो पूरी-पूरी मेहनत करदे और छुट्टी पाए । और अब हर हिंदुस्तानीकी बाह पकड़कर उससे 'इंडियन ओपीनियन' लेनेको कहनेमें शर्म नहीं रही, बल्कि यह कहना हम अपना धर्म समझने लगे । 'इंडियन ओपीनियन' का आंतरिक बल और स्वरूप भी बदला और वह एक महाशक्ति बन गया । उसकी साधारण ग्राहक-संख्या १२००-१५०० तक थी । वह दिन-दिन बढ़ने लगी । उसका चंदा बढ़ाना पडा था, फिर भी जब युद्धने उग्र रूप ग्रहण किया तब ग्राहक इतने बढ़ गये कि ३५०० प्रतियांतक छापनी पड़ती । 'इंडियन ओपीनियन' का पाठक-वर्ग अधिक-से-अधिक २० हजार माना जा सकता है । उनमें ३ हजारसे अधिक प्रतियांतका

खपना आश्चर्यजनक विस्तार कहा जा सकता है। कौमने इस वक्तव्यो इस अखबारको इतना अपना लिया था कि बंधे वक्तपर उसकी प्रतियां जोहान्सवर्ग न पहुंच जाती तो मुझपर शिकायतीकी झड़ी लग जाती। आमतौरसे वह इतवारको सबेरे जोहान्सवर्ग पहुंच जाता। मैं जानता हूँ कि अखबार आनेपर बहुतसे लोगोका पहला काम उसका गुजराती भाग आदिसे अततक वांच जाना होता था। एक आदमी पढ़ता और उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए दस-बीस लोग सुनते। हम लोग गरीब ठहरे! इसलिए कितने ही लोग साम्ने भी अखबार मगाते।

छापेखानेमे बाहरका काम न लेनेके वारेमे भी मैं लिख आया हू। उसे बंद करनेके कारण भी प्राय. वही थे जो विज्ञापन बंद कर देनेके थे। और उसे बंद कर देनेसे कंपोज करनेवालोका जो वक्त बचा उसका उपयोग हमने छापेखानेसे पुस्तके प्रकाशित करनेमे किया। कौमको मालूम था कि इस काममे भी हमारा उद्देश्य पैसा कमाना नहीं था और पुस्तके चूकि संप्राममे सहायता देनेके उद्देश्यसे ही छापी जाती थीं, इसलिए उनकी खपत भी अच्छी होने लगी। इस प्रकार अखबार और छापेखाना दोनोने युद्धमें अपना भाग अर्पण किया और सत्याग्रहकी जड़ ज्यों-ज्यों कौममे गहरी होती गई त्यों-त्यों अखबार और छापेखानेकी सत्याग्रहकी दृष्टिसे नैतिक प्रगति भी होती गई, यह बात साफ तौरसे दिखाई दे सकती थी।

: २० :

पकड़-धकड़

• हम यह देख चुके कि रामसुंदरकी गिरफ्तारी सरकारके



लिए मददगार नहीं साबित हुई। दूसरी ओर अधिकारियोने यह भी देखा कि कौम वडे जोशके साथ एकदिल होकर आगे बढ़ रही है। 'इंडियन ओपीनियन' के लेख तो एशियाटिक महकमेके अधिकारी ध्यानपूर्वक पढते ही थे। लडाईसे संवध रखनेवाली कोई भी बात छिपाई तो जाती ही नहीं थी। कौमकी निर्वलता-सबलता सभी शत्रु-मित्र-उदासीन जो कोई भी देखना चाहे इस अखबारमे देख सकता था। काम करनेवाले शुरूसे ही यह सीख गये थे कि जिस लडाईमे बुरा करनेको कुछ है ही नहीं, जिसमे फरेब और चालाकीके लिए जगह ही नहीं और जिसमें बल हो तभी विजय हो सकती है, उसमे छिपा रखनेको कुछ हो ही नहीं सकेगा। कौमके स्वार्थका ही यह आदेश था कि निर्वलता रूपी रोगको निर्मूल करना हो तो निर्वलताकी परीक्षा करके उसे समुचित रूपमे प्रकट करना चाहिए। अधिकारियोने जब देखा कि 'इंडियन ओपीनियन' इसी नीतिसे चल रहा है तब उनके लिए वह हिंदुस्तानी कौमके वर्तमान इतिहासका दर्पण रूप हो गया और इससे उन्होने सोचा कि जबतक हम कुछ खास नेताओको न पकडे, लडाईका बल टटनेका नहीं। अत. १९०७ के दिसबर, बडे दिनके हफ्तेमे, कुछ नेताओको अदालतमे हाजिर होनेका नोटिस मिला। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि यह नोटिस तामील करानेमे अधिकारियोने सभ्यताका व्यवहार किया। वे चाहते तो नेताओको बारटसे गिरफ्तार कर सकते थे। इसके बदले उन्होने हाजिर होनेका नोटिस देकर सभ्यताके साथ-साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि नेता अपने आपको गिरफ्तार करानेको तैयार हैं। जिन लोगोको नोटिस मिला था वे नियत तिथि अर्थात् शनिवार २२ दिसबरको अदालतमे हाजिर हुए। नोटिसमे लिखा था कि कानूनके अनुसार तुम्हे परवाना लेना चाहिए था, वह तुमने नहीं लिया।

अतः कारण बताओ कि तुम्हें एक विशेष अधिक अदर ट्रासवाल छोड़ देनेका हुक्म क्यों न दिया जाय ?

इन लोगोमें क्विन नामका चीनी भी था जो जोहान्स-वर्गमें बसनेवाले चीनियोका मुखिया था। जोहान्सवर्गमें उनकी आबादी ३-४ सौ व्यक्तियोंकी होगी। वे सभी व्यापार या छोटी-मोटी खेतीका घघा करते थे। हिंदुस्तान खेतीके लिए मशहूर मुल्क हैं। पर मैं मानता हू कि चीनके लोग इस धंधेमें जितना आगे बढ़ गये हैं वहातक हम नहीं पहुंच पाये हैं। अमरीका आदि देशोंमें खेतीकी जो आधुनिक प्रगति हुई है उसका वर्णन नहीं हो सकता। पर पश्चिमकी खेतीको मैं अभी प्रयोग रूप ही मानता हू। परंतु चीन तो हमारे देश जैसा ही प्राचीन देश है और वहा पुराने जमानेसे ही इस कलाका विकास किया गया है। इससे चीन और हिंदुस्तानकी तुलना करके हम कुछ सीख सकते हैं। जोहान्सवर्गके चीनियोंकी खेती देखकर और उनकी बातें सुनकर मुझे तो यही जान पडा कि चीनियोका ज्ञान और उद्यम हमसे बहुत बढ़ा-चढा है। जिस जमीनको हम पढती मानकर उसका कोई उपयोग नहीं करते, चीनी उसमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी जमीनके अपने सूक्ष्म ज्ञानकी बदौलत अच्छी फसल उपजा सकते हैं।

यह उद्योगी और चतुर जाति भी खूनी कानूनकी श्रेणीमें आती थी। इससे उसने सत्याग्रहकी लड़ाईमें भारतीयोका साथ देना मुनासिब समझा। पर यह होते हुए भी दोनोंके सारे काम-काज आदिसे अततक विलकुल अलग रहे। दोनों अपनी-अपनी सस्थाओके जरिये लड़ रहे थे। इसका शुभ फल यह होता है कि जबतक दोनो क्रौमें अपने निश्चयपर अटल रहती हैं तबतक दोनोंका लाभ होता है; पर अगर एक गिर भी जाय तो दूसरेका कोई नुकसान पहुंचनेका

कारण नहीं रहता । गिरनेका तो रहता ही नहीं । अतमें बहुत-से चीनी फिसल गये, क्योंकि उनके नेताने उन्हें दगा दिया । उसने खूनी कानूनके सामने घुटने तो नहीं टेके, पर एक दिन किसीने मुझे खबर दी कि वह बिना हिसाब-किताब दिये भाग गया । सरदारके चल देनेपर अनुयायियोंका टिका रहना सदा ही कठिन होता है । फिर उसमें कोई मलिनता देखनेमें आये तब तो दूना नैराश्य उत्पन्न होता है । पर जब पकड़-बकड़ शुरू हुई उस वक्त तो चीनियोंका जोश खूब बढ़ा हुआ था । उनमेंसे गायद ही किसीने परवाना लिया हो । इससे जैसे भारतीय नेता गिरफ्तार किये गये वैसे ही चीनियोंके कर्ता-धर्ता श्री क्विन भी पकड़े गये । कुछ दिनोंतक तो कह सकते हैं कि उन्होंने बहुत अच्छा काम किया ।

गिरफ्तार किये गये लोगोंमें जिस दूसरे नेताका परिचय यहाँ देना चाहता हूँ वह है थम्बी नायडू । थम्बी नायडू तामिल थे । उनका जन्म मोरीशसमें हुआ था । पर माँ-बाप मद्रास इलाकेसे आजीविकाके लिए वहाँ गये थे । थम्बी नायडू सामान्य व्यापारी थे, स्कूलकी पढाई एक तरहसे कुछ भी न थी, पर अनुभव-ज्ञान ऊँचे प्रकारका था । अंग्रेजी बहुत अच्छी बोल-लिख सकते थे, यद्यपि भाषाशास्त्रकी दृष्टिसे उसमें दोष दिखाई देते थे । तामिलका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था । हिंदुस्तानी भी अच्छी तरह समझ और बोल लेते थे । तेलगु भी काफी जानते थे, पर हिंदी या तेलगु लिपि विलकुल नहीं जानते थे । मोरीशसकी भाषाका भी, जिसे श्रीओल कहते हैं और जो फ्रेचका अपभ्रंश कही जा सकती है, थम्बी नायडूको बहुत अच्छा ज्ञान था । दक्षिणके भारतीयोंमें इतनी भाषाओंका कामचलाऊ ज्ञान होना अपवादरूप नहीं था । दक्षिण अफ्रीकामें सैकड़ों हिंदुस्तानी मिलेंगे जिन्हें इन सभी भाषाओंका सामान्य ज्ञान

है। इन सबके साथ हवशी भाषाका ज्ञान तो उन्हें होता ही है। इन सारी भाषाओंका ज्ञान उन्हें अनायास हो जाता है और हो सकता है। इसका कारण मुझे तो यही दिखाई दिया कि पर-भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करके उनका दिमाग थक नहीं गया था। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है और उन भाषाओंके बोलनेवालोंके साथ बात-चीत और अवलोकन करके ही वे विविध भाषाओंका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। इसमें उनके दिमागको बहुत श्रम नहीं करना पड़ता, पर दिमागकी इस हलकी कसरतसे उनकी वृद्धि स्वाभाविक रीतिसे खिल उठती है। यही बात थबी नायडकी भी थी। उनकी वृद्धि बहुत तीव्र थी। नये-नये मसलोंको झट समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी देखकर तो लोग दंग रह जाते थे। हिंदुस्तानके उन्होंने दर्शन नहीं किये थे, फिर भी उसपर उनका अगाध प्रेम था। स्वदेशाभिमान उनकी नस-नसमें भर रहा था। उनकी दृढ़ता उनके चेहरेपर चित्रित थी। उनके शरीरकी गठन बड़ी मजबूत और कसी हुई थी। मेहनत करते थकना जानते ही नहीं थे। कुरसीपर बैठकर नेतृत्व करना हो तो इस पदको भी सुशोभित कर सकते थे और इतनी ही स्वाभाविक रीतिसे मोटियेका काम भी कर सकते थे। सरेआम बोझ उठाकर चलते बह तनिक भी नहीं शरमाते थे। मेहनत करनी हो तो रात-दिनका भेद नहीं जानते थे और कौमके लिये सर्वस्व होमनेमें हरएकके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकते थे। अगर थबी नायड हृदसे ज्यादा साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो आज यह वीर पुरुष काछलियाकी अनुपस्थितिमें ट्रांसवालमें कौमके नेताकी जगह सहज ही ले सकता था। जबतक ट्रांसवालकी लड़ाई चलती रही, उनके क्रोधका विपरीत परिणाम नहीं हो सका और उनमें जो अमूल्य गुण थे वे रत्नकी भांति चमक रहे थे। पर पीछे मुझे मालूम हुआ कि

उनका क्रोध और साहसिकता (rashness) उनके प्रबल वज्र सिद्ध हुए और उन्होंने उनके गुणोंको ढक दिया। कुछ भी हो, दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-सभामें थवी नायडूका नाम सदा प्रथम वर्गमें रहेगा।

हम सबको अदालतमें साथ ही हाजिर होना था; पर सबके मुकदमें अलग-अलग चलाये गये। मजिस्ट्रेटने कुछ अभियुक्तोंको ७ या १४ दिनोंके अदर और बाकी सबको ४८ घण्टेके अदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। आज्ञाकी अवधि १९०८की १० वीं जनवरीको पूरी होती थी। उसी दिन सजा सुनानेकेलिए हमें अदालतमें हाजिर होनेका हुक्म मिला। हममेंसे किसीको कोई बचाव तो करना नहीं था। सबको यह स्वीकार करना था कि हमने कानूनके अनुसार परवाने नहीं लिये हैं और इस कारण मजिस्ट्रेटने जो हमें निर्दिष्ट अवधिके भीतर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया है उसका सविनय अनादर करनेका अपराध हमने किया है।

मैंने अदालतसे छोटा-सा वयान देनेकी इजाजत माँगी और वह मिल गई। मैंने इस आशयका वयान दिया—‘मेरे और मेरे वाद सुने जाने वाले मुकदमोंमें भेद किया जाना चाहिए। मुझे अभी-अभी प्रिटोरियासे खबर मिली है कि वहाँ मेरे देश-बंधुओंको तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली है और भारी जुर्माना भी किया गया है, जो अदा न किया गया तो तीन महीनेकी कड़ी कैद और भुगतनी होगी। इन लोगोंने अगर अपराध किया है तो मैंने और बड़ा अपराध किया है। अतः मजिस्ट्रेटसे मेरी प्रार्थना है कि वह मुझे बड़ी-से-बड़ी सजा दें।’ पर मजिस्ट्रेटने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और मुझे दो महीनेकी सादी कैदकी सजा दी। जिस अदालतमें मैं सकड़ो वार वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ, वकील-मडलीके साथ बैठता था उसमें आज मुलजिमके कटघरेमें खड़ा हूँ, यह

विचार कुछ विचित्र अवश्य लगा, पर इतना तो मुझे अच्छी तरह याद है कि वकील-मडलकी बैठकमें बैठनेमें जो कुछ सम्मान मैंने माना होगा, अभियुक्तके पीजड़ेमें खड़े होनेमें उससे कहीं अधिक सम्मान समझा। उसमें प्रवेण करनेमें लेशमात्र भी क्षोभ मेरे मनमें हुआ, यह मुझे याद नहीं आता। अदालतमें तो सैकड़ों हिंदुस्तानी भाइयों, वकीलों, मित्रों आदिके सामने मैं खड़ा था। ज्योही सजा सुनाई गई, सिपाही मुझे, कैदियोंको बाहर ले जानेके दरवाजेसे उस जगह ले गया, जहाँ कैदी पहले रखे जाते हैं।

उस वक्त मुझे अपने आस-पास सब कुछ धून्य, निस्तब्ध दिखाई दिया। कैदियोंके बैठनेके लिए एक वेच पड़ी थी। उसपर बैठनेको कहकर और दरवाजा बंद करके पुलिस कर्मचारी चलता बना। यहाँ मुझे ओस अवश्य हुआ। मैं गहरे विचारमें डूब गया। कहाँ है घर-द्वार! कहाँ है 'वकालत' कहाँ है सभाएँ! यह सब क्या स्वप्नवत् था और आज मैं कैदी हूँ! दो महीनेमें क्या होगा? दो महीने पूरे काटनेही होंगे? लोग अपने वचनके अनुसार जेल चले आए तो दो महीने क्यों बिताने पड़ेगे? पर वैन आएँ तो दो महीने कैसे पहाड़से हो जाएंगे? इन विचारोंको लिखनेमें जितना समय लग रहा है उसका सौवा हिस्सा भी दिमागमें इन और ऐसे अन्य विचारोंके आनेमें नहीं लगा। ये विचार ज्योही मनमें आये, मैं लज्जित हुआ। यह कितना बड़ा मिथ्या-भिमान है! मैं तो जेलको महल मनवानेवाला हूँ! खुनी कानूनका सामना करते हुए जो कुछ सहन करना पड़े उसे दुःख नहीं। वल्कि सुख मानना चाहिए। उसका सामना करते हुए जान-माल सब अर्पण कर देना पड़े तो इसे तो सत्याग्रहमें बड़ा आनंद मानना चाहिए। यह सारा ज्ञान आज कहाँ चला गया? ये विचार मनमें आते ही मैं फिर होशमें आया

और अपनी मूर्खतापर हसने लगा। दूसरे भाइयोंको कैसी कैद मिलेगी? क्या उन्हें भी मेरे साथ ही रखेंगे? इन व्यावहारिक विचारोंमें अब मैं उलझ गया। मैं इस उधेड़-बुनमें पड़ा था कि इतनेमें दरवाजा खुला और एक पुलिस कर्मचारीने मुझे अपने पीछे आनेका हुक्म दिया। मैं चला तो उसने मुझे आगे कर दिया और खुद पीछे हो लिया। वह मुझे जेलकी जगलेदार गाड़ीके सामने ले गया और उसमें बैठ जानेको कहा। मुझे जोहान्सवर्गके जेलखानेकी ओर ले गये।

जेलमें ले जानेके बाद मेरे कपड़े उतरवाये गये। मुझे मालूम था कि जेलमें कैदियोंको नगा कर दिया जाता है। हम सबने निश्चय कर लिया था कि जेलके कायदे जहातक व्यक्तिगत अपमान करनेवाले या धर्म विरुद्ध न हो वहांतक उनका इच्छा-पूर्वक पालन करेगे। इसे हमने सत्याग्रहीका धर्म माना था। जो कपड़े मुझे पहननेको मिले वे बहुत मले थे। उन्हें पहनना तनिक भी नहीं रुचा। उन्हें पहनते और मनको इसके लिए झुकाते दुःख हुआ। पर यह सोचकर मनको दबाया कि थोड़ा मेल बर्दाश्त करना ही होगा। नाम-धाम लिखकर मुझे एक बड़े कमरेमें ले गये। वहां कुछ ही देर रहा हूंगा कि मेरे साथी भी हसते-बोलते आ पहुँचें और उनका मुकदमा कैसे चला और क्या हुआ यह सब कह सुनाया। मैं इतना जान सका कि मेरा मुकदमा हो जानेके बाद लोगोंने काले भूँडे हाथमें लेकर जुलूस निकाला। कुछ लोग उत्तेजित भी हो गये। पुलिसने देखल दिया और कुछ लोगोपर मार भी पड़ी। हम सब एक ही जेलमें और एक ही बड़ी कोठरीमें रखे गये, इससे हम बहुत प्रसन्न हुए।

कोई छ वजे हमारा दरवाजा बंद कर दिया गया। वहाँकी जेलोंकी कोठरियोंके दरवाजोमें छडे वगैरह नहीं होती। बहुत ऊँचाईपर दीवारमें एक छोटा झरोखा हवाके लिए रखा जाता है।

अतः हमें जान पड़ा, जैसे हम सबूकमें बंद कर दिये गये हैं । पाठक देखेंगे कि जो आदर-सत्कार जेल-अधिकारियोंने राम-सुंदरका किया था वैसा कुछ हमारा नहीं किया । इसमें कोई अचरजकी बात नहीं । रामसुंदर पहला सत्याग्रही कैदी था । इसलिए उसके साथ किस तरह बर्ताव किया जाय, अधिकारी इसे पूरी तरह समझ भी नहीं पाये थे । हमारी तादाद तो शुरूसे ही ख़ासी थी और दूसरोको भी गिरफ्तार करनेका इरादा तो था ही । इसलिए हम हवशी बाडमें रखे गये । दक्षिण अफ्रीकामे कैदियोंके दो ही विभाग होते हैं—गोरे और काले । और हम हिंदुस्तानी कैदियोंकी गिनती भी हवशी विभागमें ही होती है । मेरे साथियोंको भी मेरी जितनी ही और सादी कैदकी सजा हुई थी ।

सवेरा होनेपर हमें मालूम हुआ कि सादी कैदवालोको अपने निजके कपड़े पहननेका अधिकार होता है और वे उसे न पहनना चाहे तो सादी कैद वालोंके लिए जो खास पोशाक होती है वह दी जाती है । हमने तै कर लिया था कि घरके कपड़े पहनना अयोग्य है और जेलके ही कपड़े पहनना हमें मुनासिब होगा । हमने अधिकारियोंको यह बताना दिया । इससे हमें सादी कैदवाले हवशी कैदियोंका पहनावा दिया गया । पर सादी कैदवाले सैकड़ों हवशी कैदी दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमें होते ही नहीं । अतः जब दूसरे सादी कैदवाले हिंदुस्तानी पहचने लगे तो सादी कैदवाले कपड़े जेलमें चुक गये । हमें इस बारेमें तो कोई तक़रार करनी थी ही नहीं, इसलिए हमने मशक़तवाले कैदियोंके कपड़े पहननेमें आनाकानी नहीं की । कुछ लोग जो पीछे आये उन्होंने ये कपड़े पहननेके बदले अपने ही कपड़े पहने रहना पसंद किया । यह मुझे ठीक तो नहीं लगा, पर इस विषयमें आग्रह करना मुनासिब नहीं मालूम हुआ ।



दूसरे या तीसरे दिनसे ही सत्याग्रही कैदी जेलमें भरने लगे । वे जानबूझकर गिरफ्तार होते थे । उनमें अधिकांश फेरी करनेवाले ही थे । दक्षिण अफ्रीकामें हरएक फेरी करनेवालेको, वह गौरा हो या काला, फेरी करनेका परवाना लेना पड़ता है । उसे हर वक्त अपने पास रखना होता है और पुलिस जब मागे तब दिखाना होता है । बहुत करके रोज ही कोई-न-कोई पुलिस कर्मचारी परवाना मांगा ही करता है और जो न दिखाये उसे गिरफ्तार कर लेता है । हमारी गिरफ्तारीके बाद कौमने जेलको भर देनेका निश्चय किया था । फेरीवाले इसमें आगे बढ़े । उनके लिए गिरफ्तार होना आसान भी था । फेरीका परवाना नहीं दिखाया और गिरफ्तार हुए । जो गिरफ्तार होकर एक हफ्तेके अंदर १०० से ऊपर सत्याग्रही कैदी हो गये । और थोड़े बहुत तो आते ही रहते, इसलिए हमें तो एक तरहसे बिना अखबारके ही अखबार मिल जाता । रोजकी खबरे ये भाई लाया करते । जब सत्याग्रही बड़ी तादादमें गिरफ्तार होने लगे तब मजिस्ट्रेट या तो थक गया था, जैसा कि हम मानते थे, सरकारसे उसे आदेश मिला कि सत्याग्रहियोंको आगेसे सादी कैद दी ही न जाय, मशक्कतवाली कैदकी ही सजा दी जाय । कारण कुछ भी हो, पर अब सत्याग्रहियोंको कड़ी कैदकी ही सजा मिलने लगी । मुझे तो आज भी जान पड़ता है कि कौमका अनुमान सही था, क्योंकि शुरूके मुकदमोंमें जो सादी कैदकी सजाए दी गईं उसके बाद इसी वक्तकी लड़ाईमें और पीछे समय-समयपर जो और लड़ाइयां लड़ी गईं उनमें कभी पुरुष क्या, स्त्रियोंको भी सादी कैदकी सजा ट्रांसवाल या नेटालकी एक भी अदालतमें नहीं सुनाई गईं । जबतक सबको एक ही तरहकी हिदायत या हुक्म न मिला हो तबतक हरएक मजिस्ट्रेटका हर बार हर पुरुष और स्त्रीको मशक्कतवाली ही सजा देना

अगर आकस्मिक सयोग मात्र हो तो यह चमत्कार-सा माना जायगा ।

इस जेलमे सादी कैदवाले कैदियोंको भोजनमे सवेरे मकई-की लपसी मिलती थी । उसमे नमक नहीं होता था, पर हर कैदीको अलगसे थोडा नमक दिया जाता था । दोपहरको बारह बजे पाव भर भात, थोडा नमक और आधी छटांक घी और पाव भर डबल रोटी दी जाती थी । शामको फिर मकईके आटेकी लपसी और उसके साथ थोड़ी तरकारी, मुख्यत आलू दिया जाता था । आलू छोटे हो तो दो और बड़े हो तो एक दिया जाता था । इस खुराकसे किसीका पेट नहीं भरता । चावल गीला पकाया जाता था । वहाके डाक्टरसे हमने कुछ मसाला मागा । उन्हे बताया कि हिंदुस्तानकी जेलोमे भी मसाला मिलता है । “यह हिंदुस्तान नहीं है और कैदीके लिए स्वाद होता ही नहीं । इसलिए मसाला भी नहीं हो सकता ।” यह दोटूक जवाब मिला । हमने दालकी मांग की, क्योंकि उपर्युक्त आहारमे मासपेशी या पट्ठे बनानेका गुण नहीं था । डाक्टरने जवाब दिया—“कैदियोंको डाक्टरी दलील नहीं देनी चाहिए । पट्ठे बनानेवाली खुराक आप लोगोंकी दी जाती है, क्योंकि हफ्तेमे दो बार मक्कके बदलेमे उबली हुई मटर दी जाती है ।” मनुष्यका जठर यों हफ्तेमे या पखवाडेमे भिन्न-भिन्न गुणोवाला आहार भिन्न-भिन्न समयपर लेकर उसके सत्वको खींच ले सके तो डाक्टरकी दलील सही थी । बात यह थी कि डाक्टरका इरादा किसी तरह हमारे अनुकूल होनेका था ही नहीं । सुर्पास्टेडेटने हमारी यह मांग मजूर कर ली कि अपना खाना हम खुद पका लिया करे । थंवी नायडूको हमने अपना पाक-शास्त्री चुना । रसोईमे उसको बहुत भगडा करना पड़ता । शाक-भाजी तौलमे कम मिले तो वह पूरी मांगता । यही बात दूसरी चीजोके बारेमे भी थी । केवल दोपहरका खाना

पकाना ही हमारे जिम्मे किया गया था। वह हमारे हाथमें आनेके बाद हम अपना भोजन कुछ संतोषपूर्वक करने लगे।

पर ये सुभीते मिले, या न मिले, हर हालमें प्रसन्नतापूर्वक जेलकी सजा भोगनी है, इस निश्चयसे इस मडलीमेसे कोई भी नहीं डिगा। सत्याग्रही कैदियोंकी सख्या बढ़ते-बढ़ते १५० से ऊपर हो गई थी। हम सब सादी कैदवाले थे, इसलिए अपनी कोठरी वगैरह साफ करनेके सिवा हमारे लिये और कोई काम नहीं था। हमने काम मांगा। सुपरिंटेंडेण्टने जवाब दिया—“मैं आप लोगोंको काम दू तो माना जायगा कि मैंने अपराध किया। इससे मैं लाचार हू। सफाई आदि करनेमें आप जितना पसंद करे उतना वक्त लगा सकते हैं।” हमने ड्रिल (कवायद) आदि किसी तरहकी कसरतकी मांग की, क्योंकि मशक्कतवाले हबशी कैदियोंसे भी ड्रिल कराई जाती थी। जवाब मिला—“आपके रखवाले (गार्डर) के पास वक्त हो और वह आपको कसरत कराये तो मैं एतराज नहीं करूंगा। पर उसे कराना मैं उसका फर्ज नहीं बना सकता।” रखवाला बड़ा भलामानस था। उसे तो इतनी इजाजत भरकी दरकार थी। उसने बड़ी दिलचस्पीके साथ हमें रोज सवेरेकी ड्रिल कराना शुरू किया। यह हम अपनी कोठरीके छोटे-से आगनमें ही कर सकते थे। इसलिए हमें तो चक्कर-सा काटना होता था। यह भला रखवाला जिस तरह सिखा जाता उसी तरह नवाबखा नामके एक पठान भाई उसे जारी रखते और क्वायदके अंग्रेजी शब्दोका उर्दू उच्चारण करके हमें हसा देते। ‘स्टेड ऐट ईज’ का वह ‘सडलीज’ कहते। कुछ दिनोतक तो हम समझ ही न सके कि यह कौनसा हिंदुस्तानी शब्द है। बादमें सूझा कि यह तो नवाबखानी अंग्रेजी है।

: २१ :

## पहला समझौता

इस तरह जेलमें एक पखवाड़ा बीता होगा कि नये आने-वाले यह खबर लाने लगे कि सरकारके साथ समझौतेकी कुछ बातचीत चल रही है। दो-तीन दिन बाद जोहान्सबर्गके 'ट्रासवाल लीडर' नामक अंग्रेजी दैनिकके संपादक अलबर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये। जोहान्सबर्गसे उन दिनों जितने दैनिक निकलते थे, सबका स्वामित्व सोनेकी खानवाले किसी-न-किसी गोरेके हाथमें था; पर जो उनके विशेष स्वार्थके विषय न हो उन सभी प्रश्नोंपर संपादक अपने स्वतंत्र-विचार प्रकट कर सकता था। इन अखबारोंके संपादक विद्वान और विख्यात पुरुष ही चुने जाते थे। जैसे 'स्टार' नामके दैनिकके संपादक किसी वक्त लार्ड मिलनरके प्राइवेट सेक्रेटरी थे और 'स्टार'से 'टाइम्स'के संपादक मि० बकलकी जगह लेने विलायत गये। मि० अलबर्ट कार्टराइट बुद्धिमान होनेके साथ-साथ अतिशय उदार हृदयके थे। आमतौरसे वह सदा अपने अग्र लेखोंमें भी भारतीयोंके पक्षका समर्थन करते थे। उनके और मेरे बीच गहरा स्नेह हो गया था। मेरे जेल जानेके बाद वह जनरल स्मट्ससे मिल आये थे। जनरल स्मट्सने उन्हें सधिकर्ता मंजूर कर लिया था। भारतीय नेताओंसे भी वह मिले। नेताओंने उन्हें एक ही जवाब दिया— "कानूनी नुक्तोंको हम नहीं समझ पाते। गांधी जेलमें हैं और हम समझौतेकी बातचीत करें, यह नहीं हो सकता। हम समझौता चाहते हैं; पर सरकार चाहती हो कि हमारे आदमी जेलमें बंद रहें और समझौता हो जाय तो आपको गांधीसे मिलना चाहिए। वह जो करेगे वह हमें मंजूर होगा।"

इसपर अलवर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये और अपने साथ जनरल स्मट्सका बनाया हुआ या पसद किया हुआ समझौतेका मसविदा भी ले आये। उसकी भाषा गोल-मटोल थी। वह मुझे नहीं खी। फिर भी एक परिवर्तनके साथ उस मसविदेपर दस्तखत करनेको मैं खुद तैयार था। पर मैंने उन्हें बताया कि बाहरवालोकी इजाजत होनेपर भी जेलके अपने साथियोंकी राय लिये बिना मैं हस्ताक्षर नहीं कर सकता। इस मसविदेका मतलब यह था कि हिंदुस्तानी अपने परवाने स्वेच्छासे बदलवा ले। उनपर किसी कानूनका प्रयोग-नहीं हो सके, नये परवानेका रूप सरकार भारतीयोंके साथ मशविरा करके तै करे और भारतीय जनताका बड़ा भाग स्वेच्छासे परवाना ले ले तो सरकार खूनी कानूनको रद्द कर देगी और अपनी खुशीसे लिए हुए परवानेको वाकायदा मान लेनेके लिए एक नया कानून पास करेगी। खूनी कानून रद्द करनेकी बात इस मसविदेमें स्पष्ट नहीं थी। मेरी दृष्टिसे उसे स्पष्ट करनेके लिए जो सुधार आवश्यक था वह मैंने सुझाया। पर अलवर्ट कार्टराइटको इतना परिवर्तन भी पसद नहीं आया। उन्होंने कहा—“जनरल स्मट्स इस मसविदेको अंतिम मानते हैं। मैंने खुद भी इसे पसद किया है और इस बातका तो मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ कि अगर आप सबने परवाने ले लिये तो खूनी कानूनको रद्द हुआ ही समझिये।” मैंने जवाब दिया—“समझौता हो या न हो, पर आपकी सहानुभूति और सहायताके लिए हम सदा आपके महसानमद रहेंगे। मैं एक भी गैरजरूरी फेरफार नहीं कराना चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा होती हो मैं उसका विरोध नहीं करूँगा। पर जहाँ मुझे खुद ही अर्थके विषयमें शक हो वहाँ तो मुझे हेर-फेर सुझाना ही होगा और अंतको अगर समझौता होना ही है तो दोनों पक्षोंको मसविदेमें

अदल-बदल करनेका अधिकार होना ही चाहिए। यह अंतिम है, कहकर जनरल स्मट्सको पिस्तौल हमारे सामने नहीं कर देना चाहिए। खूनी कानून रूपी पिस्तौल तो हमारे सामने घरा ही है, अब इस दूसरे पिस्तौलका असर हमारे ऊपर क्या हो सकता है?" मि० कार्टराइट इस दलीलके खिलाफ कुछ कह नहीं सके और सुझाया हुआ परिवर्तन जनरल स्मट्सके सामने रखना स्वीकार किया। मैंने साथियोंसे मशविरा किया। उन्हें भी भापा नहीं भाई, पर जनरल स्मट्स इस सुझाये सुधारके साथ मसविदेको मजूर कर ले तो समझौता कर लेना चाहिए, यह उन्हें भी पसंद आया। जो लोग बाहरसे आये थे उन्होंने मुझे नेताओका यह सबसा दिया था कि मुनासिब समझौता होता हो तो उनकी मजूरीकी राह न देखकर मैं उसे कर लूँ। इस मसविदे पर मैंने मि० किंज और थवी नायडकी सही ली और तीनोंके हस्ताक्षरके साथ मसविदा कार्टराइटके हवाले किया।

दूसरे या तीसरे दिन १९०८ की ३० वीं जनवरीको जोहान्सबर्गके पुलिस सुपरिटेण्डेंट मुझे जनरल स्मट्सके पास प्रिटोरिया ले गये। हममे बहुतसी बातें हुईं। मि० कार्टराइटके साथ उनकी जो बातचीत हुई थी वह उन्होंने मुझे बताया। हिंदुस्तानी कौम मेरे जेल जानेके बाद भी दृढ़ रही, इसके लिये मैंने मुझे सुधारकवाद दी और कहा—“मुझे आपके देशवासियोंसे नफरत हो ही नहीं सकती। आप जानते ही हैं कि मैं भी बैरिस्टर हूँ। मेरे वक्तमें कुछ हिंदुस्तानी विद्यार्थी भी मेरे साथ पढ़ रहे थे। मुझे तो अपने कर्तव्यका पालन भर कर देना है। गौरों यह कानून मागतें हैं और आप स्वीकार करोगे कि वे मुख्यतः बौध्द नहीं, बल्कि अंग्रेज हैं। आपका सुधार मैं स्वीकार करता हूँ। जनरल बोथाके साथ मैंने बातचीत कर ली है और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप लोगोंसे अधिकार परवाना ले लेंगे तो मैं एशिया-

टिक ऐक्टको रद्द कर दूंगा। अपनी मर्जीसे लिये जानेवाले परवानेको जायज बनानेवाले कानूनका मसविदा जब बनाने लगूंगा तब उसकी एक नकल आपकी आलोचनाके लिए भेज दूंगा। मैं यह नहीं चाहता कि यह लड़ाई पीछे फिर बुरा हो और आपके देशवासियोंकी भावनाओंका आदर करना चाहता हूँ।” यह कहकर जनरल स्मट्स उठकर खड़े हो गये। मैंने पूछा—“अब मुझे क्या जाना है? और मेरे साथके दूसरे कैदियोंका क्या होगा?” उन्होंने हसकर जवाब दिया—“आप तो अभीसे आजाद है। आपके साथियोंको कल सवेरे छोड़ देनेके लिए टेलीफोन करता हूँ। पर मेरी यह सलाह है कि आपके लोग बहुत जलसा-तमाशा न करे। करेगे तो सरकारकी स्थिति कुछ कठिन हो जा सकती है।” मैंने जवाब दिया—“आप इतमीनान रखे, जलसेकी खातिर मैं एक भी जलसा नहीं होने दूंगा। पर समझौता कैसे हुआ, उसका स्वरूप क्या है और अब हिंदुस्तानियोंकी जिम्मेदारी कितनी बढ गई है, यह समझानेके लिए तो मुझे सभाएं करनी ही होगी।” जनरल स्मट्सने कहा—“ऐसी सभाएं आप जितनी भी करनी चाहे करे। मैं क्या चाहता हूँ यह आपने समझ लिया, इतना ही काफी है।”

इस वक्त शामके कोई सात बजे होंगे। मेरे पास तो एक घेला भी नहीं था। जनरल स्मट्सके सेक्रेटरीने मुझे जोहान्सवर्ग जानेका भाडा दिया। यह बातचीत प्रिटोरियामें हुई थी। प्रिटोरियाके भारतीयोंके पास रुकना और वहां समझौता प्रकट करना जरूरी नहीं था। मुख्यलोग जोहान्सवर्गमें ही थे। हमारा केंद्र भी वही था। वहां जानेवाली आखिरी ट्रेन वाकी थी। वह मुझे मिल भी गई।

: २२ :

## समझौतेका विरोध : मुझपर हमला

रातके कोई नौ बजे जोहान्सवर्ग पहुँचा । तुरत अध्यक्ष सेठ ईसप मियाके यहाँ गया । मुझे प्रिटोरिया ले जानेकी खबर उन्हे मिल गई थी । इससे कुछ मेरी राह भी देखते रहे होंगे । फिर भी मुझे अकेला पहुँचा हुआ देखकर सबको अचंभा हुआ और हर्ष भी । मैंने कहा कि जितने आदमी इकट्ठे किये जा सके उतने ही को इकट्ठाकर हमे इसी वक्त सभा करनी होगी । ईसप मिया आदि मित्रोंको भी यह सलाह पसंद आई । अधिकांश भारतीय एक ही मुहल्लेमे रहते थे, इसलिए सूचना देना कठिन नहीं था । अध्यक्षका मकान मस्जिदके पास ही था, और सभाए तो मस्जिदके मैदानमे ही हुआ करती थी । इससे कोई भारी प्रबध करना था ही नहीं । मचपर एक वक्ती लगवा लेना, बस यही प्रबध करना था । रातके ११ या १२ बजेके लगभग सभा हुई । सूचनाके लिए समय बहुत कम मिला था, फिर भी कोई एक हजार आदमी इकट्ठे हो गये थे ।

सभा होनेके पहले जो खास-खास लोग मौजूद थे उन्हे मैंने समझौतेकी गतों समझा दी थी । कुछ उसका विरोध करते थे । फिर भी उस मंडलीके सभी लोग मेरी दलीले सुन लेनेके बाद समझौतेका औचित्य समझ गये । पर एक शंका तो सबके मनमे थी—“जनरल स्मट्सने विश्वासघात किया तो ? खूनी कानून भले ही अमलमे न लाया जाय, पर हमारे सिरपर मूसलकी तरह खडा तो रहेगा ही । इस बीच हमने अपनी मर्जीसे परवाने लेकर अपना हाथ कटा दिया तो इस कानूनसे लड़नेके लिए हमारे पास जो एक बड़ा हथियार है उसे हाथसे



छोड़ देगे। यह तो जानबूझकर अपने आपको दुश्मनके पजेमें फसा देना-सा होगा। सच्चा समझौता तो यह कहा जायगा कि पहले खूनी कानून रद्द करदे और फिर हम स्वेच्छासे परवाने निकलवा ले।”

मुझे यह दलील पसंद आई। दलील करनेवालोकी तीक्ष्ण बुद्धि और हिम्मतपर मुझे गर्व हुआ और मैंने देखा कि सत्याग्रही ऐसे ही होने चाहिए। इस दलीलके जवाबमें मैंने कहा—“आपकी दलील बहुत अच्छी है और विचारने योग्य है। खूनी कानून रद्द हो जानेके बाद ही हम अपनी इच्छासे परवाने ले, इससे अच्छी तो दूसरी कोई बात ही नहीं सकती, पर इसको मैं समझौतेका लक्षण नहीं मानता। समझौतेका अर्थ ही यह होता है कि जहा सिद्धान्तका भेद न हो वहा दोनो पक्ष खुद बहुत-कुछ करे और भगडा निबटाले। हमारा सिद्धान्त यह है कि हम खूनी कानूनके डरसे तो, उसके अनुसार जो कुछ करनेमें कोई बाधा न हो वह काम भी न करे। इस सिद्धान्तपर हमें अटल रहना है। सरकारका सिद्धान्त यह है कि हिंदुस्तानी नाजायज तौरपर ट्रांसवालमें दाखिल न हो। इसके लिए बहुतसे भारतीय ऐसे परवाने निकलवा ले जिनपर वह पहचानके निशान हो और जिनकी अदल-बदल न हो सके, और यों गैरोंका शक दूर कर उन्हें निर्भय कर दें। सरकार इस सिद्धान्तको नहीं छोड़ने की। आजतक अपने व्यवहारसे हमने इस सिद्धान्तको स्वीकार भी कर रखा है। अत उसका विरोध करनेकी बात सोचे तो भी जबतक नये कारण उत्पन्न न हो तबतक उसके विरुद्ध नहीं लडा जा सकता। हमारी लडाईं इस सिद्धान्तको काटनेके लिए नहीं, बल्कि कानूनका काला दाग दूर करनेके लिए है। अत कौममे जो नया और प्रचंड बल प्रकट हुआ है उसका उपयोग करनेके लिए अब हम एक नई बातको सामने रखें तो सत्याग्रहीके सत्यको लोछन

लगेगा । अतः सब पूछिये तो इस समझौतेका विरोध किया ही नहीं जा सकता ।

“अब इस दलीलपर विचार करे कि खूनी कानून रद्द किये जानेके पहले हम अपना हाथ कैसे कटा दे ? क्यों अपने शस्त्र छोड़ दे ? इसका जवाब तो बहुत आसान है । सत्याग्रही भयको तो कोसो दूर रखता है । इसलिए विश्वास करते वह कभी डरता ही नहीं । बीस बार विश्वासका घात हो तो भी इक्की-सवी बार विश्वास करनेको तैयार रहता है । कारण यह है कि सत्याग्रही अपनी नाब विश्वासके सहारे ही चलाता है और विश्वास रखनेमें हम अपने हाथ कटा देते हैं यह कहना यह प्रकट करना है कि हम सत्याग्रहको नहीं समझते ।

“मान लीजिये, हमने अपनी इच्छासे नये परवाने ले लिये । पीछे सरकार विश्वासघात करती है और कानूनको रद्द नहीं करती । तो क्या उस वक्त हम सत्याग्रह नहीं कर सकते ? यह परवाना ले लेनेपर भी हम मुनासिब वक्तपर उसे दिखानेसे इन्कार कर दे तो उसकी क्या कीमत होगी ? तब जो हजारो हिंदुस्तानी छिपे तौरपर ट्रासवालमे दाखिल हो जाए । सरकार उनमें और हममें किम तरह अंतर कर सकेगी ? अतः कानून हो या न हो, किसी भी दशामें सरकार हमारी सहायताके बिना हमपर प्रतिबंध नहीं लगा सकती । कानूनका अर्थ इतना ही है कि जो रोक सरकार लगाना चाहती है उसे हम स्वीकार न करे तो हम दडके पात्र होते हैं । और आमतौरसे ऐसा होता है कि मनुष्य सजाके डरसे अकुसके अधीन होते हैं; पर सत्याग्रही इस सामान्य नियमका उल्लंघन करता है । वह अकुसके अधीन होता है तो सजाके डरसे नहीं; बल्कि उसके माननेमें लोक-कल्याण है, यह मानकर अपनी इच्छासे बैसा करता है । ठीक यही स्थिति हमारी इस वक्त इन परवानोके बारेमें है । इस स्थितिको सरकार कैसा ही विश्वास-

घात करके भी बदल नहीं सकती। इस स्थितिको उत्पन्न करनेवाले हम हैं और उसे बदल भी हमही सकते हैं। जबतक सत्याग्रहका हथियार हमारे हाथमें है तबतक हम स्वतंत्र और निर्भय हैं।

“और अगर कोई मुझसे यह कहे कि कौममें जो बल आज आ गया है वह फिर आनेवाला नहीं तो मैं यह जवाब दूंगा कि यह कहनेवाला सत्याग्रही नहीं, वह सत्याग्रहको समझता ही नहीं। यह कहनेका अर्थ तो यह होता है कि आज जो बल प्रकट हुआ है वह सच्चा नहीं है, बल्कि नशेके जैसा झूठा और क्षणिक है। यह बात सही हो तो हम विजयके अधिकारी नहीं। और जीत जाए तो जीती हुई चाजी भी हार जायगे। मान लीजिये, सरकारने खूनी कानूनको रद्द कर दिया। पीछे हमने ऐच्छिक परवाने ले लिये। इसके बाद सरकारने यही खूनी कानून फिर पास कर दिया और हमे परवाने लेनेको मजबूर करने लगे, तो उस वक्त उसे कौन इससे रोक सकता है ? और अगर इस वक्त अपने बलके विषयमें हमें शंका हो तो उस वक्त भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी। अतः चाहे जिस दृष्टिसे हम इस समझौतेको देखे, हम यह कह सकते हैं कि उसे करनेमें कौम कुछ खोयेगी नहीं, बल्कि कुछ नफेमें ही रहेगी। और मैं तो यह भी मानता हू कि हमारे विरोधी भी हमारी नम्रता और न्याय-बुद्धिको पहचान लेनेपर विरोध त्याग देगे या उसे नरम कर देगे।”

इस प्रकार जिन एक-दो आदर्शियोंने उस छोटी-सी मडलीमें विरोध प्रकट किया था उनके मनका मैं पूरा समाधान कर सका। पर आधी रातवाली बड़ी सभामें जो बबडर उठनेवाला था उसका तो मुझे स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था। मैंने सभाको पूरा समझौता समझाया और कहा—“इस समझौतेसे कौमकी जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। हमें यह दिखानेके लिए अपनी खुशीसे

परवाना ले लेना है कि हम धोखा देकर या नाजायज तरीकेसे एक भी हिंदुस्तानीको ट्रांसवालमें घुसाना नहीं चाहते। कोई परवाना न ले तो इस वक्त तो उसे कोई सजा भी नहीं दी जायगी; पर न लेनेका अर्थ यही होगा कि कौम समझौतेको मंजूर नहीं करती। अत यह जरूरी है कि आप लोग हाथ ऊंचा करके समझौतेका स्वागत करे। यह मैं चाहता भी हू। पर इसका अर्थ यही होगा और मैं यही करूंगा कि आप हाथ उठानेवाले लोग, ज्योही नये परवाने निकालनेका प्रबंध हो जाय, परवाने लेनेमे लग जाएंगे और आजतक जैसे परवाना न लेनेको समझानेके लिये आपमेसे बहुतरे स्वयंसेवक बने थे वैसे अब लोगोंको परवाने लेनेको समझानेके लिए स्वयंसेवक बनेगे। जो काम हमें करना है वह कर देगे तभी इस जीतका सच्चा फल हम पा सकेंगे।”

ज्योही मेरा भाषण पूरा हुआ, एक पठान भाई खड़े हुए और मुझपर सवालकी झड़ी लगादी :

“इस समझौतेके अंदर हमें दसो उगलियोंकी छाप देनी होगी न ?”

“हां और नहीं भी। मेरी अपनी सलाह तो यही होगी कि सब लोग दसो उगलियोंकी छाप देदे; पर जिन्हे घमंकी बाधा हो या जो निशानी देनेमे अपने आत्मसम्मानकी हानि मानते हों वे न दे तो भी चल सकता है।”

“आप खुद क्या करेगे ?”

“मैंने तो दसो उगलियोंकी छाप देनेका निश्चय कर रखा है। मैं खुद न दू और दूसरोको देनेकी सलाह दू, यह मुझसे तो हो ही नहीं सकता।”

“दसो उगलियोंकी निशानीके बारेमे आप बहुत लिखा करते थे। यह तो अपराधियोसे ही ली जाती है, इत्यादि सिखानेवाले आप ही थे। यह लडाई दस उगलियोंकी छापकी

लडाई है, यह कहनेवाले भी आप ही हैं। ये सारी बातें आज कहाँ गईं ?”

“दसो उगलियोकी निशानीके बारेमें जो कुछ मैंने लिखा है उसपर आज भी कायम हू। मैं आज भी कहता हू कि उगलियोंकी छाप हिंदुस्तानमें जरायम पेशा या अपराधी जातियोसे ली जाती है। मैंने कहा है और आज भी कहता हू कि खूनी कानूनके अनुसार दसों उगलियोकी निशानी देना तो क्या, दस्तखत करना भी पाप है। यह बात भी सच है कि उगलियोकी निशानीपर मैंने बहुत जोर दिया है और मैं मानता हू कि वैसा करनेमें मैंने समझदारीसे काम लिया। खूनी कानूनकी वारीक बातोंपर, जिन्हे अबतक करते आ रहे थे, जोर देकर कौमको समझानेके बदले दसो उगलियोकी निशानी जैसी बड़ी और नई बातपर जोर देना आसान था और मैंने देखा कि कौम इस बातको तुरत समझ गई।

“पर आजकी स्थिति भिन्न है। मैं जोर देकर कहना चाहता हू कि जो बात कल अपराध थी वह आजकी नई स्थितिमें भलमनसी और शराफतका निशान है। आप मुझसे जवदस्ती सलाम कराना चाहें और मैं करू तो मैं आपकी, दुनियाकी और खुद अपनी निगाहमें भी गिर जाऊंगा। पर मैं आपको अपना भाई या इसान समझकर अपनी मर्जीसे सलाम करू तो यह मेरी नम्रता और सज्जनताका सबूत होगा और खुदाके दरवारमें भी यह बात मेरी नेकीके खातेमें लिखी जायगी। इसी दलीलसे मैं कौमसे उगलियोकी निशानी देनेकी सलाह देता हू।”

“हमने सुना है कि आपने कौमके साथ दगा की है और १५ हजार पौंड लेकर उसे जनरल स्मट्सके हाथ बेच दिया है। हम कभी दसो उगलियोकी निशानी देनेवाले नहीं और किसीको देने देगे भी नहीं। मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हू

कि जो आदमी एशियाटिक दफ्तरमें जानेमें अगुवाई करेगा उसे जानसे मार डालगा।”

“पठान भाइयोंकी भावना में समझ सकता हू। मुझे विश्वास है कि मैंने घस खाकर कौमको बेच दिया है इसपर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। यह बात मैंने पहले ही समझा दी है कि जिन लोगोंने उगलियोंकी निशानी न देनेकी कसम खाई है उन्हें कोई निशानी देनेके लिए मजबूर नहीं कर सकता और जो कोई पठान या दूसरे भाई उगलियोंके निशान दिये बिना परवाना लेना चाहे उन्हें परवाना दिलानेमें मैं पूरी-पूरी मदद करूंगा। मैं आपको इतमीनान दिलाता हूँ कि बिना उगलियोंकी निशानी दिये वे ऐच्छिक परवाना ले सकेंगे।

“मुझे यह बात कबूल करनी होगी कि मार डालनेकी घमकी मुझे पसंद नहीं आती। मैं यह भी मानता हूँ कि किसीको मार डालनेकी कसम खुदाके नामपर नहीं खाई जा सकती। इसलिए मैं यही माने लेता हूँ कि क्रोधके आवेशमें आकर ही इन भाइयोंने मार डालनेकी कसम खाई है, पर इस कसमपर अमल करना हो या न करना हो, समझौता करनेमें मुख्य आदमी होनेकी हैसियतसे और कौमके सेवकके रूपमें मेरा स्पष्ट कर्तव्य है कि उगलियोंकी निशानी देनेमें मैं ही अगुआ बनूँ। और मैं तो ईश्वरसे प्रार्थना करूंगा कि वह मुझको ही इसका श्रेय दे। मरना तो एक दिन सभीको है। रोग या इस तरहके दूसरे कारणसे मरनेके बजाय मैं अपने किसी भाईके हाथसे मरूँ तो इसमें मुझे तनिक भी दुःख नहीं होगा। और अगर उस वक्त भी मैं तनिक भी क्रोध या मारनेवालेके प्रति द्वेष न करूँ तो मैं जानता हूँ कि मेरा तो भविष्य बनेगा ही और मारनेवाला भी पीछे तो समझ ही जायगा कि मैं सर्वथा निर्दोष था।”

उपरके सवाल कथो किये गये, यह बतना देना जरूरी है। जिन लोगोंने खूनी कानूनके आगे सिर झुका दिया था उनके

प्रति यद्यपि कोई वैर-भाव नहीं रखा जाता था, फिर भी उस कार्यके विषयमें तो बूले और कड़े शब्दोंमें बहुत-कुछ कहा और 'इंडियन ओपीनियन'में लिखा गया था। इससे कानूनकी मान लेनेवालोंका जीवन अप्रिय अवश्य हो गया था। उन्होंने कभी सोचा ही न था कि कौमका बड़ा भाग अपने निश्चयपर अटल रहेगा और इतना जोर दिखायेगा कि समझौता होनेकी नौबत आ जाय। पर जब १५० से ऊपर सत्याग्रही जेलमें पहुँच गये और समझौतेकी बातचीत चलने लगी तब कानूनकी शरण जानेवालोंको और भी नागवार लगा और कुछ ऐसे भी निकले जो चाहते थे कि समझौता न हो और ही जाय तो उसको तुड़वा देना भी चाहते थे। >

ट्रांसवालमें रहनेवाले पठानोंकी सख्या बहुत थोड़ी थी। मेरा ख्याल है कि कुल मिलाकर ५० से अधिक नहीं होंगे। उनमें बहुतेरे वोअर-युद्धके समय आये हुए सिपाही थे। जैसे युद्ध-कालमें आये हुए बहुतेसे गोरे दक्षिण अफ्रीकामें आवाद हो गये, वैसे ही लडाइँके सिलसिलेमें आये हुए पठान और दूसरे हिंदुस्तानी भी बस गये थे। उनमेंसे कुछ मेरे मक्किकल भी थे और दूसरे तौरपर भी उनके साथ मेरा खासा परिचय हो गया था। वे स्वभावसे बड़े भोले होते हैं। धूरवीर तो होते ही हैं। मारना और मरना उनकी निगाहमें बहुत मामूली बातें हैं। उनको किसी पर गुस्सा आये तो उसको पकड़कर पीटते अथवा उनकी भापामें कहना चाहें तो उसकी पीठ गरम करते हैं और कभी-कभी जानसे भी मार डालते हैं। इसमें वे नितान्त निष्पक्ष होते हैं। सर्गा भाई हो तो उसके साथ भी यही बर्ताव करेंगे। पठानोंकी तादाद यहाँ इतनी कम है, फिर भी उनमें आपसमें तकरार होनेपर मार-पीटकी नौबत आ ही जाती है। ऐसे मगड़ोंमें मुझे अकसर बीच-बचाव करना पड़ता। इसमें भी जब विश्वासघातकी बात हो तब तो वे

अपना गुस्सा रोक ही नहीं सकते । न्याय पानेके लिए उनके पास सबसे बढिया कानून मारपीट ही है ।

पठानोंने इस लडाईमें पूरा हिस्सा लिया था । उनमेसे एक आदमीने भी खूनी कानूनके सामने घुटने नहीं टेके थे । उनको बहकाना आसान है । उगलियोकी निशानी देनेके वारेमे गलतफहमी होना समझमे आ सकनेवाली बात है और इसको लेकर उनको भडकाना तनिक भी कठिन नहीं था । घूस न खाई होती तो उगलियोकी निशानी देनेकी बात मैं क्यों कहता, इतना कहना पठानोको भ्रममे डालनेके लिए काफी था ।

इसके सिवा ट्रांसवालमे एक और पक्ष भी था । यह था उन लोगोका जो विना परवाना लिये छिपे तौरपर ट्रांसवालमे आये थे या जो दूसरे हिंदुस्तानियोको गुप्तरीतिसे विना परवाना लिये या जाली परवानोके जरिये ट्रांसवालमें प्रविष्ट कराया करते थे । इस पक्षका स्वार्थ समझौता न होनेमे ही था । जबतक लडाई चल रही हो तबतक किसीको परवाना दिखाना होता ही नहीं । इसलिए ये लोग निर्भय होकर अपना रोजगार चलाते रहते । लडाई चलती रहनेके दरमियान ये लोग जेल जानेसे आसानीसे बच सकते थे । अतः लडाई लवे अरसेतक चले तो यह पक्ष इसे अपने लिए अच्छा ही मानता । इस प्रकार ये लोग भी पठानोको समझौतेके खिलाफ भडका सकते थे । अब पाठक समझ सकते हैं कि पठान यकायक क्यों उत्तेजित हो गये थे ।

पर इस मध्यरात्रिके उद्गारोंका असर सभाके ऊपर कुछ भी नहीं हुआ । मैंने सभाका मत मांगा था । सभापति और दूसरे नेता दृढ़ थे । इस सवादके बाद सभापतिने भाषण दिया, जिसमें समझौतेका स्वरूप समझाया और उसको मजूर कर लेनेकी आवश्यकता बताई । अनन्तर उन्होंने सभाका मत लिया । दो-चार पठान जो उस-वक्त वहां मौजूद



थे उनके सिवा और सवने समझौतेको स्वीकार किया और मैं रातके दो या तीन वजे घर पहुँचा। सोना तो कहासे मिलता, क्योंकि मुझे तडके ही उठकर दूसरोको छुड़ानेके लिए जेल जाना था। ७ वजे मैं जेलपर पहुँच गया। सुपरिटेण्डेंटकी टेलीफोनसे हुक्म मिल गया था और वह मेरी राह देख रहे थे। एक घंटेके अंदर सभी सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये। अव्यक्त और दूसरे भारतीय उन्हें लेनेके लिए आये थे। जेलसे हमारा जुलूस पैदल सभा-स्थानको गया। वहाँ सभा हुई। यह दिन और दूसरे दो-चार दिन यों ही दावतो आदिमे तथा लोगोंको समझानेमे लग गये।

ज्यो-ज्यों दिन बीतते गये त्यो-त्यों एक ओर तो लोग समझौतेका अर्थ अधिकाधिक समझने लगे और दूसरी ओर गलतफहमी भी बढ़ने लगी। उत्तेजनाके कारण तो ऊपर हम देख ही चुके हैं। उनके अतिरिक्त जनरल स्मट्सको लिखे हुए पत्रमे भी भ्रमका सबल कारण था। इसलिए जो अनेक प्रकारकी दलीले पेश की जा रही थी उनका जवाब देनेमे मुझे जो तकलीफ हुई वह उन कष्टोसे कहीं अधिक थी जो लडाईं चलती रहनेके दिनोंमे मुझे उठाने पड़े थे। लडाईंके दिनोंमे जिसे हम अपना दुश्मन मानते हो उसके साथ व्यवहार करनेमे कठिनाई पडती है; पर मेरा अनुभव यह है कि इन कठिनाइयोको हम आसानीसे दूर कर सकते हैं। उस वक्त आपसके भगड़े, अविश्वास आदि होते ही नहीं या बहुत कम होते हैं। पर युद्ध समाप्त होनेके बाद आपसके विरोध आदि जो सामने आँई हुई आपत्तिको देखकर दवे रहते हैं, बाहर आ जाते हैं और लडाईंका अंत समझौतेसे हुआ हो तो उसमे दोष निकालनेका काम सदा सहल होता है। इससे बहुतेरे उसे उठा लेते हैं और जहाँ व्यवस्था राष्ट्रीय या लोक-तंत्रीय हो वहाँ छोटे-बड़े सबको जवाब देना और उनका समा-

धान करना पड़ता है। यह ठीक ही है। जितना अनुभव आदमी ऐसे समय, यानी दोस्तोंके दरमियान होनेवाले भगड़े या गलतफहमीके समय प्राप्त कर सकता है उतना विरोधीके सामने लड़ते हुए नहीं प्राप्त किया जा सकता। विरोधीके साथ की जानेवाली लड़ाईमें एक तरहका नशा रहता है और इससे उसमें उल्लास होता है। पर जब मित्रोंके बीच गलतफहमी या विरोध उत्पन्न हो जाता है तब वह असाधारण घटना माना जाता है और सग दुःखद ही होता है। फिर भी आदमीकी परख तो ऐसे ही वक्त होती है। मेरा तो यह अपवाद-रहित अनुभव है और मुझे जान पड़ता है कि ऐसे ही समयमें मैं अपनी सारी आंतरिक सम्पत्ति प्राप्त कर सका हूँ ? युद्धका शुद्धस्वरूप जो लोग लड़ते-लड़ते नहीं समझ सके थे वे समझौतेकी बातचीतके दरमियान और उसके बाद उसे पूरी तरह समझ गये। सच्चा विरोध तो पठानोंसे आगे नहीं बढ़ा।

यो करते-कराते दो-तीन महीनेमें एशियाटिक दफ्तर अपनी इच्छासे लिया जानेवाला नया परवाना निकालनेको तैयार हो गया। परवानेका रूप विलकुल बदल गया था। उसे बनानेमें सत्याग्रही मंडलके साथ मशविरा कर लिया गया था।

१९०८ की १० वीं फरवरीको सबेरे हम कुछ आदमी परवाने लेनेके लिए जानेको तैयार हुए। लोगोंको खूब समझा दिया गया था कि परवाने लेनेका काम कौमकी भटपट कर डालना है। यह भी तै कर लिया गया था कि पहले दिन नेतागण ही सबसे पहले परवाने ले। इसमें उद्देश्य यह था कि लोगोंकी हिचक दूर हो जाय, एशियाटिक दफ्तरके अफसर-अहलकार अपना काम सौजन्यके साथ करते हैं या नहीं, इसको देख ले और कामकी ओर तरह पर निगरानी भी रखे।

मेरा दफ्तर ही सत्याग्रह-मंडलका भी दफ्तर था। वहाँ पहुँचा तो दफ्तरकी दीवारके बाहर मीर आलम और उसके साथियोंको खड़ा पाया। मीर आलम मेरा पुराना मक्किल था और अपने सभी कामोंमें मेरी सलाह लिया करता था। बहुतसे पठान ट्रांसवालमें घास या नारियलके रेशेके गद्दे बनानेका काम करते हैं। इसमें वे अच्छा नफा करते हैं। ये गद्दे वे मजदूरोंके जरिये बनवाते और पीछे अच्छे नफेपर बेचते हैं। मीर आलम भी यही काम करता था। वह छ' फुटसे अधिक ऊँचा होगा। लंबे-चौड़े कद और दुहरे बदनका था। आज पहली ही बार मैंने मीर आलमको दफ्तरके भीतरके बजाय बाहर खड़ा देखा और हमारी आँखें मिलनेपर भी उसने सलामके लिए हाथ नहीं उठाया तो यह भी पहली ही बार हुआ। पर मैंने सलाम किया तो उसने भी जवाब दिया। अपने अभ्यासके अनुसार मैंने पूछा, "कैसे हो?" मुझे ऐसा खयाल है कि उसने जवाबमें "अच्छा हूँ" कहा। पर आज उसका चेहरा रोजकी तरह हसता हुआ नहीं था। मैंने उसकी आँखोंमें क्रोधकी झलक देख ली और अपने मनमें इसे नोट कर लिया। यह भी सोचा कि आज कुछ होनेवाला है। मैं दफ्तरके अंदर गया। अध्यक्ष ईसप मिया और दूसरे मित्र भी आ पहुँचे और हम एशियाटिक दफ्तरकी ओर रवाना हुए। मीर आलम और उसके साथी भी साथ हो लिये।

एशियाटिक आफिसके लिए लिया हुआ मकान फॉन ब्राडिस स्ववायरमें था और मेरे दफ्तरसे एक मीलके अंदर ही होगा। वहाँ पहुँचनेके लिए आम सड़कोसे होकर जाना था। फॉन ब्राडिस स्ट्रीटसे जाते हुए हम मैसर्स आर्नाट एंड गिब्सनकी कोठीसे आगे पहुँचे थे, जहाँसे एशियाटिक दफ्तरका तीन मिनिटसे अधिकका रास्ता न था कि मीर आलम

मेरी बगलमे आ गया और पूछा, "कहाँ जाते हो ?" मैंने जवाब दिया— "मैं दस उगलियोकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सार्टीफिकेट लेना चाहता हूँ। अगर तुम भी चलो तो तुम्हे दसों उगलियोकी निशानी देनेकी जरूरत नहीं है। केवल दोनो अगूठोकी निशानी दिलाकर मैं पहले तुम्हे सार्टीफिकेट दिला दूँगा, फिर अपनी उगलियोकी छाप देकर अपना सार्टीफिकेट निकलवाऊँगा।" मैं यह कहही रहा था कि इतनेमे मेरी खोप-डीपर लाठी गिरा और मैं 'हे राम' कहते हुए वेहोश होकर मुहक बल गिरा। इसक बाद जो कुछ हुआ उसकी मुझे खबर नहीं। पर मीर आलम और उसके साथियोने और लाठिया मारी और लाते भी जड़ी। उनमसे कुछको इसंप मिया और खबी नायबने अपने ऊपर ले लिया। इससे वे भी थोडी मार खा गये। इतनमे क्षौर मचा। आते-जाते गोरे इकट्ठा हो गये। मीर आलम और उसके साथी भागे; पर गोरोंने उन्हें पकड लिया। इस बीच पुलिस भी आ पहुची और वे पुलिसके हवाले कर दिये गये।

बगलमे ही एक यूरोपियन मि० गिन्सनका दफ्तर था। लोग मुझे वहा उठा ले गये। थोडी देरमे मुझे होश आया तो मैंने रेवरेड डोकको अपने ऊपर झुका हुआ पाया। उन्होने मुझसे पूछा— "कैसे हो ?" मैंने हसकर जवाब दिया— "मैं तो अच्छा हूँ, पर मेरे हात और पसलियां दुख रही हैं।" मैंने पूछा— "मीर आलम कहाँ है ?" उन्होने जवाब दिया— "वह तो पकड लिया गया है और उसके साथ दूसरे लोग भी।" मैंने कहा— "उन्हें छूटना चाहिए।" मि० डोकने जवाब दिया— "यह सब तो होता रहेगा। यहा तो तुम एक पराये दफ्तरमें पड़े हो। तुम्हारा होट फट गया है। पुलिस तुम्हे अस्पताल ले जानेको तैयार है। पर तुम मेरे यहा चलो तो मिमेज डोक और मैं जितनी तुम्हारी सेवा हमसे

हो सकती है करेगे।" मैंने कहा—“मुझे तो अपने ही यहाँ ले चलिए। पुलिस जो सहायता करना चाहती है उसके लिए उसको घन्घना दीजिए, पर उन लोगोसे कह दीजिये कि मैं आपके यहाँ जाना पसन्द करता हूँ।”

इतनेमें एशियाटिक आफिसर (रजिस्ट्रार आव एशियाटिक्स) मि० चमनी भी आ पहुँचे। एक गाड़ीमें लिटाकर मुझे इस भले पादरीके मकानपर ले गये, जो स्मिथ स्ट्रीटमें था। डाक्टर बुलाया गया। इस बीच मैंने मि० चमनीसे कहा—“मेरी आशा तो यह थी कि आपके दफ्तरमें आकर और दसो उगलियोकी निशानी देकर पहला परवाना अपने नाम निकलवाऊंगा। यह ईश्वर को मजूर नहीं था। पर अब मेरी प्रार्थना है कि आप अभी जाकर कागज ले आए और मेरी रजिस्ट्री कर ले। मैं आशा करता हूँ कि आप मुझसे पहले और किसीकी रजिस्ट्री नहीं करेगे। उन्होने जवाब दिया—“ऐसी क्या उतावली है? अभी-अभी डाक्टर आते हैं। आप आराम करे। पीछे सब होता रहेगा। दूसरोंको परवाने दूंगा तो भी आपका नाम पहला रहेगा।” मैंने कहा—“ऐसे नहीं हो सकता। मेरी भी प्रतिज्ञा है कि मैं जीवित रहा और ईश्वरको मजूर हुआ तो सबसे पहले खुद मैं ही परवाना लूंगा। इसीसे मेरा आग्रह है कि आप कागज ले आए।” इसपर वह कागज लाने गये।

मेरा दूसरा काम था एटर्नी जनरल अर्थात् बड़े सरकारी वकीलको इस आशयका तार भेजना—“मीरखालम और उसके साथियोने मेरे ऊपर जो हमला किया उसके लिए मैं उन्हें दोषी नहीं मानता। जो हो, उनपर फौजदारी मुकदमा चले यह मैं नहीं चाहता। मुझे आशा है कि मेरी खातिर आप उन्हें छोड़ देंगे।” इस तारके जवाबमें मीर खालम और उसके साथी छोड़ दिये गये।

पर जोहान्सवर्गके गोरोंने एटर्नी जनरलको इस तरहका कडा पत्र लिखा—“अपराधियोंको सजा मिलनेके वारेमे गाधीके विचार कुछ भी हो, वह इस देशमें नहीं चल सकते। उनपर जो मार पड़ी है उसके विषयमे वह भले ही कुछ न करे, पर अपराधियोने उन्हे घरके कोनेमें नहीं मारा, सरेआम बीच रास्तेमे मारा है। यह सार्वजनिक अपराध माना जायगा। कितने ही अग्रेज भी इस अपराधकी शहादत दे सकते हैं। अपराधियोंको पकड़ना ही होगा।” इस आन्दोलनके कारण सरकारी वकीलने मीर आलम और उसके एक साथीको फिर गिरफ्तार कराया और उन्हे तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली। हा, मैं गवाहकी हैसियतसे तलब नहीं किया गया।

अब हम फिर बीमारके कमरेकी ओर निगाह फेरे। मि० चमनी कागजात लेने गये, इतनेमें डाक्टर श्वेट्स आ पहुचे। उन्होने मुझे देखा। मेरा ऊपरका होट फट गया था। उसके और गालके जस्ममे भी टांका लगाया। पसलियों आदिको देखकर उनमे लगानेके लिए दवा लिखी और जबतक टांका न खुले तवतक वोलनेको मना किया। खानेमे भी पतली चीजांको छोडकर और कुछ खानेको मना किया। उन्होने यह निदान किया कि मुझे कहीं भी बहुत गहरी चोट नहीं आई है। हफ्तेके अदर अपना मामूली काम-काज करने लायक हो जाऊगा। हां, एक-दो महीने इसका ध्यान रखना होगा कि शरीरपर अधिक श्रम न पड़े। यह कहकर वह विदा हुए। यो मेरा वोलना वद हुआ, पर मेरा हाथ तो चल ही सकता था। मैंने कौमके लिए अध्यक्षकी मारफत एक छोटा गुजराती संदेश लिखकर प्रकाशित करनेके लिए दे दिया। वह इस प्रकार है :

“मेरी तबीयत अच्छी है। मिस्टर और मिसेज डोक

मेरे लिए जान दे रहे हैं। मैं थोड़े ही दिनोंमें अपनी ड्यूटीपर फिर हाजिर हो जाऊंगा। जिन्होंने मुझे मारा है उनपर मुझे गुस्सा नहीं है। उन्होंने नासमझीवश यह काम किया। उनपर कोई मुकदमा चलानेकी जरूरत नहीं। दूसरे लोग शांत रहेंगे तो इस घटनासे भी हमें लाभ ही होगा।

“हिंदू भाई अपने मनमें तनिक भी रोप न रखे। मैं चाहता हूँ कि इस घटनासे हिंदू-मुसलमानके बीच कटुता पैदा न होकर मिठास उत्पन्न हो, ईश्वरसे ऐसी प्रार्थना करता हूँ।

“भूमिपर मार पड़ी और उससे ज्यादा पड़े तो भी मैं तो एक ही सलाह दूंगा। और वह यह कि आमतौरसे सभी दस उगलियोकी निशानी दे दे। जिनके लिए सच्ची धार्मिक अडचन हो उन्हें सरकार छूट देगी। इसमें ही कौमका और गरीबोका भला है और इसीसे उनकी रक्षा होगी।

“अगर हम सच्चे सत्याग्रही होंगे तो मार या भविष्यमें किये जानेवाले विश्वासघातके डरसे तनिक भी नहीं डरेंगे।

“जो लोग दसो उगलियोकी निशानीकी बातको लेकर अडे हुए हैं उन्हें मैं अज्ञानी समझता हूँ।

“मैं परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि कौमका भला करे, उसे सही रास्तेपर लगाये और हिंदू-मुसलमानोको मेरे रक्तके एक करे।”

मि० चमनी आये । बड़ी मुश्किलसे मैंने उगलियोकी निशानी दे दी। मैंने देखा कि इस वक्त उनकी आंखें गीली हो रही थीं। इनके खिलाफ तो मुझे कड़े लेख भी लिखने पड़े थे। पर अवसर आनेपर मनुष्यका हृदय कितना कोमल हो जाता है, इसका चित्र मेरी आंखोंके सामने खड़ा हो गया।

पाठक यह अनुमान न तो कर ही लेंगे कि यह सारी विधि पूरी होनेमें कुछ मिनटसे अधिक न लगे होंगे। मि० डोक

और उनकी भली पत्नी इसके लिए चिंतित हो रहे थे कि मैं विलकुल शांत और स्वस्थ हो जाऊं। घायल होनेके बाद भी मुझे मानसिक श्रम करते देख उन्हें दुःख हो रहा था। उन्हें डर था कि शायद मेरी तविद्यतपर इसका बुरा असर पड़े। इसलिए इगारा करके और दूसरी युक्तियोंसे मेरी खाटके पाससे सबको हटा ले गये और मुझे लिखने या कोई भी काम करनेसे मना कर दिया। मैंने प्रार्थना की और उसे लिखकर जताया कि मैं विलकुल शांत होकर सो जाऊ, इसके पहले और इसके लिए उनकी बेटी आलिव, जो उस वक्त निरी वालिका थी, मेरा प्रिय अग्रजो भजन "लीड काइंडली लाइट" (प्रेमल ज्योति) मुझे सुना दे। मि० डोकको मेरी यह प्रार्थना बहुत रची। अपने मर्बूर हास्यसे उन्होंने मुझे इसकी सूचना दी और आलिवको इशारेसे बुलाकर आज्ञा की कि दरवाजेके बाहर खड़ी रहकर धीमे स्वरसे उक्त भजन गाये। ये पंक्तियां लिखते समय यह सारा दृश्य मेरी आँखोंके सामने फिर रहा है और आलिवका दिव्य स्वर आज भी मेरे कानोमे गूज रहा है।

इस प्रकरणमे मैं ऐसी बहुतसी बातें लिख गया हू जिन्हें मैं इस प्रकरणके लिए अप्रस्तुत मानता हू और पाठक भी मानेंगे। फिर भी उनमे एक संस्मरण और बढ़ाये बिना मैं इस प्रकरणको पूरा नहीं कर सकता। इस समयके सभी संस्मरण मेरे लिये इतने पवित्र हैं कि उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता। डोक कुटुंबकी सेवाका वर्णन मैं किस तरह कर सकता हू ?

जोसफ डोक वैपटिस्ट संप्रदायके पाठरी थे। उनकी उम्र उस वक्त ४६ बरसकी थी। दक्षिण अफ्रीका आनेके पहले न्यूजीलैंडमे थे। इस हमलेसे कोई छ महीने पहलेकी बात है। वह मेरे दफ्तरमे आये और अपने नामका कार्ड मेरे पास भेजा। उसमे नामके साथ रेवरेड विशेषण लगा था। इससे



मैंने यह गलत अनुमान कर लिया कि जैसे कितने पादरी मुझे ईसाई बनानेके इरादेसे या लड़ाई बंद करनेके लिए समझाने आते हैं, वैसे ही ये भी आये होंगे या वुजुर्ग बनकर लड़ाईमें हमदर्दी दिखाने आये होंगे। घर मि० डोक अदर आये और हममें बात-चीत होते दो-चार मिनटसे अधिक न हुए होंगे कि मैंने अपनी भूल देख ली और दिल-ही-दिलमें उनसे क्षमा मागी। उस दिनसे हम गहरे दोस्त हो गये। अख्तवारो-में लड़ाईके जो समाचार छपते थे उन सबसे उन्होंने अपनी जानकारी प्रकट की। उन्होंने कहा—“इस लड़ाईमें आप मुझे मित्र ही मानियेगा। मुझसे जो कुछ सेवा बन पड़े उसे मैं अपना धर्म समझकर करना चाहता हूँ। ईसाके जीवनका चिंतन करके जो कुछ मैंने सीखा है वह यही है कि दुखियोंका दुख बटाना चाहिए। यो हमारा परिचय हुआ और दिन-दिन हमारा स्नेह-संबंध बढ़ता ही गया।

डोकका नाम इस इतिहासमें इसके बाद अनेक प्रसंगोंमें मिलेगा, पर डोक-कुटुबने मेरी जो सेवा की उसका वर्णन करते हुए इतना परिचय पाठकोको दे देना जरूरी था। रात और दिन कोई-न-कोई तो मेरे पास मौजूद रहता ही। जितने दिन मैं वहा रहा उतने दिन उनका घर घर्मशाला बन गया था। हिंदुस्तानियोंमें फेरी करनेवाले भी थे। उनके कपड़े मजदूरो जैसे होते, मैले भी होते, जूतोंपर सेर भर धूल होती। फिर उनकी गठरी या टोकरी भी साथ होती। इन लोगोंसे लगाकर अध्यक्ष जैसे या सभी श्रेणियोंके हिंदुस्तानियोंका मि० डोकके घर मेला लग रहा था। सब मेरा हाल पूछने और जब डाक्टरकी अनुमति मिल गई तब मुझसे मिलनेके लिए आते। मि० डोक सबको समान आदर-भावसे अपने दीवानखानेमें बैठाते और जबतक मेरा रहना डोक-परिवारके साथ हुआ तबतक

मेरी सेवा-शुश्रूषा और मुझे देखने आनेवाले सैकड़ों लोगोंके आदर-सत्कारमें उनका सारा वक्त जाता। रातमें भी दो-तीन बार आकर चुपचाप मेरे कमरेमें झाँक जाते। उनके घरमें मैं कभी यह सोच ही नहीं सका कि यह मेरा घर नहीं है और मेरा प्रिय-से-प्रिय आत्मीय भी होता तो इससे अधिक मेरी सेवा करता।

पाठक यह भी न सोचे कि हिंदुस्तानी कौमकी लड़ाईकी इतनी खुले तौरपर तरफदारी करने या मुझे अपने घरमें आश्रय देनेके कारण मि० डोकको कुछ नुकसान नहीं उठाना पड़ा। अपने पथके गोरोंके लिए वह एक गिरजाघर चलाते थे। उनकी आजीविका इन पथवालोंसे ही चलती थी। इन लोगमें सभी उदार हृदयके होते हो, सो बात तो है नहीं। हिंदुस्तानियोंके लिए गोरोंमें जो आम नफरत है वह इनमें भी थी ही। डोकने इस बातकी परवा ही नहीं की। हमारे परिचयके प्रारंभमें ही मैंने इस नाजुक विषयकी उनके साथ चर्चा की। उनका जवाब लिखने लायक है। उन्होंने कहा—  
“मेरे प्यारे दोस्त, ईसाके धर्मको तुम कैसा मानते हो? जो आदमी अपने धर्मकी खातिर सुलीपर चढ़ा और जिसका प्रेम जगत्के जितना ही विशाल था, उसका मैं अनुयायी हूँ। जिन गोरोंके द्वारा मेरे त्यागका तुमको भय है अगर मैं चाहता हूँ कि उनके सामने ईसाके अनुयायीकी हैसियतमें खड़े होकर तर्किक भी शोभा पाऊँ तो इस युद्धमें मुझे खुले तौरपर योग देना ही चाहिए और यह करते हुए मुझे मेरा मंडल छोड़ दे तो मुझे इसमें रतीभर भी दुःख नहीं मानना चाहिए। मेरी रोजी उनसे मिलती है यह सही है; पर तुम्हें यह तो नहीं ही मानना चाहिए कि मैं आजीविकाकी खातिर उनके साथ संबंध रखता हूँ, या वे मेरी रोजी देनेवाले हैं। मेरी रोजी तो खुदा देता है। वे तो निमित्त मात्र हैं। उनके साथ संबंध रखनेकी मेरी यह

दिना कहे मानी हुई शत है कि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रतामें उनसे कोई दखल नहीं देगा। इसलिए मेरे बारेमें तो तुम बेफिक्र रहो। मैं कुछ हिंदुस्तानियोंपर मेहरवानी करनेके लिए इस लड़ाईमें शामिल नहीं हुआ हूँ। मेरा तो यह धर्म है और यह समझकर ही इसमें भाग दे रहा हूँ। पर सच यह है कि अपने डीन (चर्चके मुखिया) के साथ मैंने इस बारेमें सफाई कर ली है। उन्हें मैंने विनय-पूर्वक जता दिया है कि अगर हिंदुस्तानी क्रमिके साथ मेरा सबंध आपको न रुचता हो तो आप मुझे खुशीसे विदा दे सकते हैं और दूसरा पादरी नियुक्त कर सकते हैं। पर उन्होंने मुझे इस विषयमें विलकुल निश्चित कर दिया है, मुझे वढावा भी दिया है। फिर तुम यह भी न समझो कि सभी यूरोपियन तुम लोगोंको एकसी नफरतकी निगाहसे देखते हैं। बहुतोंकी परोक्ष रीतिसे तुम्हारे साथ कितनी हमदर्दी है, इसका अदाजा तुम्हें नहीं हो सकता; पर मुझे इसका पता होना चाहिए, यह तो तुम मानोगे ही।”

इतनी स्पष्ट बातचीत हो जानेके बाद मैंने इस विषयको फिर कभी छेड़ा ही नहीं और पीछे जब मि० डोक अपना धर्मकार्य करते-करते देवलोक सिंधारे, हमारी लड़ाई उस वक्त चल ही रही थी, तब उनके पथवालो—वॉटिस्ट लोगो—ने गिरजेमें सभा की और उसमें स्व० काछलिया और दूसरे हिंदुस्तानियों तथा मुझको भी बुलाया था। उसमें मुझसे बोलनेका अनुरोध किया गया था।

मेरे अच्छी तरह चलने-फिरने लायक होनेमें कोई दस दिन लगे होंगे। ऐसी दशा हो जानेपर मैंने इस स्नेही कुटुंबसे विदा ली। हम दोनोंके लिए यह वियोग बहुत दुःखदाई हो गया था।

: २३ :

## गोरे सहायक

इस लड़ाईमें इतने अधिक और प्रतिष्ठित यूरोपियनोने हिंदुस्तानी कौमकी ओरसे आगे बढ़कर हिस्सा लिया कि इस स्थानपर उनका एक साथ परिचय करा देना अनुचित नहीं समझा जायगा। इससे आगे चलकर जब जगह-जगह उनके नाम आयगे तो उस वक्त पाठकोको वे अपरिचित नहीं लगेगे और लड़ाईके चलते वर्णनमें उनका परिचय देनेके लिए मुझको रुकना भी नहीं पड़ेगा। जिस क्रमसे मैं उनके नाम दे रहा हूँ उस क्रमको पाठक उनकी प्रतिष्ठा या सहायताके मूल्यका क्रम न माने। उसको कुछ तो उनसे परिचय होनेके कारण और कुछ लड़ाईके जिस-जिस उपविभागमें उनकी मदद मिली उसके क्रमसे रखा हुआ समझना होगा।

इनमें पहला नाम अल्बर्ट वेस्टका आता है। भारतीय जनताके साथ उनका सबंध तो लड़ाईके पहले ही जुड़ गया। मेरा उनका वास्ता तो और भी पहलेका था। मैंने जब जोहान्सवर्गमें दफ्तर खोला तब मेरा कुटुंब मेरे साथ नहीं था। पाठकोको याद-होगा कि दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंका तार पाकर १९०३ ई० में मैं यकायक रवाना हो गया था और वह भी एक बरसके अदर लौट आनेके इरादेसे। जोहान्सवर्गमें एक निरामिष भोजन-गृह था। उसमें मैं नियमसे दोपहर और शामको खाना खाने जाया करता था। वहाँ वेस्ट भी आते और वही हमारी जान-पहचान हुई। वह एक और यूरोपियनके साभेमें छापाखाना चलाते थे।

१९०४में जोहान्सवर्गके हिंदुस्तानियोंमें भयानक प्लेग फैला। मैं पीड़ितोंकी सेवामें लग गया और उक्त भोजन-

गृहमे मेरा जाना अनियमित हो गया। जब जाता भी तब मेरी छूत दूसरोको लगानेका डर न रहे इस ख्यालसे और भोजन करनेवालोके आनेके पहले ही वहां हो आता। जब दो दिन लगातार मुझे नहीं देखा तब वेस्ट घबराये। उन्होंने अखबारोंमे देखा कि मैं प्लेग पीड़ितोंकी सेवामे लगा हू। तीसरे दिन सवेरे ६ वजे मैं हाथ-मुह धो रहा था कि वेस्टने मेरे कमरेका दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो वेस्टका हंसता चेहरा दिखाई दिया।

वह तुरंत ही प्रसन्न होकर बोल उठे—“तुम्हें देखकर इतमीनान हुआ। तुम्हे भोजन-गृहमे न देखा तो मैं घबराया। मुझसे तुम्हारी कोई मदद हो सकती हो तो जरूर कहना।”

मैंने हसकर जवाब दिया—“रोगियोंकी सेवा ?”

“क्यो नहीं ? मैं जरूर तैयार हू।”

इस विनोदके बीच मैंने अपनी बात सोच ली। मैंने कहा—“आपसे मुझे दूसरे उत्तरकी आशा ही नहीं थी। पर इस काममें तो मेरे बहुतसे मददगार हैं। आपसे तो मैं इससे अधिक कठिन काम लेना चाहता हू। मदनजीत यही है। ‘इंडियन ओपीनियन’ के प्रेसको कोई देखने-सम्हालनेवाला नहीं। मदनजीतको तो मैंने प्लेगके काममें लगा लिया है। आप डर्वन जायं और उस कामको सम्हाले तो यह सच्ची सहायता होगी। इसमे कोई ललचानेवाली चीज तो है ही नहीं। मैं तो आपको एक बहुत छोटी रकम ही नजर कर संकता हूँ—१० पौंड प्रति मास और जो प्रेसमें नफा हो तो उसमे आधा आपका होगा।”

“यह काम है तो जरा अटपटा। मुझे अपने सभीदारसे इजाजत लेनी होगी। कुछ उगाही भी वसूल करना है। पर कोई चिंता नहीं। आज शामतककी मुहलत मुझे दे सकते हैं ?”

“हां, छ. वजे हम पार्कमें मिलें।”

“मैं जरूर पहुंचूंगा।”

इस निश्चयके अनुसार हम मिले। वेस्टने अपने साम्नी-दारकी अनुमति भी प्राप्त कर ली। उगाहीकी वसूली मुझे सौंप दी और अगले दिन ग्रामकी ट्रेनसे रवाना हो गये। एक महीनेके अंदर उनकी रिपोर्ट मिली—“इस छापेखानेमें नफा तो है ही नहीं, घाटा बहुत है। उगाही बहुत पड़ी है; पर हिसाब ठीक-ठिकानेसे नहीं रखा गया है। ग्राहकोंके पूरे नाम नहीं लिखे हैं, ठिकाना नहीं लिखा है। दूसरी अव्यवस्था भी बहुत है। यह सब मैं शिकायतके तौरपर नहीं लिख रहा हूं। मैं यहां नफेके लिए नहीं आया हूं। इसलिए यह ऊपर लिया हुआ काम छोड़नेका नहीं, इसे पक्का समझिये। पर यह नोटिस मैं अभीसे दिये देता हूँ कि आपको लंबे अरसेतक घाटा तो भरते ही जाना होगा।”

मदनजीत जोहान्सवर्ग आये थे ग्राहक बनाने और छापे-खानेके प्रवर्धके वारेमें मुझसे बातचीत करने। मैं हर महीने प्रेसका थोड़ा-बहुत घाटा पूरा किया ही करता था। इससे यह जान लेना चाहता था कि इस गढ़बेमें और कितना पैसा भोंकना होगा। पाठकोंको मैं बता चुका हूँ कि मदनजीतको गुरुके दिनमें भी छापेखानेके कामका विलकुल अनुभव नहीं था। इसलिए यह तो मैं शुरूसे ही सोचा करता था कि छापे-खानेका काम जाननेवाले किसी आदमीको उनके साथ कर सकू तो अच्छा हो। इस बीच प्लेग फैला और मदनजीत ऐसे काममें तो बहुत कुशल और निभंय थे। इसलिए उन्हें रोक लिया। इसमें वेस्ट जब हमारी सहायता करनेको तैयार हो गये तो मैंने इस अनपेक्षित प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्हें यह समझा दिया कि उन्हें केवल प्लेगके दिनोंके लिए नहीं, बल्कि सदाके लिए जाना होगा। इसीसे उनकी उपर्युक्त प्रकारकी रिपोर्ट मिली।

पाठक जानते हैं कि अखवार और छापाखाना अंतमे फिनिक्स गये। वहा वेस्टको माहवार १० पाँडके बदले ३ ही पाँड दिये जाने लगे। इन सारे परिवर्तनोमे उनकी पूरी सम्मति थी। मैंने एक दिन भी उनको इसकी चिंता करते नही देखा कि उनकी आजीविका कैसे 'चलेगी। उन्होने धर्मशास्त्र नही पढ़ा था, फिर भी मैं उन्हें अत्यन्त धार्मिक मनुष्यके रूपमे जानता हूँ। वह अतिशय स्वतंत्र स्वभावके मनुष्य थे। जिस चीजको जैसी मानते थे वैसी ही कहते थे। कालको कृष्णवर्ण न कहकर काला ही कहते। उनकी रहन-सहन अत्यन्त सादी थी। मुझसे परिचय होनेके समय ब्रह्मचारी थे और मैं जानता हूँ कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। कुछ वरस बाद वह मा-त्रापके दर्शन करने विलायत गये और वहांसे ब्याह करके लौटे। मेरी सलाहसे अपनी स्त्री, सास और कुंवारी बहनको साथ लाये। ये सभी फिनिक्समे निहायत सादगीसे और हर तरह हिंदुस्तानियोसे घुल-मिलकर रहते।

कुमारी एडा वेस्ट (या 'देवी बहन'—हम उन्हें इसी नामसे पुकारते थे) इस वक्त ३५ बरसकी रही होगी, पर अब भी कुमारी थी और बहुत ही पवित्र जीवन बिताती थी। फिनिक्समे रहनेवाले बच्चोको रखना, उन्हें अग्रेजी पढाना, सार्वजनिक रसोईमे खाना पकाना, घर साफ करना, हिसाब-किताब रखना, कपोज करना और छापेखानेके दूसरे काम करना—इन सारे कामोमे उन्होने कभी आना-कानी नही की। इस वक्त वे लोग फिनिक्समे नही है तो इसका कारण इतना ही है कि उनका छोटा-सा खर्च भी मेरे हिंदुस्तान-लौट आनेके बाद छापेखानेके उठाये नही उठ सका। वेस्टकी सासकी उम्र ८० के ऊपर होगी। वह सिलाईका काम बहुत अच्छा जानती है। अतः इस काममे यह वृद्धा

भी पूरी सहायता करती। फिनिक्समे उनको सब 'दादी' कहते और मानते। मिसेज वेस्टके बारेमे तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं। जब फिनिक्स आश्रमके बहुतसे लोग जेल चले गये तब वेस्ट-कुटुबने मगनलाल गांधीके साथ मिलकर फिनिक्सका काम-काज सम्हाला। अखबार और छापेखानेके बहुतसे काम वेस्ट करते। मेरी और दूसरोकी अनुपस्थितिमे डबनसे गोखलेके पास भेजे जानेवाले तार वही भेजते। अतमे जब वेस्ट भी पकड लिये गये (यद्यपि वह तुरत छोड दिये गये) तब गोखले घरराये और ऐड्ज तथा पियसनको भेजा।

दूसरे है मि० रिच। इनके बारेमे लिख चुका हूं। ये भी लडाईके पहले ही मेरे दफतरमे दाखिल हो गये थे। मेरे पीछे मेरा काम सम्हाल सकनेकी आशासे वह वैरिस्टरी पास करने विलायत गये, वहाकी कमेटी (साउथ अफ्रिकन ब्रिटिश इंडियन कमेटी) के कामकी सारी जिम्मेदारी उन्हीपर थी।

तीसरे है मि० पोलक। वेस्टकी तरह उनसे जान-बूझान भी अनायास भोजन-गृहमे हुई। वह भी क्षणरमे 'ट्रासवाल क्रिटिक'के उपसपादककी जगह छोडकर 'इंडियन ओपीनियन' मे आये। उन्होने लडाईके सिलसिलेमे इंगलैड और पूरे हिंदुस्तानमे भ्रमण किया, यह तो सभी जानते हैं। रिच विलायत गये तो मैने उन्हे फिनिक्ससे अपने दफतरमे बुला लिया। वहा आर्टिकिल्स दिये और फिर खुद भी वकील (एटर्नी) हो गये। पीछे ब्याह भी किया। मिसेज पोलकको भी हिंदुस्तान जानता है। इन वहनने लडाईके काममे अपने पतिका पूरा-पूरा हाथ बटाया। उसमे विघ्न कभी नहीं डाला। इस वक्त भी ये दपती असहयोगकी लडाईमे हमारे सहयोगी न होते हुए भी हिंदुस्तानकी यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं।

इनके बाद हर्मन केलनेवेकका नंबर आता है। इनका परिचय



भी लडाईके पहले ही हुआ । ये जातिके जर्मन है और अग्रेज-जर्मनोकी लडाई न छिड गई होती तो आज हिंदुस्तानमे होते । इनका हृदय विशाल है । इनके भोलेपनकी हद नही । इनकी भावनाए अति तीव्र है । इनका घघा शिल्पीका है । ऐसा एक भी काम नही जिसे करनेमें इन्होंने कमी आनाकानी की हो । जब मैंने जोहान्सवर्गकी अपनी गृहस्थी तोड दी तब हम दोनो साथ ही रहते थे । अतः मेरा खर्च वही उठाते । घर तो इनका अपना ही था । खानेके खर्चमे मैं अपना हिस्सा देनेको कहता तो नाराज होते और यह कहकर चुप कर देते कि मुझको फिजूल खर्चसि बचानेवाले तो तुम्ही हो । उनके इस कथनमे सचाई थी; पर यूरोपियनोंके साथ अपने निजी संबंधोके वर्णनका यह स्थान नही । गोखले जब जोहान्सवर्ग आये तब भारतीय जनताने उन्हें केलनबेकके बगलेमे ही उतारा । यह स्थान गोखलेको बहुत पसद आया । गोखलेको विदा करनेके लिए वह मेरे साथ जंजीवारतक गये । पोलकके साथ वह भी पकड़े गये । जेल गये और अतमे जब दक्षिण अफ्रीकासे विदा होकर और इंगलैडमे गोखलेसे मिलकर मैं हिंदुस्तान लौट रहा था तब केलनबेक मेरे साथ थे और लडाईके कारण ही उन्हें हिंदुस्तान आनेकी इजाजत नही मिली और सब जर्मनोके साथ वह भी इंगलैडमे नजरबंद रखे गये थे । युद्ध समाप्त होनेपर वह जोहान्सवर्गको वापस गये और अपना घघा फिर शुरू किया । जोहान्सवर्गमे जब सत्याग्रही कैदियोके कुटुवोका एक साथ रखनेका विचार हुआ तब केलनबेकने अपना ११०० बीघेका खेत भारतीय जनताको बिना किसी लगानके सौंप दिया । उसका विवरण पाठक आगे पढ़ेंगे ।

अब एक पवित्र वालिकाका परिचय दू । गोखलेने जो उसे प्रमाणपत्र दिया उसे पाठकोके सामने रखे बिना मुझसे

नहीं रहा जाता। इस बालिकाका नाम है मिस सोजा ब्लेजीन। गोखलेकी आदमियोंको पहचाननेकी शक्ति अद्भुत थी। डेलागोआ बेसे जंजीवारतक हमे बाते करनेको सुंदर और शांति-भरा अवसर मिल गया था। दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानी और गोरे नेताओंका भी उन्हें अच्छा परिचय हो गया था। इन सभी मुख्य पात्रोंके चरित्रका उन्होंने सूक्ष्म विश्लेषण कर दिया और मुझे अच्छी तरह याद है कि मिस ब्लेजीनको उन्होंने भारतीय और गोरे सबमे प्रथम स्थान दिया था। "इसके जैसा निर्मल अतःकरण और काममे एकाग्रता, दृढता मैंने बहुत ही थोड़े लोगोंमे पाई है और भारतीयोंके संग्राममे, किसी भी लाभकी आशाके बिना इतना सर्वापेक्ष देखकर मैं तो दंग रह गया। फिर इन सारे गुणोंके साथ उसकी होशियारी और चुस्तीने तो तुम्हारी इस लड़ाईमे उसे एक अमूल्य सेविका बना दिया है। मेरे कहनेकी जरूरत तो नहीं, फिर भी कह देता हू कि उसको तुम अवश्य अपनाना।"

एक स्काच कुमारिका मेरे यहाँ शाटंहेंड और टाइपका काम करती थी। उसकी वफादारी और नीतिमत्ता सीमारहित थी। इस जिंदगीमे मुझे कड़वे अनुभव तो बहुतरे हुए हैं, पर सुंदर चरित्र वाले इतने अधिक यूरोपियनों और भारतीयोंसे मेरा सम्पर्क हुआ है कि मैं इसको सदा अपना सौभाग्य ही मानता आया हूँ। इस स्काच कुमारिका मिस डिकके विवाहका अवसर आया तो मुझसे उसका वियोग हुआ। तब मि० केलनवेक मिस ब्लेजीनको लाये और मुझसे कहा—“इस लड़कीको इसकी माने मुझे सौपा है। यह चतुर है, ईमानदार है, पर इसमे नटखटपन और स्वतंत्रता बहुत अधिक है। शायद कुछ उद्धत भी कही जाय। तुमसे चल सके तो इसे रखो। मैं इसे तनखाहकी खातिर तुम्हारे पास नहीं रखता।” मैं तो अच्छे स्टेनो-टाइपिस्टको

२० पाउंड माहवार देनेको तैयार था। मिस श्लेजीनकी योग्यताका मुझे पता नहीं था। मि० केलनवैकने कहा—“फिलहाल तो इसे ६ पाउंड प्रति मास देना।” मुझे तो यह भंजूर होना ही चाहिए था।

मिस श्लेजीनके नटखटपनका अनुभव तो मुझे तुरंत ही हुआ; पर एक महीनेके अंदर ही उसने मुझे अपने वसमै कर लिया। रात और दिन चाहे जिस वक्त आप उसे काम दे सकते थे। उसके लिये न हो सकनेवाला या कठिन तो कुछ था ही नहीं। इस वक्त वह १६ बरसकी थी। मन्किक्लो और सत्याग्रहियोंका मन भी उसने अपनी सरलता और सेवाकी तत्परतासे हर लिया। दफ्तर और आन्दोलनकी नीतिकी यह कुमारिका चौकीदार और रखवाली करनेवाली हो गई। किसी भी कामके नीतियुक्त होनेके विषयमें उसको तनिक भी शका हो जाय तो पूरी आजादीके साथ मुझसे वहस करती और जबतक मैं उस वस्तुके नीतियुक्त होनेका उसे इतमीनान न करा देता तबतक उसको संतोष नहीं होता था।

जब लगभग सभी नेता पकड़ लिये गये और अकेले सेठ काछलिया ही बाहर रह गये तब इस वालिकाने लाखों रुपयेका हिसाब रखा और भिन्न-भिन्न प्रकृतिके मनुष्योंसे काम लिया। सेठ काछलिया भी उसका सहारा, उसकी सलाह लेते। हम सबके जेल चले जानेके बाद ‘इंडियन ओपीनियन’की कमान मि० डोकने सम्हाली। पर यह घबलकेश अनुभवी वृजुर्ग भी ‘इंडियन ओपीनियन’ के लिए लिखे हुए लेखोंको मिस श्लेजीनसे पास कराता। मुझसे उन्होंने कहा—“मिस श्लेजीन न होती तो नहीं जानता कि किस तरह अपने कामसे मैं अपने आपको भी संतोष दे पाता। उसकी सहायता और सुभावोका मूल्य मैं आंक ही नहीं सकता। अक्सर उसके सुभाये हुए सुधारोंको ठीक मानकर मैंने स्वीकार किया है।”

पठान, पटेल, गिरमिटिया हर वर्ग और हर उम्रके भारतीय उसे घेरे रहते, उसकी सलाह लेते और जैसा वह कहती वैसा करते।

दक्षिण अफ्रीकामे गोरे आमतौरसे रेलमे हिंदुस्तानियोंके साथ एक ही डब्बेमे नही बैठते। ट्रांसवालमे तो बैठनेको मना भी करते है। सत्याग्रहियोंका नियम तो तीसरे दरजेमें ही यात्रा करना था। यह होते हुए भी मिस श्लेजीन जान-बूझकर हिंदुस्तानियोंके ही डब्बेमे बैठती और रोकटोक करने-वाले गाडों के साथ लड भी पड़ती। मिस श्लेजीनको खुद भी गिरफ्तार होनेका हौसला था और मुझे डर था कि किसी दिन वह पकड़ न ली जाय; पर उसकी शक्ति, युद्धके विषयमे उसका पूरा ज्ञान और सत्याग्रहियोंके हृदयपर उसने जो साम्राज्य स्थापित कर लिया था, ट्रांसवाल सरकारको इन तीनों बातोंका पता होते हुए भी मिस श्लेजीनको गिरफ्तार न करनेकी अपनी नीति और अपनी भलमनसीका उसने त्याग नही किया।

मिस श्लेजीनने अपनी ६ पाँड मासिककी वृत्तिको बढ़ानेकी न कमी माग की और न कमी चाही। उसकी कितनी ही जरूरतोंका जव मुझे पता लगा तब मैंने उसको १० पाँड देना शुरू किया। इसे भी उसने बड़ी हिचकिचाइतसे स्वीकार किया। इससे अधिक लेनेसे तो उसने साफ इन्कार कर दिया—“मेरी जरूरत इससे ज्यादा है ही नहीं। फिर भी मैं अधिक लू तो जिस निष्ठासे आपके पास आई हू वह भूठी ठहरेगी।” इस जवाबसे उसने मुझे चुप कर दिया। पाठक शायद यह जानना चाहते हो कि मिस श्लेजीनकी पढाई क्या थी। केप यूनीवर्सिटीकी इंटरमीडियेट परीक्षा उसने पास की थी और गार्टहैड इत्यादि-मे अव्वल दरजेका प्रमाणपत्र प्राप्त किया था। लडाईके कामसे छुट्टी पानेके बाद वह उसी यूनीवर्सिटीकी ग्रेजुएट हुईं और इस वक्त ट्रांसवालके किसी सरकारी वालिका विद्यालयमे प्रधानाध्यापिका है।

हर्वट किचन एक शुद्ध हृदयके और बिजलीका काम जाननेवाले अग्रज थे। बीअर-युद्धमे उन्होंने हमारे साथ काम किया था। थोड़े दिनोतक वह 'इंडियन ओपीनियन' के सपादक भी रहे। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन किया।

ऊपर जिन लोगोके नाम गिनाये गये है वे तो ऐसे लोग है जिनसे मेरा निजी और निकटका सबध रहा। उनकी गिनती ट्रासवालके अग्रणी यूरोपियनोमे नही की जा सकती। फिर भी कह सकता हू कि उनसे हमे मदद भरपूर मिली। प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे मि० हास्किनका स्थान पहला है। वह दक्षिण अफ्रीकाके एसोसियेशन आव चेंबरस आव कामसके भूतपूर्व अध्यक्ष और ट्रासवालकी धारा सभाके सदस्य थे। उनका परिचय पहले करा चुका हू। उनकी अध्यक्षतामे सत्याग्रह-संग्राममे सहायक गौरोका स्थायी मडल भी स्थापित किया गया था। इस मडलने उससे जितनी हो सकी उतनी हमारी मदद की थी। लडाईका सच्चा रग जमनेके बाद स्थानीय सरकारके साथ वातचीतका व्यवहार कैसे रह सकता ? वह इसलिए नही कि हमने असहयोगका सिद्धान्त स्वीकार किया था, वल्कि सरकार ही अपने कानून तोडनेवालोके साथ वातचीतकी रस्म रखना पसद नही करती थी। इसलिए इस वक्त गौरोकी यह कमेटी सरकार और सत्याग्रहियोको जोडनेवाली कडी बन रही थी।

अलवर्ट कार्टराइटका परिचय भी पहले करा चुका हू। एक और भले पादरी थे जिनका हमारे साथ डोक जैसा ही सबध रहा और जिन्होंने हमारी बहुत मदद की। उनका नाम है रेवरेड चार्ल्स फिलिप। ये ट्रासवालमे अरसेतक 'कांग्रिगेशनल मिनिस्टर' थे। उनकी भली पत्नी भी हमारी सहायता करती। एक तीसरे प्रसिद्ध पादरी थे रेवरेड ड्यूडनी

इधु, जिन्होंने पादरीका काम छोड़कर पत्रका संपादकत्व स्वीकार किया था। वह ब्लोम फोटीनसे प्रकाशित होनेवाले 'फ्रेड' नामक दैनिक पत्रके संपादक थे। उन्होंने गोरोकी अवगणना और बिरोध मोल लेकर भी अपने पत्रमें हिंदुस्तानियोंकी हिमायत की थी। दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध वक्ताओंमें उनकी गिनती होती थी।

'प्रिटोरिया न्यूज' के संपादक मि० वेर स्टेंट भी इसी तरह स्वतंत्रतापूर्वक सहायता करनेवालोंमें से थे। एक बार प्रिटोरियाके टाउनहालमें गोरोने वहाके मेयरके सभापतित्वमें विराट सभाका आयोजन किया था। उसका उद्देश्य एशियावासियोंको कोसना और खूनी कानूनको सराहना था। वेर स्टेंटने अकेले ही इस सभामें इसके विरोधमें आवाज उठाई। सभापतिने उन्हे बैठ जानेको कहा, पर उन्होंने ऐसा करनेसे साफ इन्कार कर दिया। गोरोने उनके शरीरको हाथ लगानेकी भी धमकी दी, पर यह पुरुष सिंहके समान गर्जता हुआ उस सभामें अडिग रहा। अतमे प्रस्ताव पास किये विना ही सभा भंग कर देनी पड़ी !

मैं ऐसे दूसरे गोरोके नाम भी गिना सकता हूं जो किसी भी सभामें सम्मिलित नहीं हुए, मगर हमारी मदद करनेका एक भी अवसर नहीं चुके। पर अधिक न लिखकर केवल तीन बहनोका परिचय देकर ही इस प्रकरणको पूरा कर देना चाहता हू। उनमेंसे एक हैं मिस हॉबहाउस। वह लांड हॉबहाउसकी बेटा थी। यह बहन बोअर-युद्धमें लांड मिलरका विरोध करके भी दक्षिण अफ्रीका पहुंची थीं। जब लांड किचनरने दुनियाभरमें ख्यात या कहिए कि निन्दित अपना 'कॉन्सेट्रेशन कैम्प'\* ट्रांसवाल और फ्री स्टेटमें कायम

\*लड़नेवाले बोअरोकी स्त्रियोंको इकट्ठा करके कैदमें रखनेकी छावनी।

किया उस वक्त यह वीर महिला वोअर स्त्रियोमे अकेली फिरती और उन्हें दृढ़ रहने-की समझाती और बढ़ावा देती। वह मानती थी कि वोअर-युद्धके दिपथमे अंग्रेजोकी राजनीति सोलह आने अन्यायकी है। इसलिए स्व० स्टेडकी तरह वह उनकी हार मनाती और ईश्वरसे इसके लिए प्रार्थना करती। वोअरोकी इतनी बड़ी सेवा करनेके बाद जब उसे मालम हुआ कि जिस अन्यायके विरुद्ध वोअरोंने तलवार उठाई थी वही अन्याय वह अज्ञानवश भारतीयोंके साथ करनेको तैयार है तब उससे सहन न हो सका। वोअर जनता उसके प्रति बहुत सम्मान और प्रेम रखती थी। जनरल बोधाके साथ उसका अति निकटका संबंध था। उन्हीके यहाँ वह ठहरा करती थी। खूनी कानूनको रद्द करानेके लिए वोअर लोगोसे कहनेमे उसने कुछ उठा नहीं रखा था।

दूसरी वहन थी ऑलिव श्राइनर। इनके बारेमे मैं पांचवें प्रकरणमे लिख चुका हूँ। ये दक्षिण अफ्रीकाके प्रख्यात श्राइनर परिवारमे जन्मी हुई विदुषी महिला थी। श्राइनर नाम इतना प्रसिद्ध है कि जब उनका ब्याह हुआ तब उनके पतिको यही नाम ग्रहण करना पड़ा जिसमे श्राइनर-परिवारके साथ उनका संबंध दक्षिण अफ्रीकाके गोरोमे लुप्त न हो जाय। यह उनका कुछ मिथ्या स्वामिमान न था। मैं मानता हूँ कि उनके साथ मेरा अच्छा परिचय था। इन वहनकी सादगी और नम्रता भी वैसे ही उनका आभूषण थी जैसे उनकी विद्वत्ता। उनके हवशी नौकरों और तुद उनके बीच कोई अंतर है, यह उन्होंने कभी नहीं माना। अंग्रेजी भाषा जहाँ-जहाँ बोली जाती है वहाँ-वहाँ उनकी 'ट्रीम्स' नाम का पुस्तक आदरके साथ पढी जाती है। यह है तो गद्य, पर काव्यकी पक्षिमे रखी जाती है। उन्होंने और भी बहुतसी चीजें लिखी हैं। लेखनीपर इतना अधिकार होते हुए भी वह अपने

हाथ खाना पकाते, घरकी सफाई करते, वरतन माँजते शर्मती नहीं थी, न उससे परहेज करती थी। वह मानती थी कि यह उपयोगी शरीर-श्रम उनकी लेखन-शक्तिको मंद करनेके बदल उसे उत्तेजित करता है और भाषा तथा विचारोंको एक प्रकारका अभिजात्य और गाभीर्य प्रदान करता है। यह वहन भी दक्षिण अफ्रीकाके गोरोपर जो कुछ असर डाल सकती थी उस सबका उपयोग भारतीय पक्षका समर्थन करनेमें किया था।

तीसरी वहन थी मिस माल्टीनो । यह भी दक्षिण अफ्रीकाके पुराने घरानेकी वयोवृद्ध महिला थी। इन्होंने भी भारतीयोंकी अपनी शक्तिभर सहायता की।

पाठक पूछ सकते हैं कि इन सारे यूरोपियनोकी सहायताका फल क्या रहा ? इसका जवाब मैं यह दूंगा कि फल बतानेके लिए यह प्रकरण नहीं लिखा गया है। उनमेंसे कुछका काम ही, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, उसके फलका साक्षी रूप है ? पर इन हितेच्छु गोरोकी सारी सहायता-सहानुभूतिका नतीजा क्या निकला, यह सवाल पैदा हो सकता है। यह लड़ाई ही ऐसी थी कि उसका फल उसमें ही समाया हुआ था। यह लड़ाई थी स्वावलंबन, आत्म-बलि और भगवानपर भरोसा रखनेकी।

गोरे सहायकोके नाम गिना जानेका एक हेतु तो यह है कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें उनसे मिली हुई सहायताका उल्लेख न हो तो वह इस इतिहासकी कमी मानी जायगी। मैंने सभी गोरे सहायकोके नाम नहीं दिये हैं। पर जितने दिये हैं उतनेसे सहायक मात्रके प्रति हम अपनी कृतज्ञता इस प्रकरणमें प्रकट कर देते हैं। दूसरा कारण है इस सिद्धान्तमें सत्याग्रही रूपसे अपनी श्रद्धा प्रकट करना कि यद्यपि कर्मविशेषका परिणाम हम स्पष्टरीतिसे नहीं देख सकते हों, फिर भी शुद्ध चित्तसे किये हुए कर्मका फल शुभ ही होता



है, फिर वह दृश्य हो या अदृश्य। इसका तीसरा सबल कारण है यह दिखाना कि सदुद्योग ऐसी अनेक प्रकारकी बुद्ध और निस्स्वार्थ सहायताएँ अपनी ओर बनायास सचीव लेते हैं। इस प्रकरणमें यह बात अवतक समझा नहीं दी गई थी तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि सत्याग्रहकी लड़ाईमें सत्यके पालनको ही अगर हम प्रयास मानें तो इसे छोड़कर और कोई भी प्रयास इन यूरोपीय सज्जनोंकी सहायता पानेके लिए नहीं किया गया। युद्धके अतर्निहित बलसे ही वे आकृष्ट हुए थे।

: २४ :

### और भीतरी कठिनाइयाँ

२१ वें प्रकरणमें हमें कुछ भीतरी कठिनाइयोंका अंदाजा हो गया है। मुझपर हमला होनेके समय मेरे बाल-बच्चे फिनिक्समें रहते थे। हमलेकी खबरसे उनका उद्विग्न होना स्वाभाविक था; पर मुझे देखनेके लिए पैसा खर्च करके फिनिक्ससे जोहान्सबर्ग दौड़े आए, यह तो मुमकिन नहीं था। इसलिए अच्छा हो जानेपर मुझीको जाना था। नेटाल और ट्रांसवालके बीच मेरा आना-जाना, कामके सिलसिलेमें हुआ ही करता था। समझौतेके वारेमें नेटालमें भी कुछ भ्रम फैल रहा था, इससे मैं अनजान नहीं था। मेरे और दूसरोंके पास जो चिट्ठियाँ आती थीं उनसे मुझे इसका पता था और 'इंडियन ओपेनिंग'को जो गहरे बटाक्ष करनेवाले पत्र मिले थे उनका बंडल तो मेरे ही पास था। यद्यपि सत्याग्रह अवतक ट्रांसवालके भारतीयोंको ही करना था तो भी नेटालके भारतीयोंकी सम्मति और सहानुभूति तो प्राप्त करनी

ही थी। ट्रांसवालके भारतीय ट्रांसवालके निमित्तसे सारे दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाई लड़ रहे थे। इससे नेटालमें पैदा हुई गलतफहमी दूर करनेके लिए भी मेरा डबन जाना जरूरी था। अतः मौका मिलते ही मैं वहाँ गया।

डबनके हिंदुस्तानियोंकी आम सभा की गई। कुछ मित्रोंने मुझे चेता दिया था कि इस सभामें तुमपर हमला होनेवाला है। इसलिए या तो तुम सभामें जाओ ही नहीं या अपने बचावका कुछ उपाय कर लो। दो में से एक भी बात मुझसे हो सकनेवाली नहीं थी। नौकरको मालिक बुलाये और वह डरसे न जाये तो उसका सेवक धर्म गया और मालिककी सजासे डरे तो वह सेवा कैसी? जनताकी सेवा सेवाकी खातिर करना खांडेकी धारपर चलना है। लोकसेवक स्तुति लेनेको तैयार हो जाता है तो निंदासे कैसे भाग सकता है? अतः मैं तो नियत समयपर सभामें पहुंच ही गया। सभामौता कैसे हुआ, यह समझाया। जो सवाल किये गये उनके जवाब भी दिये।

यह सभा रातके कोई आठ बजे हुई थी। काम लगभग पूरा हो चला था कि इतनेमें एक पठान अपनी लाठी लेकर मंचपर चढ़ आया। इसी वक्त बतियाँ भी बुझ गईं। मैं स्थिति समझ गया। समापति सेठ दारुद मुहम्मद अपनी मेजपर चढ़ गये और लोगोंको समझाने लगे। मेरा बचाव करनेवालोंने मुझे घेर लिया। मैंने अपने बचावका कोई उपाय नहीं किया था। पर मैंने पीछे देखा कि जिन्हें हमलेका डर था वे तो सब तरहसे तैयार होकर आये थे। उनमेंसे एक तो अपनी जेबमें तमंचा रखकर आये थे और उसका खाली फौर भी किया। इस बीच पारसी सस्तमजी, जिन्होंने हमलेकी तैयारी देख ली थी, विद्युत वेगसे दौड़कर थानेपर पहुंचे और पुलिस सुपरिटेण्डेंट अलेक्जेंडरको खबर दी। उन्होंने पुलिसका

एक दस्ता भेज दिया और पुलिस गडबडमे रास्ता करके मुझे अपने बीचमे कर पारसी रस्तमजीके धहा ले गई ।

दूसरे दिन सबेरे पारसी रस्तमजीने डर्वनके पठानोको झुट्टा करके कहा कि आप लोगोंको गांधीजीसे जो कुछ शिकायते हो उन्हे उनके सामने रखे । मैं उनसे मिला । उन्हें ज्ञात करनेकी कोशिश की, पर मैं नही समझता कि मैं उन्हे क्षान्त कर सका । वहमकी दवा दलील देने या समझानेसे नही हो सकती । उनके मनमे यह बात जम गई थी कि मैंने कौमको घोखा दिया है और जबतक यह मैल उनके दिमागसे न निकल जाय, मेरा समझाना बेकार था ।

मैं उसी दिन फिनिक्स पहुंचा । जिन मित्रोंने पिछली रात मेरी रक्षा की थी उन्होने मुझे अकेले भेजनेसे साफ इन्कार कर दिया और मुझे सुना दिया कि हम भी चलकर फिनिक्समे डेरा डालेंगे । मैंने कहा—“आप लोग मेरी 'ना' को अनसुनी करके आना चाहेंगे तो मैं आपको रोक नही सकता, पर वहा तो जंगल है और वहा बसनेवाले हम लोग आपको भोजन भी न दे तो आप क्या करेंगे ?” उनमेरो एकने जवाब दिया—“हमे यह डर दिखानेकी जरूरत नही । अपना प्रबंध हम खुद कर लेंगे । पर जबतक हम सिपाहीगिरी करते होंगे तबतक आपका भडार लूटनेसे हमे कौन रोकने वाला है ?”

इस प्रकारका विनोद करते हुए हम फिनिक्स पहुंचे । इस रक्षकदलका नेता जैक मुडली नामका व्यक्ति था, जो हिंदुस्तानियोमें काफी मशहूर था । उसका जन्म नेटालमे तामिल मां-बापके घर हुआ था । उसने घूसेबाजी (बाक्सिंग) की खास तौरसे तालीम हासिल की थी और वह और उसके साथी भी मानते थे कि घूसेबाजीमे दक्षिण अफ्रीकामे गोरा या काला कोई भी जैक मुडलीका मुकाबला नही कर सकता । दक्षिण अफ्रीकामें जब बारिश न हो रही हो तब मैं बिल्कुल

बाहर खुलेमें सोना । अनेक वर्षोंसे मेरी यह आदत थी । इसमें कोई फेरफार करनेको मैं इस वक्त तैयार नहीं था । इससे स्वीकारित रखकदलने रातमें मेरी छाटके पास पहरा देनेका निश्चय किया । गोकि फिनिक्समें मैंने इस दलसे मजाक किया था और उसे आनेसे रोकनेकी भी कोशिश की थी, फिर भी मुझे अपनी इतनी कमजोरी कबूल करनी होगी कि जब उन लोगोंने पहरा देना शुरू किया तो मैंने कुछ अधिक निर्भयता अनुभव की और मनमें यह भी सोचा कि अगर ये लोग न आये होते तो क्या मैं इतना ही निर्भय होकर सो सकता ? मुझे यह भी जान पड़ता है कि किसी आवाजसे मैं अवश्य चौक उठता था ।

मैं मानता हूँ कि ईश्वरपर मेरी अविचल श्रद्धा है । मेरी बुद्धि बरसोंमें इस बातको भी स्वीकार करती आ रही है कि मृत्यु जीवनमें एक बड़ा परिवर्तन मात्र है और चाहे जब आये, सदा स्वागत करने योग्य है । दिलमेंसे मौतके और दूसरे डरोंको निकाल देनेका मैंने ज्ञानपूर्वक महाप्रयत्न किया है । फिर भी अपने जीवनमें ऐसे अवसर याद कर सकता हूँ जब मृत्युसे मिलनेका विचार करते हुए मैं वैसा उल्लसित नहीं हो सका जैसा अरसेसे बिछुड़े हुए मित्रसे मिलनेकी बात सोचनेपर हम हो जाया करते हैं । इस प्रकार सबल होनेका महाप्रयत्न करते हुए भी मनुष्य अक्सर निर्बल बना रहता है और बुद्धिसे गृहीत ज्ञान अनुभवका अवसर आनेपर बहुत काम नहीं आता । फिर जब उसको बाहरका सहारा मिलता है और वह उसको स्वीकार कर लेता है तब तो वह अपना अन्तर्बल अधिकांशमें खो देता है । सत्याग्रहीको इस प्रकारके भयोंसे सदा बचते रहना चाहिए ।

फिनिक्समें मैंने एक ही काम किया । गलतफहमी दूर करनेके लिए मैंने खूब लिखना शुरू किया । संपादक

और शंकाशील वाचक वर्गके बीच एक कल्पित सवाद लिख डाला । जो-जो शंकाएँ और आक्षेप मँने सुन रखे थे उन सबपर जितनी तफसीलके साथ मुँभसे हो सका विचार किया । मैं मानता हूँ कि इसका फल अच्छा ही हुआ । यह तो प्रकट हो गया कि उन लोगोंके दिलमें गलतफहमी जड़ न जमा सकी, जिनको अगर वह सचमुच हुई होती या बनी रहती तो दुःखद परिणाम होता । समझौतेको मानना न मानना केवल ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोंका काम था । अतः उनके कामसे उनकी और नेता तथा सेवकके रूपमें मेरी भी परीक्षा होनेवाली थी । बहुत ही थोड़े हिंदुस्तानी रहे होंगे जिन्होंने अपनी इच्छासे परवाना नहीं ले लिया हो । इतने अधिक लोग परवाना लेने जाते थे कि परवाना देनेवाले अहलकारोंको दम मारनेकी फुरसत भी नहीं मिलती थी । भारतीय जनताको समझौतेकी शर्तोंमेंसे जिनका पालन करना था उनका पालन उसने बड़ी शीघ्रतासे कर दिया । सरकारको भी यह बात कबल करनी पड़ी । मैंने यह भी देखा कि गलतफहमियोंने यद्यपि उग्र रूप ग्रहण कर लिया था, फिर भी उनका क्षेत्र बहुत ही सकुचित था । कुछ पठानोंने जब कानून अपने हाथमें ले लिया और बल-प्रयोगका रास्ता पकड़ा तब भारी खलबली मच गई, पर इस खलबलीका विश्लेषण करने बैठिये तो मालूम हो जायगा कि उसकी कोई बुनियाद नहीं होती और अकसर तो वह केवल क्षणिक होती है । पर यह होते हुए भी उसका जोर आज भी दुनियामें कायम है, क्योंकि खून-खराबीसे हम काप उठते हैं । पर हम धीरजके साथ विचार करने बैठे तो तुरंत मालूम हो जाय कि कापनेका कुछ भी कारण नहीं । मान लीजिये कि मौर आलम और उसके साथियोंके प्रहारसे मेरा गरीर जखमी होनेके बदले नष्ट हो गया होता और साथ ही यह भी मान लीजिये कि कौम

बुद्धिपूर्वक अनुद्विग्न और शांत रही होती, मीर आलम अपनी बुद्धि-का अनुसरण करते हुए दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता था, यह समझकर उसने उसके प्रति मित्रभाव और क्षमाभाव रखा होता तो इससे कौमकी कोई हानि नहीं हुई होती, बल्कि अतिशय लाभ ही हुआ होता। कारण यह है कि कौममें तो उस दशामे गलतफहमी-का अभाव होता और वह दूने जोशसे अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहती और अपने कर्तव्यका पालन करती। मुझे तो विशुद्ध लाभ होता, क्योंकि सत्याग्रही इससे अधिक मंगल-परिणामकी तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि अपने सत्यका आग्रह रखते हुए, सत्याग्रहके प्रसंगमें ही, वह अनायास मृत्यु प्राप्त करे।

ऊमर दी हुई दलीले सत्याग्रहकी जैसी लडाईपर ही लागू हो सकती है, क्योंकि उसमें वैर-भावके लिए स्थान ही नहीं। आत्मशक्ति या स्वावलंबन ही एकमात्र साधन होता है। उसमें एकको दूसरेका मुह ताकते बैठे रहना नहीं होता। उसमें कोई नेता नहीं होता, इसलिए कोई सेवक भी नहीं, अथवा सभी नेता और सभी सेवक होते हैं। इसलिए प्रौढ-से-प्रौढ पुरुषकी मृत्यु भी युद्धको शिथिल नहीं करती, बल्कि उसका वेग और बढ़ा देती है।

यह सत्याग्रहका शुद्ध और मूल स्वरूप है। अनुभवमें हमें इसके दर्शन नहीं होते, क्योंकि सभी वैर त्याग दे यह नहीं होता। सब सत्याग्रहका रहस्य समझते हों यह भी अनुभवमें देखनेमें नहीं आता। थोड़ोंको देखकर बहुसंख्यक उनका मूढ अनुकरण करते हैं। फिर सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रहकी ट्रांसवालका प्रयोग तो टाल्सटायके कथनानुसार पहला ही माना जायगा। मैं खुद शुद्ध सत्याग्रहका ऐतिहासिक उदाहरण नहीं जानता था। मेरा इतिहास-ज्ञान नगण्य है। इसलिए इस विषयमें मैं कोई पक्की राय कायम नहीं कर सकता। पर सच पूछिये तो ऐसे ऐतिहासिक उदाहरणोंसे

हमारा कोई संबंध नहीं। सत्याग्रहके मूलतत्त्वको आप स्वीकार कर ले तो आप देखेंगे कि जो फल मैंने बताया है वे उसमें पहले हीसे मौजूद हैं। यह दलील देकर हम इस अमूल्य वस्तुको त्याग नहीं सकते कि इसका आचरण करना कठिन या अशक्य है। शस्त्रबलके दूसरे प्रयत्न तो हजारों वरससे होते ही आ रहे हैं। उसके कठवे फल तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। भविष्यमें उससे मीठे फल उपजनेकी आशा थोड़ी ही रखी जा सकती है। अधकारमेंसे अगर उजाला उत्पन्न किया जा सकता हो तो वर-भावसे प्रेम-भाव भी प्रकट किया जा सकता है।

---

# दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

द्वितीय खण्ड





## प्रस्तावना

पाठक जानते हैं कि दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास उप-वासादि कारणोंसे मैं जारी न रख सका था। उसे अब इस अकस्मि फ़िर शुरू करता हूँ। मुझे उम्मीद है कि अब मैं उसे निर्विघ्न पूरा कर सकूँगा।

इस इतिहासकी स्मृतियोंपरसे मैं देखता हूँ कि हमारी आजकी स्थितिमें एक भी चीज़ ऐसी नहीं है जिसका अनुभव, छोटे पैमानेपर, दक्षिण अफ्रीकामें मुझे न हुआ हो। भारतमें यही उत्साह, यही एका, यही आग्रह, मध्यमें यही नैराश्य, यही अशुचि, आपसमें झगडा और द्वेषादि, ऐसा होते हुए भी मूट्ठीभर लोगोंमें अविचल श्रद्धा, दृढता, त्याग, सहिष्णुता, वैसे ही अनेक प्रकारकी सोची-अनसोची कठिनाइयाँ। हिंदुस्तानकी लड़ाईका अतिम काल अभी बाकी है। इस आखिरी मजिलकी मैं तो जो स्थिति दक्षिण अफ्रीकामें अनुभव कर चुका हूँ उसकी ही आशा यहाँ भी रखता हूँ। दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईका अतिम काल पाठक अभी आगे देखेंगे। उसमें कैसे बिना भागी मदद हमारे पास चली आई, लोगोंमें कैसे अनायास उत्साह उपजा और अतमें हिंदुस्तानी कौमकी संपूर्ण विजय किस प्रकार हुई, यह सब पाठक देखेंगे।

---

‘यह इतिहास ‘नवजीवन’ में धारावाहिक रूपसे प्रकाशित हुआ था।—अनु०

इस प्रकार मेरा दृढ विश्वास है कि जैसा दक्षिण अफ्रीकामे हुआ वैसा ही यहा भी होगा । कारण यह कि तपश्चर्यापर, सत्यपर, अहिंसापर मेरी भ्रुविचल श्रद्धा है । मैं इस बातको अक्षरशः सत्य मानता हू कि सत्यका पालन करनेवालेके सामने सपूर्ण जगत्की समृद्धि रहती है और वह ईश्वरका साक्षात्कार करता है । अहिंसाके साध्निध्यमें वैरभाव टिक नहीं सकता, इस बचनको भी मैं अक्षरशः सत्य मानता हू । कष्ट सहन करनेवालोंके लिए कुछ भी अशक्य नहीं होता, इस सूत्रका मैं उपासक हू । इन तीनों वस्तुओंका मेल मैं कितने ही सेवकोमे पाता हू । उनकी साधना कभी निष्फल नहीं होती, मेरा यह निरपवाद अनुभव है ।

पर कोई कह सकता है कि दक्षिण अफ्रीकामें पूरी जीत होनेका अर्थ तो इतना ही है कि हिंदुस्तानी जैसे थे वैसे ही बने रहे । ऐसा कहनेवाला अज्ञानी कहलायेगा । दक्षिण अफ्रीकामे लडाईं न लड़ी गई होती तो आज दक्षिण अफ्रीकासे ही नहीं, बल्कि सारे अंग्रेजी उपनिवेशोंसे हिंदुस्तानियोंके कदम उठ गये होते और किसीने उनकी खोज-खबर भी न ली होती । पर यह उत्तर यथेष्ट या सतोषजनक नहीं माना जायगा । यह दलील भी दी जा सकती है कि सत्याग्रह न किया गया होता और समझाने-बुझानेसे जितना काम हो सकता था उतना काम लेकर हम बैठ गये होते तो आज जो स्थिति है वह नहीं होती । यह दलील यद्यपि सचाईसे खाली है, फिर भी जहा केवल दलीलो और अटकलोंसे ही काम लिया जाता हो वहा किसकी दलीले और किसके अनुमान अच्छे हैं, यह कौन कह सकता है ? अटकले लगानेका हक सभीको है । जिसका जवाब नहीं दिया जा सकता, जिसका खडन नहीं किया जा सकता, वैसी बात तो यह है कि जो वस्तु जिस शस्त्रके द्वारा प्राप्त की जाती है, उसकी रक्षा उसी हथियारसे हो सकती है ।

‘कावे अर्जुन लुटियो वही धनुष वही बाण’<sup>१</sup>

जिस अर्जुनने शिवजीको हराया, कौरवोंका मद उतारा, वही अर्जुन जब कृष्णरूपी सारथिसे रहित हुए तब एक दस्यु दलको अपने गाडीव धनुषसे न हरा सके । यही स्थिति दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंकी है । अभी तो वे लड़ ही रहे हैं । पर जिस सत्याग्रहके द्वारा उन्होंने लड़ाई जीती थी उस हथियारको वे खो बैठे हो तो अतमे वे जीती हुई बाजी हाथ जायगे । सत्याग्रह उनका सारथि था और वही सारथि उनकी सहायता करनेमें समर्थ है ।

नवजीवन  
५ जुलाई १९२५ }

—मोहनदास करमचंद गांधी

<sup>१</sup>अनर्जुके हाथोंमें वही धनुष और वही बाण था; पर डाकूओंने उन्हें लूट लिया ।



# दक्षिण अफ्रीकाका सत्याग्रह

## द्वितीय खण्ड

: १ :

### जनरल स्मट्सका विश्वासघात (१)

पाठकोने भीतरी कठिनाइया तो कुछ-कुछ देख ली। उनके वर्णनमे अधिकांशतः मुझे आत्मकथा ही देनी पड़ी। यह अनिवार्य था, क्योंकि सत्याग्रहसे संबंध रखनेवाली मेरी कठिनाइयां सत्याग्रहियोंकी भी कठिनाइयां हो गईं। अब हम बाहरी कठिनाइयोंकी कथा फिरसे उठाते हैं।

इस प्रकरणका शीर्षक लिखते हुए मुझे धर्म आती है और यह प्रकरण लिखते हुए भी। इसलिए कि इसमे मनुष्य-स्वभावकी दृढ़ताका वर्णन किया गया है। जनरल स्मट्स १९०८ मे भी दक्षिण अफ्रीकामे तो योग्यतम नेता माने जाते थे, आज दुनियामे नही तो ब्रिटिश साम्राज्यमे तो वह ऊंचे दरजेके कार्यकुशल पुरुष गिने जाते हैं। उनकी शक्ति बहुत बड़ी है, इस विषयमे मेरे मनमे तनिक भी शंका नही। वह जैसे कुशल वकील है वैसे ही कुशल सेनापति है और राजकाज चलानेमे भी वैसे ही कुशल है। दक्षिण अफ्रीकामे दूसरे कितने ही राजनीतिज्ञ आये और गये, पर १९०७से आजतक वहाँके राजकाजकी दागडोर यह पुरुष अपने हाथमे रखे हुए है और आज भी दक्षिण अफ्रीकामे एक भी आदमी ऐसा नही है जो उनके मुकाबलेमे खड़ा रह सके। ये पक्तियां

लिखते समय मुझे दक्षिण अफ्रीका छोड़े ९ वरस हो चुके हैं। मैं नहीं जानता कि आज दक्षिण अफ्रीका उन्हें किस विशेषणसे याद करता है! जनरल स्मट्सका घरका (क्रिश्चियन) नाम जॉन है और दक्षिण अफ्रीकाके लोग उन्हें 'स्लिम जेनी' कहकर पुकारते हैं। 'स्लिम'का अर्थ यहा है 'जो सरक जाय' 'जो पकडमे न आये।' हिंदीमे उससे मिलते-जुलते अर्थका धूर्त या भीठा विशेषण व्यवहार करे तो विपरीत अर्थमे चालाक शब्द काममे ला सकते हैं। अनेक अंग्रेज मित्रोंने मुझसे कहा था—जनरल स्मट्ससे होशियार रहना। यह वडा काइया है। बात कहकर पलटते उसे तनिक भी देर नहीं लगती। अपने शब्दोका अर्थ वही जान सकता है। अकसर वह इस तरह बोलता है कि दोनो पक्ष उसके शब्दोका वही अर्थ कर सकते हैं जो उन्हें प्रिय होता है। फिर जब मौका आता है तब वह दोनों पक्षके अर्थको किनारे रखकर अपना तीसरा ही अर्थ दिखाता है, उसको अमलमे लाता है और उसके समर्थनमे ऐसी चतुराईभरी दलीले देता है कि दोनों पक्ष क्षणभर तो यह मानने लगते हैं कि भूल हम हीसे हुई होनी चाहिए। जनरल स्मट्स जो अर्थ कर रहे है वही सही अर्थ है। ऐसे ही एक विषयका वर्णन मुझे इस प्रकरणमे करना है। वह घटना जिस समय घटित हुई उसी वक्त वह विश्वासघात मानी और कही गई। आज भी भारतीय समाजकी दृष्टिसे उसको मैं विश्वासघात मानता हू। फिर भी इस शब्दके सामने मैंने जो प्रश्नचिह्न रखा है उसका कारण यह है कि उनका काम वास्तवमे शायद इरादेके साथ किया हुआ विश्वासघात न हो। जहा घातका इरादा न हो वहा विश्वासका भंग कैसे माना जा सकता है? १९१३-१४ में मुझे जनरल स्मट्सका जो अनुभव हुआ, उसे मैंने उस वक्त कडवा नहीं माना था और आज जब उसपर कुछ अधिक तटस्थ दृष्टिसे

विचार करता हूँ तब भी उसे कड़वा नहीं मान सकता। इसलिए यह सर्वथा संभव है कि १९०८ में भारतीयोंके साथ उन्होंने जो व्यवहार किया वह ज्ञानपूर्वक किया हुआ विश्वास-भंग न हो।

इतनी प्रस्तावना मैंने इसलिए दी है कि जनरल स्मट्सके साथ न्याय कर सकूँ और उनके नामके साथ विश्वासघात शब्दका जो मैंने व्यवहार किया है उसका, और जो कुछ इस प्रकरणमें मुझे कहना है उसका भी बचाव हो सके। पिछले प्रकरणमें हम देख चुके कि भारतीयोंने ऐच्छिक परवाने इस रीतिसे निकलवाँ लिये जिससे ट्रांसवालकी सरकारको सतोप हो जाय। अब खूनी कानूनको रद्द करना उक्त सरकारका फर्ज था। वह यह कर देती तो सत्याग्रहकी लडाईं बंद हो जाती। इसका अर्थ यह नहीं है कि ट्रांसवालमें हिंदुस्तानियोंके खिलाफ जितने कानून बने थे वे सभी रद्द हो जायें या हिंदुस्तानियोंके सारे दुःख दूर हो जायें। उन्हें दूर करनेके लिए तो जैसे पहले वैध आंदोलन किया जाता था वैसे करना ही था। सत्याग्रह तो खूनी कानूनरूपी नये डरावने वादलको हटाने भरके लिए था। उस कानूनको स्वीकार करनेमें कौमकी जितलत होती थी और पहले ट्रांसवाल और अंतमें सारे दक्षिण अफ्रीकामें उसकी हस्ती ही मिट जाती थी। पर खूनी कानून रद्द करनेके बजाय जनरल स्मट्सने नया ही कदम उठाया। उन्होंने जो विल प्रकाशित किया उसके जरिये खूनी कानूनको बहाल रखा और अपनी मर्जीसे लिए हुए परवानेको कानूनके अनुकूल माना। पर विलके अंदर एक दफा ऐसी रख दी जिससे जिसने परवाना ले लिया हो उसपर खूनी कानून लागू न हो। इसके मानी यह होते थे कि एक ही उद्देश्यवाले दो कानून साथ-साथ चलते रहें और नये आनेवाले या वादमें परवाना लेने-वाले हिंदुस्तानी भी खूनी कानून द्वारा शासित हों।



यह विल पढ़कर मैं तो दिरमूढ हो गया। कौमको मैं क्या जवाब दूंगा ? जिन पठान भाइयोंने पिछली मध्यरात्रिकी सभामें मुझपर कठोर आक्षेप किये थे उनको कैसी वदिया खुराक मिली ? पर मुझे यह बताना चाहिए कि सत्याग्रहपर मेरा विश्वास इस धक्केसे ढीला न होकर और दृढ़ हो गया। अपनी कमेटीकी बैठक बुलाई और उसे स्थिति समझाई। कुछने मुझे ताना भी मारा—“हम तो आपसे कहते आ रहे हैं कि आप बहुत भोले हैं। जो कुछ भी कोई कह दे उसे सब भान लेते हैं। आप अपने निजी कामोंमें ही भोलापन बरतते तब तो अधिक हानि न थी; पर कौमी कामोंमें जो अप्र यह सरलताका व्यवहार करते हैं उससे कौमको नुकसान उठाना पड़ता है। अब पहलेका-सा जोश फिर जगना हमें तो बहुत कठिन दिखाई देता है। अपनी कौमको क्या आप नहीं जानते ? वह तो सोडावाटरकी बोटल है। क्षणभरके लिए उफान आता है, उसका उपयोग कर लेना होता है। यह उफान ठंडा हुआ और सब गया।” इस गव्व-बाणमें विप न था। ऐसी बातें मैं दूसरे मीकोपर भी सुन चुका था। मैंने हँसकर जवाब दिया—“जिसे आप मेरा भोलापन कहते हैं वह तो ऐसी चीज है जो मेरे स्वभावका एक अंग हो गया है। यह भोलापन नहीं, विश्वास है और विश्वास रखना तो मेरा और आपका सबका धर्म है। फिर भी यदि आप इसे दोष मानते हो, पर अगर मेरी सेवासे कुछ लाभ होता हो तो मेरी खोट-खामीसे होनेवाली हानि भी आपको सह्य होनी चाहिए। आपकी तरह मैं यह भी नहीं मानता कि कौमका जोश सोडा-वाटरके उफान-जैसा है। कौममें मैं और आप भी हैं। मेरे जोशको अगर आप यह विशेषण दे तो मैं इसको अवश्य अपना अपमान मानूंगा। और मुझे विश्वास है कि आप अपनेको तो अपवादरूप ही मानते होंगे और वसा न मानते हों

और अपने पैमानेसे कौमको नापते हों तो आप कौमका अपमान करते हैं। ऐसे महान् संग्रामोमे ज्वार-भाटा तो आया ही करता है। आपने कितनी ही सफाई कर ली हो, पर विपक्षी विश्वासघात करना ही चाहें तो उसे कौन रोक सकता है ? इस मंडलमे ऐसे कितने ही लोग हैं जो मेरे पास प्रामिसरी नोट नालिश करनेके लिए लाते हैं। दस्तखत करके अपना हाथ कटा देनेसे अधिक सावधानी और क्या हो सकती है ? फिर भी ऐसे लोगोंपर भी अदालतमे नालिश दायर करनी पड़ती है। वे अनेक प्रकारके वचाव पेश करते हैं, डिगिरियां होती हैं। कृकियां निकलती हैं। ऐसी अयोग्य घटनाओके लिए कौन-सी सावधानी रखी जा सकती है, जिससे उनकी आवृत्ति न हो ? अत मेरी सलाह तो यही है कि जो उलझन हमारे सामने आ गई है उसे धीरजके साथ सुलझाए। हमें फिर लडना ही पडे तो हम क्या कर सकते हैं, यानी दूसरे क्या करेगे, इसको सोचे बिना हरएक सत्याग्रही खुद क्या करेगा या कर सकता है—इसीका विचार करना है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम इतने लोग सच्चे रहे तो दूसरे भी वैसे ही रहेंगे, या उनमे कोई कमजोरी आ गई हो तो हमारी मिसाल लेकर वे उसको दूर कर सकेंगे।”

मेरा खयाल है कि जिन लोगोने फिर लडाईं चल सकनेके बारेमे नेक इरादेसे तानेके रूपमे शका प्रकट की थी वे समझ गये। इस अवसरपर सेठ काछलिया दिन-दिन अपना जौहर दिखा रहे थे। सभी विषयोमे कम-से-कम बोलकर अपना निश्चय बता देते और फिर उसपर अटल रहते। मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आता जब उन्होंने कमजोरी दिखाई हो या अतिम परिणामके विषयमे शंका ही प्रकट की हो। ऐसा मौका भी आया जब ईसप मिया तूफानी समुद्रमे कौमकी नैयाकी पतवार पकडे रहनेको तैयार न थे।

उस वक्त सबने एकमतसे कर्णधारके रूपमे काछलियाका स्वागत किया और तबसे अतिम घडीतक उन्होने पतवार हाथसे न छोड़ी। जो कष्ट-कठिनाइया बिरले ही सहन कर सकते है उन्हे उन्होंने निश्चित और निर्भय होकर सहन किया। लडाईं आगे बढी तो एक ऐसा अवसर आया जब कितनोके लिए जेलमे जाकर बैठ जाना आसान काम था, आराम था, पर बाहर रहकर सब बातोको बारीकीसे देखना, उनका प्रबन्ध करना, बहुतोको समझाना, यह सब कही अधिक कठिन था।

ऐसा अवसर भी आया कि सेठ काछलियाके पावनेदारोने उन्हे अपने शिकजेमे कस लिया।

बहुतसे भारतीय व्यापारियोका रोजगार गोरे व्यापारियोकी कोठियोपर अवलंबित था। वे लाखो रुपयेका माल बिना किसी जमानतके हिंदुस्तानी व्यापारियोके हाथ उधार बेच देते थे। भारतीय व्यापारियोका इतना विश्वास संपादन कर लेना भारतीय व्यापारकी सामान्य प्रामाणिकताका एक सुंदर प्रमाण है। सेठ काछलियापर भी बहुतसी गोरी कोठियोका पावना था। सरकारकी ओरसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीतिसे उकसाये जाकर इन व्यापारियोने काछलियाको लिखा कि हमारा पावना तुरत चुका दो। उन्होंने काछलियाको बुलाकर भी यह कहा कि आप इस लडाईंसे अलग हो जायं तो हमे अपने पैसेकी कोई जल्दी नहीं, पर आप उससे अलग न होंगे तो हमे डर है कि सरकार आपको किसी भी क्षण गिरफ्तार करा सकती है। उस दशामे हमारे पैसेका क्या होगा? इसलिए आप इस लडाईंसे अलग हो ही न सकते हो तो हमारा पावना आपको तुरत चुका देना चाहिए।" इस बीर पुरुषने इसका यह जवाब दिया—“लडाईंमे शामिल होना मेरी अपनी बात है, मेरे व्यापारके साथ उसका कोई लगाव नहीं। इस लडाईंमें मेरा धर्म,

कौमका मान और मेरा अपना आत्मसम्मान भी समाया हुआ है। आपने मुझे उधार माल दिया, इसके लिए आपका अहसान मानता हूँ, पर इसको या अपने व्यापारको मैं सर्वोपरि नहीं मान सकता। आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मूहरें हैं। जबतक मैं जीवित हू तबतक अपने आपको बेचकर भी आपका पैसा भर सकता हूँ। पर मान लीजिए कि मेरा कुछ हो गया तो भी मेरी उगाही और मेरे मालको अपने हाथमें ही समझिए। आजतक आपने मेरा विश्वास किया है और मैं चाहता हूँ कि अब भी आप विश्वास करे।" यद्यपि यह दलील सोलही आने सही थी और काछलियाकी दृढता गोरे व्यापारियोंके लिए विश्वासका एक अतिरिक्त कारण थी, फिर भी इस वक्त उनपर उसका असर नहीं हो सकता था। हम सोते हुएको जगा सकते हैं, पर जो जागते हुए सोनेका ढोंग करता हो उसको नहीं जगा सकते। गोरे व्यापारियोंके विषयमें भी यही हुआ। उन्हें तो सेठ काछलियाको दवाना था। उनके पैसेको कोई खतरा न था।

मेरे दफ्तरमें लेनदारोकी बैठक हुई। उनको मैंने स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया कि काछलियापर जो दवाव आप लोग डाल रहे हैं उसमें व्यापार-नीति नहीं, राजनैतिक चाल है, व्यापारियोंको बैसा करना शोभा नहीं देता। इससे वे उलटे और चिढ़ गये। सेठ काछलियाके माल और उनकी उगाहीका जो लेखा मेरे पास था वह मैंने उन्हें दिखाया और इससे यह सिद्ध किया कि उनका पावना पाई-पाई वसूल हो सकता है। इसके सिवा वे यह व्यापार दूसरेके हाथ बेच देना पसंद करें तो काछलिया यह सारा माल और पावना खरीदारके हुवाले कर देनेको तैयार है। यह न करे तो जो माल दुकानमें मौजूद है उसको असल दामपर ले ले और इसमें उन्हें कुछ घाटा लगे तो उसके एवजमें जो

पावना वे पसद करे वह ले ले । पाठक समझ सकते हैं कि यह प्रस्ताव स्वीकार करनेमें गोरे व्यापारियोंको कुछ खोना न पड़ता और मैं अपने अनेक भविकलोकोंके लिए संकटकालमें पावनेदारोंके साथ ऐसा वदोवस्त कर सका था, पर व्यापारी इस मौकेपर न्याय करना नहीं चाहते थे । वे तो काछलियाको भुक्काना चाहते थे । काछलिया नहीं भुक्के और दिवालिया कर्जदार करार दे दिये गये, गो कि उनका पावना देनेसे बहुत ज्यादा निकला ।

यह दिवालियापन उनके लिए कलकरूप नहीं, बल्कि उनका भूषण था । कौममें उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और उनकी दृढ़ता और वहादुरीके लिए सबने उनको मुवारकवादी दी । पर इस प्रकारकी वीरता अलौकिक है । सामान्य मनुष्य इसको समझ ही नहीं सकता । दिवाला किस तरह दिवाला न रहकर, वेइज्जती न रहकर, आदर और मान माना जा सकता है, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता । काछलियाको यही वस्तु स्वाभाविक लगी । बहुतरे व्यापारियोंने दिवालेके डरसे ही खनी कानूनके सामने सिर झुकाया था । काछलिया चाहते तो दिवालियेपनसे बच सकते थे । लडाईसे अलग होकर बचनेका उपाय तो था ही, पर इस समय मैं कुछ और ही कहना चाहता हूँ । बहुतसे भारतीय उनके मित्र थे । वे ऐसे सकटके समय उन्हें पैसा उधार दे सकते थे । पर ऐसा प्रवच करके वह अपना व्यापार बचाते तो उनकी वीरता लज्जित होती । जेल जानेका जो खतरा उनके लिए था वह तो सभी सत्याग्रहियोंके लिए था । इसलिए किसी सत्याग्रहीसे पैसे लेकर गोरोंका ऋण चुकाना उनको कदापि शोभा न देता । पर जैसे सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे वैसे ही जिन्होंने खनी कानूनके सामने घुटने टेक दिये थे वे भी मित्र थे । उनकी मदद मिल सकती थी, यह मैं जानता

हूँ। मेरी स्मृतिके अनुसार एक-दो मित्रोंने उनसे इसके लिए कहलाया भी, पर उनकी मदद लेना तो यह मान लेने जैसा होता कि खूनी कानूनके सामने सिर झुका देना बुद्धिमानी है। अतः हम दोनोंने निश्चय किया कि उनकी मदद हमें हरगिज न लेनी चाहिए। इसके सिवा हम दोनोंने यह भी सोचा कि अगर काछलिया अपने आपको दिवालिया करार दिया जाने दि तो उनका दिवाला दूसरोंके लिए ढालका काम देगा। कारण कि अगर सीमे नहीं तो ९० फीसदी दिवालामे पावनेदारको कुछ-न-कुछ नुकसान उठाना ही पडता है। अतः उसे अगर रुपयेमे आठ आने मिल जाए तो वह प्रसन्न होता है और वारह आने मिल जाएं तब तो वह मान लेता है कि हमारा पूरा पावना बसूल हो गया। दक्षिण अफ्रीकाके बड़े व्यापारी आमतौरसे ६। फीसदी नहीं, बल्कि २५ फीसदी नफा लिया करते हैं। अतः उन्हें रुपयेमे वारह आने मिल जाए तो वे इसे घाटेका रोजगार नहीं मानते। पर दिवालामे पूरा-पूरा पावना तो गायद ही मिलता है। इसलिए कोई भी पावनेदार कर्जदारको दिवालिया बनवाना नहीं चाहता।

अतः काछलियाके दिवालसे गोरे व्यापारियोंका दूसरोको धमकाना तो बंद हो ही जाना चाहिए था। हुआ भी यही। गोरोका मतलब यह था कि काछलियाको दबाकर युद्धसे अलग करा दे और वह ऐसा न करे तो अपना सौ फीसदी पावना उनसे बसूल करे। दोमेसे एक भी उद्देश्य सिद्ध न हुआ, उलटा प्रतिकूल परिणाम हुआ। प्रतिष्ठित भारतीय व्यापारी-के दिवालियेपनका स्वागत करनेका यह पहला उदाहरण देखकर गोरे व्यापारी हतबुद्धि हो गये और सदाके लिए घात हो गये। एक सालके अंदर सेठ काछलियाके मालसे गोरोका पावना पूरा-पूरा, गत-प्रतिगत बसूल हो गया। दिवालामें

पावनेदारोको सौ फीसदी मिलनेकी मेरी जानकारीमें तो दक्षिण अफ्रीकामे यह पहली ही मिसाल थी। इससे, लडाईं जब चल रही थी उसी वक्त काछलियाका मान गोरे व्यापारियोंमे अतिशय बढ़ गया और वही व्यापारी लडाईंके जारी रहते हुए उनको जितना माल चाहिए उतना उधार देनेको तैयार हो गये। पर काछलियाका बल तो दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। युद्धका रहस्य भी वह समझ गये। लडाईं कितनी लंबी होगी यह पीछेमे तो कोई कह ही न सकता था। इसलिए दिवालिया ठहराये जानेके वाद हमने तै कर लिया था कि जबतक लडाईं चल रही है तबतक वह लंबे व्यापारमें पड़े ही नहीं। एक गरीब आदमी जितनेमे अपना खर्च चला सकता है उतना कमा लेने भर कारवार रखकर बाकी व्यापार लडाईंके दरमियान बंद रखनेका उन्होने निश्चय किया। इससे गोरे उन्हें जो सुभीता दे रहे थे उसका लाभ उन्होने नहीं उठाया। पाठक इतना तो समझ ही लेंगे कि काछलिया सेठके जीवनकी जिन घटनाओका वर्णन मैंने ऊपर किया है वे सारी इस प्रकरणमे वर्णित कमेटीकी बैठकके वाद ही नहीं घटित हुईं। पर इस वर्णनको एक ही साथ देना ठीक समझकर यहा मैंने उन्हें दे दिया है। तिथिक्रमकी दृष्टिसे देखे तो दूसरी लडाईं शुरू होनेके (१० सितवर १९०८) के कुछ दिन वाद काछलिया अध्यक्ष हुए और इसके कोई पाच महीने वाद दिवालिया करार दिये गए।

अब हम कमेटीकी बैठकके नतीजेपर विचार करे। इस बैठकके वाद मैंने जनरल स्मट्सको पत्रमे लिखा कि आपका नया विल समझौतेका भंग है। समझौतेके एक हफ्तेके अंदर उन्होने जो भाषण दिया था उसकी ओर भी मैंने अपने पत्रमे ध्यान खींचा। उस भाषणमें उन्होने ये शब्द कहे थे—“ये लोग (एशियावासी) एशियाटिक कानून रद

कर देनेके लिए मुझसे कहते हैं। मैंने उनसे कह दिया है कि जबतक सभी एशियावासी ऐच्छिक परवाना नहीं ले लेते तबतक कानून रद्द नहीं किया जा सकता।" अधिकारी लोग ऐसी बातोंका जवाब नहीं दिया करते जो उन्हें उलझनमें फँसा दे। देते भी हैं तो वह गोल-मटोल होता है। जनरल स्मट्स तो इस कलाके आचार्य थे। आप चाहे जितना लिखे, चाहे जितना बोले, जब उनकी जवाब देनेकी इच्छा न होगी तब उनके मुहसे आप कोई उत्तर नहीं निकलवा सकते। अपनेको मिले हुए पत्रोंका उत्तर देना ही चाहिए, यह सामान्य शिष्टाचार उनके लिए बंधनकारक नहीं था। अतः अपने पत्रोंके उत्तरसे मैं कुछ भी सतोष न प्राप्त कर सका।

अपने मध्यस्थ अलवर्ट कार्टराइटसे मैं मिला। वह सुनकर स्तब्ध हो गये और कहा—“सचमुच मैं इस आदमीको समझ नहीं सकता। एशियाटिक कानून रद्द कर देनेकी बात मुझे अच्छी तरह याद है। मुझसे जो हो सकेगा करूंगा, पर तुम जानते हो कि यह आदमी जब एक निश्चय कर लेता है तब उसपर किसीकी कुछ चलती नहीं। अखबारोंके लेखोंको तो वह कुछ गिनता ही नहीं। इसलिए मुझे पूरा डर है कि मेरी मदद तुम लोगोंके कुछ काम न आ सकेगी।” मि० हास्किन आदिसे भी मिला। उन्होंने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा। उन्हें भी बहुत ही असंतोषकारक उत्तर मिला। ‘विश्वासघात’ शीर्षक देकर मैंने ‘इंडियन ओपीनियन’ में कई लेख भी लिखे; पर जनरल स्मट्स उनकी परवा क्यों करने लगे? तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके लिए चाहे जैसे कड़े विशेषण व्यवहार करो उसपर कोई असर नहीं होनेका। वह अपने सोचे हुए काम करनेमें तन-मनसे लगा रहता है। जनरल स्मट्सके विषयमें दोमेसे



किस विशेषणका व्यवहार हो सकता है, यह मैं नहीं जानता। मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि उनकी वृत्तिमें एक प्रकारकी दार्शनिकता है। जिस वक्त उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार हो रहा था और अखबारोंमें मेरे लेख निकल रहे थे उस वक्त तो मुझे याद है कि मैंने उन्हें निष्ठुर ही माना था। पर यह युद्धका अभी पहला भाग, उसका दूसरा ही वरस, था और हमारी लड़ाई तो आठ वरस चली। इस बीच मैं उनसे कितनी ही वार मिला। हमारी पीछेकी बात-चीतसे मुझे अकसर ऐसा लगता कि जनरल स्मट्सके काड्यापनके बारेमें जो आम खयाल दक्षिण अफ्रीकामें है उसमें परिवर्तन होना चाहिए। दो बातें तो मुझे साफ दिखाई दीं। अपनी राजनीतिके विषयमें उन्होंने कुछ सिद्धांत स्थिर कर रखे हैं और वे नितान्त अनीतिमय तो नहीं ही हैं, पर इसके साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि उनके राजनीतिशास्त्रमें चालाकी और मौका पडनेपर सत्याभासके लिए भी स्थान है।<sup>1</sup>

: २ :

### युद्धकी पुनरावृत्ति

एक ओर जनरल स्मट्ससे समझौतेकी शर्तोंका पालन करनेके लिए विनती की जा रही थी तो दूसरी ओर कौमको फिरसे जगानेका उद्योग उत्साहपूर्वक चल रहा था। अनुभव यह हुआ कि हर जगह लड़ाई फिर शुरू करने और जेल जानेको लोग तैयार थे। हर जगह सभाएँ की जाने लगीं, जिनमें

<sup>1</sup> ये पक्षितया छपते समय हमें यह मालूम हो गया है कि जनरल स्मट्सकी सरदारीका भी अंत हो सकता है।—मो० क० गांधी।

सरकारके साथ हमारा जो पत्र-व्यवहार चल रहा था वह समझाया जाता। 'इंडियन ओपीनियन' में तो हर हफ्तेका रोजनामचा दिया ही जाता था। इससे कौमको स्थितिकी पूरी जानकारी रहती। सबको समझा दिया गया कि हमारा अपनी खुशीसे परवाने लेना निष्फल सिद्ध होनेवाला है और खूनी कानून किसी तरह रद्द न हुआ तो हम अपने परवाने जला डालने होंगे। इससे स्थानीय सरकारको यह मालम हो जायगा कि हिंदुस्तानी अडिग हैं, निर्भय हैं और जेल जानैको भी तैयार हैं। इस दृष्टिसे हर जगह परवाने भी इकट्ठा किये जा रहे थे।

जिस विलके बारेमे हम पिछले प्रकरणमें पढ चुके हैं सरकारकी ओरसे उसको पास करानेकी तैयारी होने लगी। ट्रांसवालकी धारा सभाका अधिवेशन आरभ हुआ। भारतीयोंने उसमे आवेदनपत्र भेजा, पर इसका भी नतीजा कुछ न निकला। अतमे सत्याग्रहियोंका 'अल्टिमेटम' सरकारके पास भेजा गया। 'अल्टिमेटम' के माती होते हैं 'निश्चयपत्र' या धमकीका पत्र जो लड़ाईके इरादेसे ही भेजा जाता है। इस शब्दका व्यवहार कौमकी ओरसे नहीं किया गया, बल्कि उसके निश्चयकी सूचना देनेवाला जो पत्र सरकारको भेजा गया उसको जनरल स्मटसनने धारा सभामे यही नाम दिया और साथ-साथ यह भी कहा कि जो लोग ऐसी धमकी इस सरकारको दे रहे हैं उनको उसके बलका पता नहीं है। मुझे खेद इतना ही है कि कुछ आंदोलनकारी (एजिटेटर) गरीब हिंदुस्तानियोंको उकसा रहे हैं और गरीब लोगोमे उनका जोर हुआ तो वे बरवाद हो जायगे। अखबारोंके संवाददाताओंने इस प्रसंगका वर्णन करते हुए लिखा था कि धारा सभाके बहुसंख्यक सदस्य अल्टिमेटमकी बात सुनकर आग-बवूला हो गये। उनकी आंखे सुखं हो गईं और उन्होंने

जनरल स्मट्सके पेश किये हुए बिलको एकमतसे तथा उत्साहपूर्वक पास कर दिया ।

उपर्युक्त अल्टिमेटममे इतनी ही बात थी—“जो समझौता हिंदुस्तानी कौम और जनरल स्मट्सके बीच हुआ था उसकी स्पष्ट शर्त यह है कि हिंदुस्तानी अपनी इच्छासे परवाने ले ले तो उनको वाक्यायदा मान लेनेके लिए एक बिल विधान-सभामे पेश किया जायगा और एशियाटिक कानून रद्द कर दिया जायगा । यह तो प्रसिद्ध बात है कि हिंदुस्तानी कौमने इस रीतिसे ऐच्छिक परवाने ले लिए जिससे सरकारी अधिकारियोंको संतोष हो जाय । इसलिए अब एशियाटिक कानून रद्द हो ही जाना चाहिए । कौमने इस बारेमे जनरल स्मट्सको बहुत लिखा । न्याय पानेके लिए जो दूसरे कानूनी उपाय किये जा सकते थे वे सब भी किये गये; पर अबतक उसका सारा प्रयत्न निष्फल हुआ है । मसविदा विधान-सभामें पास होने ही जा रहा है । ऐसे वक्त कौममे फैली हुई बेचैनी और उसकी तीव्र भावना सरकारको बताने का फर्ज है । और हमे खेदके साथ कहना पड़ता है कि अगर समझौतेकी शर्तोंके अनुसार एशियाटिक कानून रद्द न कर दिया गया और ऐसा करनेके निश्चयकी सूचना कौमको अमुक अवधिके अंदर न मिल गई तो उसने जो परवाने इकट्ठा किये हैं वे जला डाले जायेंगे और ऐसा करनेसे जो मुसीबतें उसपर आयेगी उनको वह विनय और दृढताके साथ सहन कर लेगी ।”

इस पत्रको ‘अल्टिमेटम’ माननेका एक कारण तो यह था कि उसमे जवाब देनेके लिए एक अवधि रख दी गई थी । दूसरा कारण था गोरोंका यह आम खयाल कि हिंदुस्तानी एक जगली कौम है । अगर हिंदुस्तानियोंको वे अपने-जैसा समझते होते तो इस चिट्ठीको विनय-पत्र मानते और उसपर ध्यान देते; पर गोरोंकी यह जगलीपनकी धारणा ही हिंदुस्तानियोंके

ऊपरके जैसा पत्र लिखनेका पर्याप्त कारण था। कौमके सामने दो स्थितिया थीं . एक तो यह कि जंगलीपनका आरोप स्वीकार कर दवी पडी रहे। दूसरी यह कि उक्त आरोपसे इन्कार करनेके अमली कदम उठाये। ऐसे कदमोंमे यह पत्र पहला था। इस पत्रके पीछे उसपर अमल करनेका दृढ निश्चय न होता तो यह पत्र उद्धत समझा जाता और हिंदुस्तानी विचाररहित और उजड्ड कौम है, यह सावित होता।

पाठकोंके मनमें शायद यह शंका पैदा हो कि जंगली होनेसे इन्कार करनेका कदम तो १९०६मे, जब सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा की गई उसी वक्त उठाया जा चुका था और यदि यह सही हो तो इस पत्रमे ऐसी कौन-सी नई बात थी जिससे मैं उसको महत्त्व देता हूँ और यह मानता हूँ कि उसके लिखे जानेके वक्तसे कौमने जंगलीपनके आरोपको अस्वीकार करना आरम्भ किया ? एक दृष्टिसे यह दलील सही मानी जा सकती है, पर विशेष विचारसे मालूम होगा कि अस्वीकारका सच्चा आरंभ निश्चय-पत्रसे ही हुआ। पाठकोको याद रखना चाहिए कि सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाका संयोग अनायास बना। उसके बादकी जेल आदि तो उसका अनिवार्य परिणाम ही था। उसमें कौमकी प्रतिष्ठा बढ़ी, पर अनजानमे। यह पत्र लिखे जानेके समय तो पूरा ज्ञान और प्रतिष्ठाका दावा करनेका पूरा इरादा था। खुनी कानूनको रद्द करनेका उद्देश्य तो था ही, जैसे पहले वैसे अब। पर उसके साथ भापाकी शैली, काम करनेके ढंगके चुनाव आदिमे फर्क था। गुलाम मालिकको सलाम करे और एक मित्र दूसरे मित्रको करे तो दोनों सलामतो है ही, पर दोनोंमे इतना बड़ा अंतर है कि उससे तटस्थ प्रेक्षक तुरंत जान जायगा कि एक गुलाम और दूसरा दोस्त है।

अल्टिमेटम भेजते समय हम लोगोंमे यह चर्चा भी हुई थी कि अबधि नियत करके जवाब मंगाना क्या अविनय न माना

जायगा ? क्या इसीसे यह नहीं हो सकता कि सरकार हमारी भाग मजूर करनेवाली हो तो भी न करे ? कौमका निश्चय परोक्ष रीतिसे सरकारपर प्रकट कर देना क्या काफी न होगा ? इन सब बातोंपर विचार कर लेनेके वाद हम सबने एकमतसे निश्चय किया कि हम जिसको सही और मुनासिब समझे वही करें । अविनयी कहे जानेका इलजाम सिरपर आये तो उसे कबूल कर ले । सरकार जो देनेवाली हो वह झूठा रोप दिखाकर न दे तो यह जाँचिम भी उठा लें—अगर हम मनुष्यरूपमे अपने आपको दूसरोसे किसी तरह हेठा न मानते हो और यह भी मानते हो कि चाहे जितना दुःख चाहे जितने दिनतक उठाना पडे उसे सह लेनेकी शक्ति हममे है, तो जो सही और सीधा रास्ता हो वही हमें स्वीकार करना चाहिए ।

अब गायद पाठक यह समझ सके कि इस वक्त जो कदम उठाया गया उसमे कुछ नवीनता और विशेषता थी । उसकी प्रतिध्वनि विधान-सभामे और बाहरके यूरोपीय मडलोमे भी हुई । कुछने हिंदुस्तानियोंकी हिम्मतकी सराहना की और कितने ही उनपर अति क्रुद्ध हुए । उन्होने यह भी कहा कि हिंदुस्तानियोंको इस गुस्ताखीकी पूरी सजा मिलनी चाहिए । उभयपक्षने अपने व्यवहारसे हिंदुस्तानियोंके कदमका नया-पन स्वीकार किया । सत्याग्रह जब आरभ हुआ उस वक्त सच पृच्छिए तो वह नया कदम था । फिर भी उससे जो हलचल भची थी उसकी बनिस्वत इस पत्रसे बहुत अधिक हलचल भची । इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है । सत्याग्रह आरभ होनेके समय कौमकी शक्तिका अराजा किसीको न हुआ था । अतः उस वक्त ऐसा पत्र या उसकी भाषा हमें शोभा न देती । अब कौमकी थोड़ी-बहुत परीक्षा हो चुकी थी । सबने देख लिया था कि सामाजिक कठिनाइयोंका सामना करनेमे जो कष्ट सिरपर आये उन्हें सह लेनेकी शक्ति उसमे है । अतः

निश्चयपत्रकी भाषा स्वाभाविक रीतिसे उद्भूत हुई और तनिक भी अशोभनीय न लगी ।



## ऐच्छिक परवानोंकी होली

'अल्टिमेटम' या निश्चयपत्रकी अवधि उसी दिनकी रखी गई थी जिस दिन दूसरा एगियाटिक कानून विधान-सभामें पास होनेवाला था । अवधि बीतनेके एक-दो घंटे बाद परवानोंकी जलानेकी सार्वजनिक क्रिया करनेके लिए सभा बुलाई गई थी । सत्याग्रह-कमेटीने सोचा था कि गायद अनसोची रीतिसे सरकारका अनुकूल उत्तर मिल जाय तो भी सभा व्यर्थ न जाय । उस दशमं सरकारका अनुकूल निश्चय उसके जरिये लोगोपर प्रकट किया जा सकता था ।

कमेटीका खयाल तो यह था कि इस निश्चयपत्रका सरकार कोई जवाब ही नहीं देगी । हम सभी पहलेहीसे सभा-स्थानपर पहुंच गये थे । इसका प्रवच भी कर रखा गया था कि सरकारका तारसे भी कोई जवाब आये तो वह सभामें तुरत मिल जाय । सभाका समय चार वजेका रखा गया था । नियमानुसार वह मस्जिदके मैदानमें १६ अगस्त १९०८ को की गई थी ।

सारा मैदान हिंदुस्तानियोसे ठसाठस भर गया था । दक्षिण अफ्रीकामे हवशी अपना खाना पकानेके लिए लोहेकी बनी चार पायोवाली छोटी या बड़ी कढाई काममें लाते हैं । परवाने जलानेके लिए ऐसी ही एक कढाई जो बड़ी-से-बड़ी मिल सकी, एक हिंदुस्तानी व्यापारीकी दुकानसे मंगा रखी गई थी । यह कढाई एक कोनेमें चबूतरके ऊपर रखी गई थी ।

सभाका काम शुरू करनेका समय हुआ कि इतनेमें एक स्वयंसेवक बाइसिकिलपर आ पहुँचा। उसके हाथमें तार था। यह तार सरकारका जवाब था। उसमें हिंदुस्तानी कौमके निश्चयपर खेद प्रकट किया गया था और यह भी जता दिया गया था कि सरकारके लिए अपना निश्चय बदल सकना मुमकिन नहीं। यह तार सभाको पढ़कर सुना दिया गया। सभाने उसका स्वागत किया। सरकार निश्चयपत्रकी मागे मजूर कर लेती तो कौमको परवानोंकी होली जलानेका शुभ कार्य करनेका जो अवसर मिला था वह हाथसे निकल जाता। यह हर्ष योग्य माना जाय कि अयोग्य, इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। जिस-जिसने जवाबका तालियोंसे स्वागत किया उनका हेतु समझे बिना योग्यता-अयोग्यताका निर्णय नहीं हो सकता। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह हर्ष सभाके उत्साहका सुंदर लक्षण था। सभाको अपनी शक्तिका कुछ अंदाजा मिल गया था।

सभा आरंभ हुई। सभापतिने सभाको सावधान किया। सारी स्थिति समझाई। सभाने अवसरके अनुरूप प्रस्ताव स्वीकार किये। जो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ हमारे सामने अभी आई थी मैंने उन्हें स्पष्ट रीतिसे समझा दिया और कहा—“जिन लोगोंने अपने परवाने जलानेके लिए दिये हैं उनमेंसे कोई अपना परवाना वापस लेना चाहता हो तो ले सकता है। परवाने जला देनेसे ही कोई अपराध नहीं होता और जिन्हे जेल जानेका हौसला हो उनका हौसला इतनेहीसे पूरा नहीं होनेका। परवाने जलाकर तो हम महज अपना यह निश्चय प्रकट करते हैं कि हमें खूनी कानूनके आगे सिर नहीं झुकाना है और परवाना दिखानेभरकी शक्ति भी अपने पास नहीं रखना चाहते। पर जो आदमी परवाना जलानेकी क्रियामें आज शामिल हो वह अगले ही दिन जाकर नया परवाना निकलवा

ले तो कोई उनका हाथ पकड़नेवाला नहीं। जिसका ऐसा कुकर्म करनेका इरादा हो या जिसे परीक्षाके समय अपनी क्षाप्तिके विषयमें शका हो उसके लिए अब भी वक्त है कि अपना परवाना वापस ले ले और वह ले सकता है। इस वक्त अपना परवाना लौटा लेनेवालेके लिए लज्जाका कोई कारण नहीं। मैं तो इसको एक तरहकी हिम्मत ही मानूंगा। पर पीछेसे परवानेकी नकल लेनेमें गर्म और जिल्लत है और कौमकी हानि है। इसके सिवा कौमको यह भी समझ रखना चाहिए कि यह लडाईं लवी हो सकती है। हमें यह भी मालूम है कि हमारे कुछ साथी निश्चयसे गिर गये हैं। अतः स्पष्ट है कि कौमकी गाड़ी खींचनेवाले जो बाकी रह गये हैं उन्हें उतना जोर और लगाना होगा। मेरी सलाह है कि इन सारी बातोंको सोच-समझकर ही आप आनेका साहस करें।”

मेरे भाषणके बीचमें ही ये आवाजे तो आ ही रही थी—  
 “हमें परवाने वापस नहीं लेने हैं, उनकी होली जलाइये।”  
 अतमें मैंने कहा कि किसीको प्रस्तावका विरोध करना हो तो वह खड़ा हो जाय। पर कोई खड़ा न हुआ। इस सभामें मीर आलम भी हाजिर था। उसने जाहिर किया कि मुझको मारकर उसने मूल की और अपना असल परवाना जलानेके लिए दिया। ऐच्छिक परवाना तो उसने लिया ही नहीं था। मैंने मीर आलमका हाथ पकड़ा और हृषसे दवाया। मैंने फिर उसे जताया कि मेरे मनमें तुम्हारे प्रति कभी कोई रोष नहीं था। मीर आलमके इस कामसे सभाके हर्षका ठिकाना न रहा।

कमेटीके पास दो हजारसे ऊपर परवाने जलानेके लिए आ चुके थे। उनकी गठरी उपर्युक्त कढाईमें झोंककर ऊपरसे मिट्टीका तेल उंडेल दिया गया और इंसप मियाने उसे दिया-सलाई लगा दी। सारी सभा खड़ी हो गई और यह होली जबतक जलती रही तबतक तालियोंसे मैदानको गुंजा रखा। कुछ



लोगोंने अपने परवाने अभीतक अपने पास ही रख छोड़े थे। वे मचपर उनकी वर्षा करने लगे। कढ़ाईमें उनकी भी आहुति कर दी गई। होली जलनेसे पहले तक वे क्यों नहीं दिये गए, यह पूछनेपर किसीने जवाब दिया कि हमारा ख्याल था कि होली जलते समय देनेमें अधिक शोभा है और दूसरोपर उसका असर भी अधिक होगा। दूसरे कितनोने सरल भावसे स्वीकार किया कि हमारी हिम्मत न होती थी और अंतिम क्षणतक यह भी सोचते थे कि शायद परवाने न जलाये जायें। पर यह होली देखकर हमसे रहा न गया। जो गति सबकी होगी वह हमारी भी हो जायगी। इस लड़ाईमें ऐसी सरल हृदयताके अनुभव हमें अनेक हुए।

लंदनके 'डेली मेल' अखबारके जोहान्सवर्गके सवाददाताने उक्त पत्रको इस सभाका विवरण भेजा जिसमें परवानोकी होली जलानेकी तुलना उस घटनाके साथ की गई जब अमरीकाके अग्रेजोंने विलायतसे भेजी चायकी पेटियोंको वॉस्टन-वेंदरगाहमें जलसमाधि दे दी और इंग्लैंडके अधीन न रहनेके निश्चयकी घोषणा की। दक्षिण अफ्रीकामें १३००० हिंदुस्तानियोंके असहाय समुदायका ट्रांसवालके बलवान राज्यसे सामना था। उधर अमरीकामें वहाके हर रातमें फुसल लाखों गोरों ब्रिटिश साम्राज्यके बलका सामना कर रहे थे। इन दोनों स्थितियोंकी तुलना करके देखनेपर 'डेलीमेल' के सवाददाताने भारतीयोंके विषयमें अतिशयोक्ति की, ऐसा नहीं जान पड़ता। हिंदुस्तानी कौमका हथियार अपने सत्यपर विश्वास और भगवानके भरोसेके सिवा और कुछ न था। इसमें सदेह नहीं कि श्रद्धालुके लिए यह अस्त्र सर्वोपरि है। पर जनसमाजमें अभी यह दृष्टि नहीं आई थी और जबतक वह नहीं आती तबतक निश्चय १३ हजार हिंदुस्तानी हर हथियारसे लैस अमरीकाके गोरोंके सामने तुच्छ ही गिने जाएंगे, पर

इंश्वर तो निर्बलका ही बल है। इसलिए दुनिया इनको तुच्छ समझे, यह ठीक ही है।

: ४ :

### कौमपर नया सवाल उठानेका आरोप

विधानसभाकी जिस बैठकमे एगियाटिक कानून (दूसरा) पास हुआ उसीमे जनरल स्मट्सने एक और बिल भी पेश किया। उसका नाम था 'इमिग्रेंट्स रिसट्रिक्शन ऐक्ट', यानी नई बस्तीपर रोक लगानेवाला कानून। यह कानून सबपर लागू होता था; पर उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंको रोकना था। इस कानूनको गठनेमे नेटालके वैसे ही कानूनका अनुकरण किया गया था। पर इसमे एक दफा यह थी कि जिनपर एशियाटिक कानून लागू होता है वे भी प्रतिबद्ध बस्तीकी व्याख्यामे आ जाएं। अर्थात् परोक्ष रीतिसे उस कानूनमे ऐसी युक्ति की गई थी कि एक भी नया हिंदुस्तानी दासवालमे दाखिल न हो सके। इससे लोहा लेना तो कौमके लिए जरूरी था ही, पर उसको सत्याग्रहमे शामिल करें या नही, यह सवाल सामने खड़ा हो गया। सत्याग्रह कब और किस विषयमे करे, इस बारेमे कौम किसीके साथ बंधी हुई नही थी। उसकी सीमा कौमके विवेक और शक्तिमे थी। बात-बातमे कोई सत्याग्रह करे तो वह दुराग्रह होगा। वैसे ही अपनी शक्तकी नाप-तौल किये बिना कोई इस शस्त्रका उपयोग करे और पीछे हार खाय तो इसमे भी वह खुद तो कलकित होता ही है, इस अविदेकसे इस वेजोड़ हथियारको भी दूषित करता है।

कमेटीने देखा कि हिंदुस्तानी कौमका सत्याग्रह खूनी

कानूनके ही खिलाफ है। वह रद्द हो जाय तो बस्तीसंबंधी कानून (इमिग्रेंट्स रिस्ट्रिक्शन ऐक्ट) में छिपा हुआ जहर, जो ऊपर बताया गया है, अपने आप नष्ट हो जायगा। फिर भी अगर यह सोचकर कि खूनी कानून रद्द हो गया तो बस्तीवाले कानूनके लिए अलगसे चर्चा या आंदोलनकी आवश्यकता न होगी। कौमे चुप बैठी रहें तो यह समझा जायगा कि हिंदुस्तानियोंकी नई बस्तीपर लगाये गये सारे प्रतिवधोंको उसने स्वीकार कर लिया। इसलिए उस कानूनका तो विरोध करना ही होगा। विचार केवल इस बातका करना है कि इस संघर्षको सत्याग्रहमें शामिल करें या नहीं। कौमने सोचा कि सत्याग्रहके दौरानमें ही उसपर कोई नया हमला हो तो इस हमलेको भी सत्याग्रहमें शामिल कर लेना उसका फर्ज होगा। अशक्तिवश वैसा न किया जा सके तो यह जुदी बात है। नेताओंने देखा कि शक्तिके अभाव या न्यूनताका बहाना बनाकर हम इस जहरीली दफाकी घूटको पी नहीं सकते, इसलिए उसको भी सत्याग्रहका विषय बना ही लेना चाहिए।

अतः इस विषयमें स्थानीय सरकारके साथ लिखा-पढी आरंभ हुई। इससे कानूनमें कोई हेर-फेर तो नहीं हुआ, पर जनरल स्मट्सको उसमें कौमको, सच पूछिये तो मुझको, बदनाम करनेका एक नया आजार मिल गया। वह जानते थे कि जितने गौरे जाहिरा हमारी मदद करते हैं उनसे कहीं अधिककी हमदर्दी निजी तौरपर हमारे साथ है और वह हमदर्दी नष्ट की जा सकती हो तो उसकी फिकर की जाय। उनका यह सोचना स्वाभाविक ही था। इसलिए उन्होंने मुझपर नया सवाल उठानेका इलजाम लगाया और अपने साथ बातचीतमें तथा लिखकर भी हमारे अग्रेज सहायकोंको बताया—“गांधीको जितना मैं पहचानता हूँ उतना आप लोग नहीं पहचानते। आप उसे एक इंच दे तो वह एक हाथ मागेगा।

यह सब मैं जानता हूँ। इसीलिए एशियाटिक कानूनको रद्द नहीं कर रहा हूँ। जब उसने सत्याग्रह आरम्भ किया था तब नई वस्तीकी तो कोई बात ही नहीं थी। ट्रांसवालकी रक्षाके लिए हम नये हिंदुस्तानियोंका आना रोकनेका कानून बना रहे हैं तो यह उसमें भी अपना सत्याग्रह चलाना चाहता है। ऐसी चालाकी (कनिंग) कबतक बर्दाश्त की जा सकती है? उसे जो करना हो करे, भले ही एक-एक हिंदुस्तानी बरवाद हो जाय, मैं एशियाटिक कानूनको रद्द करनेवाला नहीं और ट्रांसवाल सरकारने हिंदुस्तानियोंके विषयमें जो नीति ग्रहण की है उसका भी त्याग नहीं किया जायगा। इस न्यायसंगत नीतिका समर्थन करना हर यूरोपियनका फर्ज है।” >

तनिक-सा विचार करनेसे ही यह देखा जा सकता है कि उपर्युक्त दलील सोलहो आने गैरवाजिब और नीतिविरुद्ध थी। नई वस्ती रोकनेके कानूनका जब जन्म ही नहीं हुआ था उस वकत मैं या कौम उसका विरोध कैसे कर सकती थी? जनरल स्मट्सने मेरी चालाकीके अनुभवकी बात कही है, पर इसकी एक भी मिसाल वह पेश नहीं कर सके और मैं खुद तो जानता हूँ कि दक्षिण अफ्रीकामें मैं इतने बरस रहा उसमें कभी चालाकी बरतनेकी बात मुझे याद ही नहीं आती; बल्कि इस मौकेपर तो मुझे आगे बढ़कर यह कहनेमें भी हिचक नहीं होती कि अपनी सारी जिदगीमें मैंने चालाकीसे कभी काम लिया ही नहीं। मैं मानता हूँ कि चालाकीसे काम लेना नीति-विरुद्ध है। इतना ही नहीं, मैं तो उसे युक्तिविरुद्ध भी मानता हूँ। इसलिए व्यवहार-दृष्टिसे भी उसका उपयोग मैंने सदा नापसद किया है। अपने बचावमें इतना लिखनेकी भी जरूरत मैं नहीं समझता। जिस पाठकवर्गके लिए मैं यह लिख रहा हूँ उसके सामने अपने मुहसे अपनी सफाई देते मुझे शर्म मालूम होती है। मैं चालाकीसे रहित हूँ इसका अनुभव अगर उन्हें

अबतक न हुआ हो तो अपनी सफाईसे मैं इस विषयको सिद्ध कर ही नहीं सकता। ऊपरके वाक्य लिखनेका हेतु इतना ही है कि सत्याग्रहकी लड़ाई कैसे संकटके बीच लड़ी जा रही थी इसकी कल्पना पाठकोको हो जाय और वे समझ लें कि कौम नीतिकी पगडंडीसे बाल बराबर भी हट जाती तो लड़ाई कैसे खतरेमें पड़ जाती। वाजीगर जब बीस फुट ऊंचे खभ्रेसे लटकवाई गई रस्सीपर चलता है तो उसे जैसी एकाग्र दृष्टि रखकर चलना पड़ता है—तनिक भी निगाह चूके तो दाहिने गिरे या बाये, उसके लिए मौत रखी ही होती है—सत्याग्रहीको उससे भी अधिक एकाग्र दृष्टि रखकर चलना होता है। आठ बरसके लंबे कालमें मैंने यह बात सीख ली थी। जिन मित्रोंके सामने जनरल स्मट्सने उक्त आरोप लगाया था वे मुझे अच्छी तरह पहचानते थे। अतः उनपर जनरल स्मट्स जो चाहते थे उसका उलटा ही असर हुआ। उन्होंने मेरा या युद्धका त्याग नहीं किया, बल्कि हमारी सहायता करनेमें अधिक उत्साह दिखाने लगे और कौमने पीछे देख लिया कि हमने नई बस्तुके कानूनको सत्याग्रहमें शामिल न कर लिया होता तो हम भारी मुसीबतमें पड़ जाते।

मेरे अनुभवने मुझे सिखाया है कि जिसे मैं वृद्धिका नियम कहता हूँ वह हरएक शुद्ध युद्धपर घटित होता है। पर सत्याग्रहके विषयमें तो मैं इस बस्तुको सिद्धांतरूपमें मानता हूँ। जैसे गगनदी ज्यो-ज्यो आगे बढ़ती है त्यो-त्यो अनेक नदियाँ आकर उसमें मिलती जाती हैं और मुहानेपर तो उसका पाट इतना चौड़ा हो जाता है कि दाये-बाये किसी ओर किनारा दिखाई नहीं देता और नावमें बैठे हुए यात्रीको विस्तारमें उसमें और समुद्रमें कोई फर्क नहीं दिखाई देता। उसी तरह सत्याग्रहकी लड़ाई ज्यो-ज्यो आगे बढ़ती है त्यो-त्यो उससे उत्पन्न होनेवाले परिणाममें वृद्धि होती जाती है। मैं मानता

हूँ कि सत्याग्रहका यह परिणाम अनिवार्य है। उसका कारण उसके मूल तत्त्वमे ही विद्यमान है। कारण कि सत्याग्रहमें कम-से-कम ही अधिक-से-अधिक है। कम-से-कममे कुछ घटाना तो हो ही नहीं सकता, इसलिए इससे पीछे हटा ही नहीं जा सकता और स्वाभाविक क्रिया वृद्धिकी ही हो सकती है। दूसरी लडाइया शूद्र हों तो भी मागमे कमीकी गुंजाइश शुरूसे ही रखी जाती है। इससे वृद्धिका नियम उनपर निरपवाद-रूपसे घटित हो सकता है। इस दिपयमे मैंने शका प्रकट की। पर जब कम-से-कम अधिक-से-अधिक ही हो तब वृद्धिका नियम कैसे घटित होता है, यह बात मुझे समझानी होगी। जैसे गंगा वृद्धिकी खोजमे अपनी गति छोड़ती नहीं, वैसे ही सत्याग्रही भी अपनी तलवारकी धार-सरीखा रास्ता नहीं छोड़ता। पर जैसे गगाकी धारा ज्यो-ज्यो बढ़ती जाती है त्यो-त्यो दूसरी नदिया अपने आप आकर उसमे मिलती जाती है, वही बात सत्याग्रही गगाकी भी है।

वस्तीका कानून सत्याग्रहके विषयमे शामिल कर लिया गया तो यह देखकर सत्याग्रहका सिद्धांत न जाननेवाले हिंदु-स्तानियोने आग्रह किया कि ट्रांसवालके भारतीय विरोधी सभी कानून उनमे ले लिये जाएँ। दूसरे कितने लोगोंने कहा कि जबतक लड़ाई चल रही है, नेटाल, केप कालोनी, आरेंज फ्री स्टेट इन सबको निर्मंत्रित करके दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोके विरोधी हरएक कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ दिया जाय। इन दोनों बातोंमे सिद्धांत भंग था। मैंने साफ बता दिया कि जो स्थिति सत्याग्रह आरंभ होनेके समय हमने नहीं ग्रहण की थी वह अब मौका देखकर ग्रहण कर लें तो यह इमानदारीके खिलाफ होगा। हमारी शक्ति कितनी ही क्यों न हो, यह सत्याग्रह जिन भागोके लिए किया गया है उन भागोके पूरी हो जानेपर वह समाप्त होना ही चाहिए। मेरा

दृढ़ विश्वास है कि इस सिद्धांतपर हम दृढ़ न रहते तो जीतके बदले हमारी हार हुई होती। इतना ही नहीं, जो हमदर्दी हम पा सके वह भी गंवा बैठते। इसके विपरीत जब सत्याग्रह चल रहा हो उस वक्त प्रतिपक्षी खुद नई अड़चने पैदा करता है तो वे अपने आप सत्याग्रहमें शामिल हो जाती हैं। सत्याग्रही जब अपनी दिशामे चला जा रहा हो उस वक्त जो चीजें उसके रास्तेमे आकर मिलती जाएं उनकी उपेक्षा वह अपने सत्याग्रहका त्याग किये विना कर ही नहीं सकता। और प्रतिपक्षी तो सत्याग्रही होता ही नहीं। सत्याग्रहके विरुद्ध सत्याग्रह करना असंभव है। इसलिए न्यूनतम और अधिकतमका वधन उसको होता ही नहीं। वह कोई नई बात खड़ी करके सत्याग्रहीको डराना चाहे तो डरा सकता है, पर सत्याग्रही तो भयसे मुक्त हो चुका होता है। इसलिए प्रतिपक्षी नई आपत्तियां खड़ी करे तो उनके सामने भी वह अपना मंत्रोच्चार करता है और यह विश्वास रखता है कि उसकी राहमे आनेवाली सभी बाधाओके सामने यह मंत्रोच्चार अवश्य फलदायी होगा। इसीसे सत्याग्रह ज्यो-ज्यो लंबा होता है, यानी प्रतिपक्षी उसे ज्यो-ज्यो लंबा करता है, त्यों-त्यों उसकी अपनी दृष्टिसे तो वह गाठकी पूजी ही गवाता है और सत्याग्रहीका अधिकाधिक लाभ होता है। इस नियमकी चरितार्थताके दूसरे दृष्टांत हमें इस युद्धके इतिहासमे मिलेगे।

: ५ :

### सोराबजी शापुरजी अडाजनिया

जब नई वस्तीका सवाल—इमिग्रेशन ऐक्ट भी लुडार्डके विषयमें शामिल कर लिया गया तब सत्याग्रहियोंके लिए इस अधिकारकी परीक्षा कर लेना भी जरूरी हो गया। कमेटीने

तय किया था कि चाहे जिस भारतीयके जरिये यह परीक्षा नहीं कराई जायगी । खयाल यह था कि ऐसे आदमीको ट्रांस-वालमे दाखिल कराके जेल-महलमे बैठा दें जो नई वस्तीके कानूनकी उन दूसरी शर्तोंको पूरा करता हो जिनसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं है । इससे हमें यह साबित करना था कि सत्याग्रह मर्यादा-धर्म है । इस कानूनमे एक दफा इस आशयकी थी कि नये आनेवालेको यूरोपकी किसी एक भाषाका ज्ञान होना ही चाहिए । इसलिए कमेटीने अंग्रेजी जाननेवाले ऐसे हिंदुस्तानीको दाखिल करानेकी बात सोची थी जो ट्रांसवालमे पहले रह चुका हो । कितने ही हिंदुस्तानी नौजवानोंने इस परीक्षाके लिए अपने आपको पेश किया । पर उनमेंसे सोराबजी शापुरजी अडाजनियाका नाम बतौर कसौटीके स्वीकार किया गया ।

नामसे ही पाठक समझ लेंगे कि सोराबजी पारसी थे । सारे दक्षिण अफ्रीकामे पारसियोंकी सख्या सौ से ऊपर नहीं होगी । पारसियोंके बारेमे जो मत मैंने हिंदुस्तानमे प्रकट किया है, दक्षिण अफ्रीकामे भी मेरा वही मत था । सारी दुनियामे कूल मिलाकर एक लाखसे अधिक पारसी न होंगे । इतनी छोटी-सी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है । अपने धर्मपर दृढ़तासे आरुढ़ है और दानशीलतामें दुनियाकी कोई भी कौम उसकी बराबरी नहीं कर सकती । इतनी ही बात इस जातिकी उत्तमताका प्रमाणपत्र है । उनमें भी सोराबजी तो काम पढ़ने-पूर रत्न निकले । जब वह लडाईमें शामिल हुए उस वकत मैं उनको कुछ यों ही मामूली-सा जानता था । लडाईमें शामिल होनेके विषयमे उन्होने जो पत्र लिखे थे उन्होने मुझपर अच्छा असर डाला था । मैं जैसे पारसियोंके गुणोंका पुजारी हूँ वैसे ही जातिरूपमे उनमें जो अनेक खामियां हैं उनसे भी अनजान नहीं था और न हूँ । इसलिए सच्ची परीक्षाका अवसर आनेपर



सोराबजी टिक सकेंगे या नहीं, इस विषयमें मेरे मनमें शंका थी। पर विपक्षी इसके विरुद्ध बात कहता हो तो अपने शक-शुबहेपर अमल न करना मेरा नियम था। इसलिए मैंने तो कमेटीसे यही सिफारिश की कि सोराबजीने अपने पत्रोंमें जो दृढता दिखाई है उसको पक्की मान ले। और अतमें तो सोराबजी प्रथम श्रेणीके सत्याग्रही सिद्ध हुए। जिन सत्याग्रहियोंने लंबी-सं-लंबी कैदे भुगती उनमें वह भी थे। इतना ही नहीं, उन्होंने इस युद्धका इतना गहरा ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि वह जो कुछ कहें उस सबको ध्यानसे सुनना पडता। उनकी सलाहमें सदा दृढता, विवेक, उदारता, शांति आदिकी फलक रहती। राय कायम करनेमें वह जल्दबाजी न करते और जो कायम कर ली उसे बदलते भी नहीं। उनमें जितना पारसीपन था—और वह भरपूर था—उतना ही हिंदुस्तानीपन भी था। सकुचित जाति-अभिमानकी तो उनमें कभी गंध भी नहीं मिली। युद्ध समाप्त होनेके बाद डाक्टर मेहताने अच्छे सत्याग्रहियोंमेंसे किसीको विलायत भेजकर बैरिस्टर बनवानेके लिये छानवृत्ति दी थी। इसका चुनाव मुझीको करना था। दो-तीन योग्य भारतीय थे, पर सारी मित्रमंडलीकी रायमें कोई दूसरा आदमी नहीं था जो विचारकी प्रौढता और समझदारीमें सोराबजीकी बराबरी कर सके। अतः वही चुने गये। ऐसे एक हिंदुस्तानीको विलायत भेजनेमें उद्देश्य यह था कि वह वापस आकर मेरी जगह ले और कौमकी सेवा करे। कौमका आशीर्वाद और सम्मान लेकर सोराबजी विलायत गये और बैरिस्टर बने। गोखलेसे उनका संपर्क तो दक्षिण अफ्रीकामें ही हो गया था। विलायतमें वह अधिक निकटका हो गया। उनका मन सोराबजीने हर लिया। उन्होंने सोराबजीसे यह आग्रह भी किया कि हिंदुस्तान लौटने-पर भारत सेवक समिति (सरवेटस् आव इंडिया सोसायटी)में शामिल हो जाओ। विद्यार्थीवर्गमें सोराबजी अतिशय प्रिय

हो गये थे। वह हरएक दुःख-दर्दमे शरीक होते। विलायतके ठाट-बाट और विलासिताका उनके मनपरतनिक भी असर न हुआ। जब वह विलायत गये, उनकी उम्र ३० से ऊपर थी। उनका अंग्रेजीका अभ्यास ऊंचे दरजेका नहीं था। व्याकरण आदि भूलमाल गये थे; पर मनुष्यके अध्यवसायके सामने ऐसी कठिनाइयां टिक नहीं सकती। सोराबजीने शुद्ध विद्यार्थी-जीवन बिताया और परीक्षाओंमें पास होते गये। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आजकी तुलनामें आसान थी। अब तो बैरिस्टर बननेवालेको सबसे बहुत अधिक पढ़ना पड़ता है; पर सोराबजीने हार न मानी। विलायतमें जब 'एम्बुलेस कोर' (युद्धमें सेवा-कार्य करनेवाला दस्ता) बना तो जो लोग इसमें अगुआ बने उनमें वह भी थे और अंततक उसमें बने रहे। इस दस्तेको भी सत्याग्रह करना पड़ा था। सदस्योंमेंसे बहुतरे गिर गये। जिनके पांव अचल रहे उनमें सोराबजी सबसे आगे थे। यहाँ यह भी बता दूं कि इस दस्तेके सत्याग्रहमें भी हमें जय ही मिली थी।

विलायतसे बैरिस्टरी पास कर लेनेके बाद सोराबजी जोहान्सबर्ग लौटे। वहाँ उन्होंने सेवा और वकालत दोनों साथ-साथ शुरू कर लीं। दक्षिण अफ्रीकासे मुझे जो चिट्ठियां मिली उनमें सारी सोराबजीकी तारीफ करतीं थे—“वह पहले जैसे सीधे-सादे थे वैसे ही अब भी हैं। आडंबर नामको नहीं। छोटे-बड़े सबके साथ हिले-मिले रहते हैं।” पर ईश्वर जैसा दयालु दिव्य देता है वैसे ही निर्दय भी लगता है। सोराबजीको निरीक्षण (गैलपिंग थाइसिस) हुआ और कुछ महीनेमें वह कौमका नया प्रेम संपादन करके और उसे रोती छोड़कर चल बसे! इस तरह ईश्वरने थोड़े ही समयके बीच कौमसे दो पुरुषरत्न छीन लिये। काइलिया और सोराबजी! चुनाव करना हो तो मैं इन दोनोंमेंसे किस प्रथम पद दे सकता हूँ ?

में इनमें चुनाव कर ही नहीं सकता। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें बेजोड थे। जैसे काछलिया जितने शुद्ध मुसलमान थे उतने ही शुद्ध भारतीय थे, वैसे ही सोरावजी भी जितने सच्चे पारसी थे उतने ही सच्चे हिंदुस्तानी थे।

यही सोरावजी सरकारको पहलेसे नोटिस देकर आज-माइशके लिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकार इस कदमके लिए विलकुल तैयार न थी। इससे सोरावजीके साथ क्या कार्रवाई की जाय इसका तुरत निश्चय न कर सकी। सोरावजीने खुले तौरपर सरहद लाघी और ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरहदपर परवानोकी जांच करनेवाला अफसर उन्हें जानता था। सोरावजीने उससे कहा, "मैं ट्रांसवालमें जान-बूझकर अपने अधिकारकी परीक्षाके लिए प्रवेश कर रहा हूँ। तुम्हें मेरी अग्रेजीकी परीक्षा लेनी हो तो लो और गिरफ्तार करना हो तो कर लो।" अधिकारीने जवाब दिया—"मुझे मालम है कि आप अग्रेजी जानते हैं, इसलिए यह परीक्षा मुझे लेनेकी जरूरत ही नहीं। आपको गिरफ्तार करनेका मुझे हुक्म नहीं। इसलिए आप खुशीसे जाएँ। जहाँ जायगे वहाँ सरकारको आपको गिरफ्तार करना होगा तो करेगी।"

इस प्रकार अनसोची रीतिसे सोरावजी जोहान्सबर्ग तक पहुंच गये। हम सबने उनका हृषंके सथ स्वागत किया। किसीको यह आशा नहीं थी कि सरकार ट्रांसवालके सरहदी स्टेशन बोक्सरेस्टसे उनको एक कदम भी आगे न बढ़ने देगी। अकसर ऐसा होता है कि जब हम अपना कदम सोच-समझकर और निर्भय होकर तुरत उठाते हैं तो सरकार उसका सामना करनेको तैयार नहीं होती। हरएक सरकारका यह स्वभाव माना जा सकता है। सामान्य आदोलनोंमें सरकारका कोई भी अधिकारी अपने महकमेको इतना अपना नहीं लेता कि हर मामलेमें पहलेसे विचार स्थिर और व्यवस्थित कर

रक्खे और तदनुसार तैयारी भी । फिर अधिकारीका एक ही काम नहीं होता, बल्कि अनेक काम होते हैं जिनमें उसका ध्यान बंट जाता है । इसके सिवा अधिकारीको अधिकारका मद् होता है जिससे वह बेफिक्र रहता है और मान लेता है कि कैसा ही आंदोलन हो उसका उपाय कर लेना सत्ताधीश के बाएं हाथका खेल है । इसके विपरीत आंदोलन करनेवाला अपना ध्येय जानता हो, उसके साधनको जानता हो और अपनी योजनाके दारेमें उसका मन पक्का हो तो वह तो पूरी तरह तैयार होता है और उसे एक ही कामका विचार रात-दिन करना होता है । इसलिए अगर वह सही कदम पक्के तौरपर उठा सके तो वह सरकारसे सदा आगे ही रहता है । बहुतसे आंदोलन जो विफल हो जाते हैं उसका कारण सरकारकी अमामान्य शक्ति नहीं, बल्कि संचालकोंके ये ऊपर बताये हुए गुणोंका अभाव होता है ।

साराग, सरकारकी गफलतके कारण या जान-बूझकर की हुई वैसी योजनाके कारण सोरावजी जोहान्सवर्गतक पहुंच सके और उनके जैसे मामलेमें अधिकारीका क्या कर्तव्य है, इसकी कल्पना स्थानीय अधिकारीको न थी और न इस विषयमें बड़े अफसरका आदेश मिला था । सोरावजीके इस तरह आनेसे कौमके उत्साहमें बहुत वृद्धि हुई । कुछ नौजवानोंको तो ऐसा जान पड़ा कि सरकार हार गई और जल्दी ही समझौता कर लेगी । वैसा कुछ नहीं था, यह उन्होंने तुरत ही देख लिया; बल्कि उन्होंने यह भी देखा कि समझौता होनेके पहले गायद बहुतेरे युवकोंको आत्मबलि देनी होगी ।

सोरावजीने अपने जोहान्सवर्ग आनेकी सूचना ध्वांके पुलिस-सुपरिन्टेण्डेंटको दी और उसके साथ यह भी लिखा कि नई बस्तीके कानूनके अनुसार मैं अपने आपको टांसवालमें रहनेका हकदार मानता हूँ, इसलिए कि मुझे अग्नेजी भापाका

सामान्य ज्ञान है और स्थानीय अधिकारी इसकी परीक्षा लेना चाहे तो देनेको तैयार हूँ। इस पत्रका उन्हें कोई जवाब न मिला था। कुछ दिन बाद उसका जवाब समनके रूपमें मिला।

अदालतमें मुकदमा चला। १९०८ की ८ वीं जुलाईको उसकी सुनवाई हुई। अदालतका कमरा भारतीय दर्शकोंसे भर गया था। मुकदमा शुरू होनेके पहले अदालतके अहातेमें उपस्थित भारतीयोंको इकट्ठा करके तात्कालिक सभा की गई। सोरावजीने उसमें जोशीला भाषण दिया। उसमें यह प्रतिज्ञा की कि जवतक हमारी विजय न हो तबतक जितनी वार जेल जाना पड़े उतनी वार जानेको तैयार रहूंगा और चाहे जो संकट आये उसे सहन करूंगा। यह अरसा इतना लंबा था कि इस बीच मैंने सोरावजीको अच्छी तरह पहचान लिया था और समझ गया था कि वह अवश्य सच्चे रत्न निकलेंगे। मुकदमा पेश हुआ। मैं वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ। समनमें कई दोष थे। उन दोषोंके कारण मैंने सोरावजीको विरुद्ध निकाले हुए समनको रद्द कर देनेकी माग की। सरकारी वकीलने जवाबमें दलील पेश की; पर अदालतने अगले दिन मेरी दलीलको मान कर समन रद्द कर दिया और सोरावजीको रिहा कर दिया। कौम खुशीसे पागल हो गई और कह सकते हैं कि उसके पागल हो जानेका कारण भी था। दूसरा समन निकाल कर फौरन ही सोरावजी पर पुनः मुकदमा चलानेकी हिम्मत तो सरकारकों किस तरह हो सकती थी? और हुआ भी यही। इसलिए सोरावजी सार्वजनिक कामोंमें लग गये।

पर यह छूटकारा सदाके लिए नहीं था। सोरावजीको तुरंत चेतावनी मिली कि १० जुलाईको फिर अदालतमें हाजिर हो। उस दिन मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनोंके अंदर ट्रांसवाल छोड़ देनेका हुक्म दिया। अदालतका हुक्म तामील हो जानेके बाद सोरावजीने पुलिस-सुपरिटेण्डेंट मि० वरनोनको सूचना दी कि

मेरा ट्रांसवालेसे चले जानेका इरादा नहीं है। इसपर २० जुलाईको वह फिर अदालतके सामने लाये गये और मजिस्ट्रेटकी आज्ञा न माननेके जुर्ममें उन्हें एक महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।

परस्थानीय हिंदुस्तानियोंको सरकार गिरफ्तार ही नहीं करती थी। उसने देखा कि गिरफ्तारियां जितनी ज्यादा होंगी हिंदुस्तानियोंका जोश उतना ही बढ़ता जायगा। फिर किसी मुकदमेमें किसी-न-किसी कानूनी बारीकीके कारण भारतीय अभियुक्त छूट जाता था तो इससे भी जोश बढ़ता। सरकारको जो कानून बनाने थे वे सब पास कर चुकी थी। बहुतसे हिंदुस्तानियोंने अपने परवाने जला जरूर डाले थे; पर उन्होंने परवाने लेकर ट्रांसवालमें रहनेका अपना हक तो साबित कर ही दिया था। अतः उन्हें जेल भेजनेके लिए ही उनपर मुकदमा चलानेमें सरकारको कोई फायदा नहीं दिखाई दिया और उसने यह भी सोचा कि वह खामोश रहेगी तो आंदोलन करनेवाले आंदोलनका कोई दरवाजा खुला न रहनेके कारण अपने आप शांत हो जायगे। पर सरकारका यह हिसाब गलत था। कौमने उसकी चुप्पी तोड़नेके लिए ऐसा नया कदम उठाया कि वह टूटकर ही रही और सोराबजी पर फिर मुकदमा चलाना पड़ा।

: ६ :

सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लड़ाईमें

शामिल होना

कौमने जब देखा कि सरकार खुद कुछ न करके उसको थका देना चाहती है तब दूसरा कदम उठाना उसके लिए जरूरी हो गया। सत्याग्रहीमें जबतक कष्ट सहन करनेकी शक्ति हो

तबतक वह थकता ही नहीं। इसलिए कौम सरकारकी धारणाको गलत साबित कर देनेमें समर्थ थी।

नेटालमें अनेक ऐसे हिंदुस्तानी बसते थे जिन्हें ट्रांसवालमें बसनेका पुराना हक था। उन्हें व्यापारके लिए ट्रांसवालमें दाखिल होनेकी आवश्यकता नहीं थी। पर कौम मानती थी कि उन्हें यहाँ आनेका हक है। फिर वे थोड़ी बहुत अंग्रेजी तो जानते ही थे। इसके सिवा सोरावजी जितनी शिक्षा पाये हुए भारतीयोंके प्रवेशसे तो सत्याग्रहके नियमका किसी तरह भंग होता ही नहीं था। अतः हमने दो तरहके हिंदुस्तानियोंको दाखिल करनेका निश्चय किया : एक तो वे जो पहले ट्रांसवालमें रह चुके थे, दूसरे वे जिन्होंने खास तौरसे अंग्रेजी पढी हो, यानी जो शिक्षित कहे जाते हो।

इनमें सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी ये दो बड़े व्यापारियोंमेंसे थे और सुरेन्द्रराय मढे, प्रागजी खंडूभाई देसाई, हरिलाल गाधी, रतनशी सोढा आदि शिक्षित जनोमेंसे थे।

सेठ दाऊद मुहम्मदका परिचय पाठकोंको करा दूं। ये नेटाल इंडियन कांग्रेसके अध्यक्ष थे और उन भारतीय व्यापारियोंमेंसे थे जो सबसे पहले दक्षिण अफ्रीकामें पहुंचे थे। वह सूरतके सुन्नी जमातके बोहरा थे। दक्षिण अफ्रीकामें मुझे ऐसे थोड़े ही हिंदुस्तानी मिले जो चतुराईमें उनकी बराबरी कर सकें। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत अच्छी थी। अक्षरज्ञान थोड़ा ही था, पर अभ्याससे अंग्रेजी और डच अच्छी बोल लेते थे। यूरोपियन व्यापारियोंके साथ अपना काम मजेसे चला लेते थे। उनकी दानशीलता विख्यात थी। उनके यहां नित्य कोई ५० मेहमानोंका खाना तो होता ही था, कौमी चन्दोमें उनका नाम मुखियाओंमेंसे होता। उनके एक बेटा था जो अमूल्य रत्न था। वह चारित्र्यमें वापसे बहुत बड़ा-चढ़ा था। उसका हृदय स्फटिक शणिके समान था। इस बेटेके चारित्र्य-वेगको दाऊद सेठने कभी रोक

नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि वह अपने पुत्रको पूजते थे। वह चाहते थे कि उनका एक भी दोष हुसेनमें न हो। उन्होंने उसे विलायत भेजकर अच्छी शिक्षा दिलाई थी, पर सेठ दाऊद इस रत्नको भरी जवानीमें खो बैठे। क्षय रोगने हुसेनको पकड़ा और उसका प्राण हर लिया। यह थाव कभी भरा नहीं। हुसेनके साथ हिंदुस्तानी कौमकी बड़ी-बड़ी आशाएँ भी डब गईं। हुसेनके लिए हिंदू-मुसलमान दाईं-बाईं आखे थे। उसका सत्य तेजस्वी था। आज दाऊद सेठ भी इस लोकमें नहीं है। काल कव किसीको छोड़ता है ?

पारसी रस्तमजीका परिचय मैं करा चुका हूँ। शिक्षित भारतीयोंमेंसे अधिकांशको पाठक जानते हैं। यह प्रकरण मैं बिना कोई पुस्तकादि अपने सामने रखे लिख रहा हूँ। इस कारण कुछ नाम छूट गये होंगे। वे भाई मुझे इसके लिए माफ़ करेगे। ये प्रकरण नाम अमर करनेके लिए नहीं लिखे जा रहे हैं; बल्कि सत्याग्रहका रहस्य समझाने और यह बतानेके लिए लिखे जा रहे हैं कि उसकी विजय कैसे हुई। उसमें कैसे-कैसे विघ्न आये और वे किस तरह दूर किये जा सके। जहाँ-जहाँ नामों और उन नामोंको धारण करनेवालोंकी चर्चा भी है वहाँ भी उद्देश्य यही है कि पाठक जान लें कि दक्षिण अफ्रीकामें अपढ कहलाने-वालोंने कैसा पराक्रम किया। हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई आदि कैसे साथ मिल सके और कैसे व्यापारियों, शिक्षितवर्ग आदिने अपने कर्तव्यका पालन किया। जहाँ गुणीका परिचय दिया है वहाँ उसका नहीं, उसके गुणका स्तवन किया है।

इस प्रकार जब दाऊद सेठ अपनी सत्याग्रही सेना लेकर ट्रांस-वालकी सरहदपर पहुँचे तब सरकार उनका सामना करनेको तैयार थी। वह इतने बड़े दलको ट्रांसवालमें प्रवेश करने देती तो उसकी हँसी होती, इसलिए उन्हें गिरफ्तार करनेसे ही छुटकारा था। वे पकड़ लिये गये। मुकदमा चला। १८ अगस्त १९०८को



मजिस्ट्रेटने उन्हें सात दिनके अंदर ट्रांसवालकी सरहदसे बाहर हो जानेका हुकम दिया । उन्होंने आज्ञाका उल्लंघन किया और २८ अगस्तको प्रिटोरियामें फिर गिरफ्तार किये गये और बिना मुकदमा चलाये ही देशसे निकाल दिये गये । ३१ तारीखको वे फिर ट्रांसवालकी सीमामे दाखिल हुए और अंतमें ८ सितंबरको बोक्सरस्टमें उन्हें ५० पाँडके जुमनि या तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा सुनाई गई । कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उन्होंने खुशीसे जेल जाना पसंद किया ।

कौमका जोग बढ़ा । ट्रांसवालके भारतीय नेटालसे उनकी मददकी आये हुए अपने भाइयोको छोड़ा न सके तो जेलमें उनका साथ तो उन्हें देना ही चाहिए । इस विचारसे ट्रांसवालके भारतीय भी जेलकी राह ढूढने लगे । उनकी गिरफ्तारीके कितने ही रास्ते थे । ट्रांसवालमे बसनेवाला हिंदुस्तानी परवाना न दिखाये तो उसे व्यापारका परवाना न मिलेगा और परवानेके बिना व्यापार करे तो अपराधी माना जाता । नेटालसे ट्रांसवालकी सरहदमे दाखिल होना हो तो भी परवाना दिखाना जरूरी था । न दिखानेवाला गिरफ्तार कर लिया जाता । परवाने तो जला डाले गये थे, इसलिए रास्ता साफ था । दोनो रास्ते पकडे गये । कुछ लोग बिना परवाना दिखाये फेरी करने लगे और कुछ ट्रांसवालकी सरहदमें दाखिल होते समय परवाना न दिखाकर गिरफ्तार होने लगे ।

अब युद्धका रंग जमा । सबकी परीक्षा होने लगी, नेटालसे और भारतीय आये । जोहान्सबर्गमें भी घर-पकड शुरू हुई । स्थिति यह हो गई कि जो चाहे वह गिरफ्तार हो सकता था । जेलखाने भरे जाने लगे । नेटालसे आये हुए आक्रमणकारियोको तीन-तीन महीनेकी सजा मिली, ट्रांसवालके फेरीवालोको चार दिनसे लगाकर तीन महीनेतककी ।

जो लोग इस तरह गिरफ्तार हुए उनमें हमारे इमाम

साहब इमाम अब्दुलकादिर वावजीर भी थे। वह फेरी करके गिरफ्तार हुए थे। उनकी सजाकी गुरुमात चार दिनकी कड़ी कैदसे हुई। उनका शरीर इतना नाजुक था कि लोग उनके जेल आनेकी बात सुनकर हँसते थे। कुछ लोग आकर मुझसे कहते कि भाई, इमाम साहबको न लो तो अच्छा है। वह कौमको लज्जित करेगे। मैंने इस चेतावनीको अनसुनी किया। इमाम साहबकी वास्तिकी नाप-तौल करनेवाला मैं कौन होता था? इमाम साहब कभी नगे पांव न चलते, शौकीन थे, मलायी स्त्रीसे ब्याह किया था, घर सजा हुआ रखते और घोड़े-गाड़ीके बिना कहीं नहीं जाते थे। यह सब सच था, पर उनके मनको कौन जान सकता था? चार दिनकी सजा भुगत कर रिहा होनेके बाद इमाम साहब फिर जेल गये। वहाँ आदर्श कैदीके रूपमें रहे, कहीं मशकूत करके भोजन करते और जिसे नित्य नयी चीजे खानेकी आदत थी वह मकईके आटेकी लपसी खाकर खुदाका वृक्र बजा लाता। इन कष्टोंसे उन्होंने हिम्मत नहीं हारी; बल्कि सादगी अस्तियारकी। कैदीकी हैसियतसे उन्होंने पन्थर तोड़े, म्हाड लगाई, कैदियोंकी पातमें खड़े रहे। अंतमें फिनिक्समें पहुंचकर पानी भरने और अक्षर जोड़ने (कंपोज करने)का काम भी किया। फिनिक्स-आश्रममें रहनेवालेके लिए अक्षर जोड़नेकी कला सीख लेना जरूरी था। इमाम साहबने इस कार्यको यथाशक्ति सीख लिया था। ये इमाम साहब इन दिनों हिंदुस्तानमें अपना भाग अर्पण कर रहे हैं।

पर ऐसे तो बहुतरे इस जेलमें गूढ़ हो गये।

जोसफ रॉयपेन वैरिस्टर, कैम्ब्रिजके ग्रेजुएट, नेटालमें गिरमितिए मा-वापके घर जन्मे थे, पर साहब लोग बन गये थे। वह तो घरमें भी बूटके बिना एक कदम भी नहीं चलते थे। इमाम साहबके लिए बजू करते समय पैर धोना जरूरी था। नमाज नंगे

पाव करनी चाहिए थी। बेचारे रॉयपेनको तो इतना भी नहीं करना था। उन्होंने बैरिस्टरीसे छुट्टी लेकर साग-तरकारीकी टोकरी वगलमे दबाई और फेरी करके गिरफ्तार हो गये। उन्होंने भी जेल भुगती। रॉयपेनने मुझसे पूछा—“पर मुझे तीसरे दरजेमें सफर करना चाहिए ?” मैंने जवाब दिया—“अगर आप पहले या दूसरे दरजेमे सफर करेगे तो मैं किसको तीसरे दरजेमे बैठाऊंगा ? जेलमे आपको बैरिस्टरके रूपमे कौन पहचानेगा ?” जोसफ रॉयपेनके लिए यह जवाब काफी था। वह भी जेलमे चले गये।

सोलह बरसके नौजवान तो कितने ही जेलमे पहुंचे थे। मोहनलाल मानजी घेलानी तो चौदह ही बरसका था। जेलमे अधिकारियोंने हमे सतानेमे कुछ उठा नहीं रखा। पाखाने साफ कराये। हिंदुस्तानी कैदियोंने उन्हें हँसते-हँसते साफ किया। पत्थर तुड़वाये और मल्ला या रामका नाम लेकर सत्याग्रहियोंने उन्हें तोडा। तालाव खुदवाये, पथरीली जमीन खुदवाई। उनकी हथेलियोमे छाले पड गये, कोई-कोई असह्य कष्टसे मूर्च्छित भी हो गये; पर किसीने हिम्मत नहीं हारी।

कोई यह न समझे कि जेलमें आपसमें भगड़े या इंप्या द्वेष नहीं होता था। ज्यादा जोरकी तक़रार तो खानेको लेकर होती है; पर हम उससे भी उबर गये।

मैं भी दूसरी बार गिरफ्तार हुआ। वोक्सरस्टके जेल-खानेमें एक वक्त हम लगभग ७५ हिंदुस्तानी कैदी इकट्ठे हो गये थे। अपनी रसोई हमने अपने हाथमे ले ली। भगड़ेका बचाव मेरे ही हाथो हो सकता था, इससे मैं ही रसोइया बना। मेरे साथी प्रेमके वश मेरे हाथकी वनी कच्ची-पक्की, बिना गुड़-शक्करकी पतली लपसी पी लेते थे।

सरकारने सोचा कि मुझे और कैदियोंसे अलग कर दे

तो मैं भी जरा आंच खा जाऊ और दूसरे कैदी भी ढीले हो जाएं; पर इसका उसे कोई बढिया मौका नहीं मिला ।

मुझे प्रिटोरियाकी जेलमे ले गये । यहां मैं तनहाई-वाली कोठरीमे रखा गया, जिसमें केवल सतरनाक कैदी रखे जाते हैं । सिर्फ दो वार कसरत करानेके लिए बाहर निकाला जाता । वोक्सरस्टमे हमे घी दिया जाता था, यहां वह भी नदारद । इस जेलके गौण कष्टोके वर्णनमे मैं नहीं उलझना चाहता । जिसको उसकी जिज्ञासा हो वह 'दक्षिण अफ्रीकाके जेलके मेरे अनुभव' पुस्तक पढ ले ।

इतनेपर भी हिंदुस्तानियोने हार नहीं मानी । सरकार सोच-विचारमे पडी । जेलमे कितने हिंदुस्तानियोको भरे ? इससे उलटा खर्च बढता था । अब वह क्या करे ?

: ७ :

## देशनिकाला

खुनी कानूनमे तीन तरहकी सजाएं रखी गई थी : जुर्माना, कैद और देशनिकाला । अदालतको तीनो सजाएं एक साथ देनेका अधिकार था और यह अधिकार छोटे-छोटे मजिस्ट्रेटोंको भी दे दिया गया था । पहले तो देशनिकालेके मानी थे अपराधीको ट्रांसवालकी हदसे बाहर नेटाल, फ्री स्टेट या डेलागोवा वे (पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका) की हदमे ले जाकर छोड़ देना । उदाहरणार्थ नेटालकी तरफसे आधे हुए भारतीयोंको वोक्सरस्ट स्टेशनकी हदसे बाहर ले जाकर छोड़ देते थे । इस तरहके देशनिकालेमें थोड़ी-सी तकलीफके सिवा और कोई नुकसान न था । यह दंड तो केवल खिलवाड़ था । हिंदुस्तानियोमे इससे उलटा और ज्यादा जोश आता था ।

अतः स्थानीय सरकारको हिंदुस्तानियोंको हिरान करनेकी नई तरकीब सोचनी पड़ी। जेलोमें जगह रह नहीं गई थी। सरकारने सोचा कि हिंदुस्तानियोंको अगर हिंदुस्तानतक पहुंचा सके तो वे जरूर डरकर हमारी धरण आयेंगे। इसमें कुछ सचाई जरूर थी। इस प्रकार एक बड़े जत्थेको सरकारने हिंदुस्तान भेजा। इन निर्वासितोंको बहुत कष्ट सहने पड़े। खाने-पीनेको भी जो सरकार दे वही मिलता, यानी भारी कष्ट था। सब डेकमें ही भेजे गए, फिर इस तरह निर्वासित होनेवालोंके पास अपनी जमीन होती, दूसरी मिल्कियत होती। अपना घघा-रोजगार होता, अपने आश्रित बाल-बच्चे होते, कुछके सिरपर कर्ज भी होता। शक्ति होते यह सब गंवाने, दिवालिया बननेको तैयार होनेवाले लोग अधिक नहीं हो सकते थे।

यह सब होते-हुए भी बहुतसे भारतीय अपने निश्चयपर अटल रहे। बहुतेरे ढीले भी पड़ गये, पर उन्होंने इतना ही किया कि अपने आपको जान-बूझकर गिरफ्तार नहीं कराया। उनमेंसे अधिकांशने इतनी कर्मजोरी नहीं दिखाई कि जलाए हुए परवानोको फिरसे निकलवा ले; पर कुछने डरकर फिरसे परवाने ले लिए।

फिर भी जो लोग दृढ़ रहे उनकी संख्या नगण्य नहीं थी। उनकी बहादुरीकी हद न थी। मेरा विश्वास है कि उनमें कितने ही ऐसे थे जो हंसते-हंसते फासीके तस्तेपर चढ़ जाते। माल-जायदादकी चिंता तो उन्होंने छोड़ ही दी थी; पर जो हिंदुस्तान भेज दिये गये उनमें बहुतेरे गरीब और सीधे-सादे आदमी थे। वे केवल विश्वासके बलपर ही लडाईमें शामिल हुए थे। उनपर इतना जुल्म होना असह्य लगा। उनकी मदद भी कैसे की जाय, यह समझना कठिन था। पैसा तो अपने पास थोड़ा ही था। ऐसी लडाईमें पैसेकी मदद देने

जाय तो लड़ाई ही हार जाय । उसमें लालची आदमी न घुस आएँ, इस डरसे पैसेका लालच एक भी आदमीको नहीं दिया जाता था । हाँ, सहानुभूतिकी सहायता देना हमारा धर्म था ।

अनुभवसे मैंने देखा है कि सहानुभूति, मीठी निगाह और मीठे बोल जो काम कर सकते हैं वह पैसेसे नहीं हो सकता । पैसेका लोभी भी अगर उसको हमदर्दी न मिले तो अतमें वह उसे त्याग देता है । इसके विपरीत जो प्रेमसे बंध हुआ है वह अनेक संकट सह लेनेके लिए तैयार रहता है ।

अतः हमने निश्चय किया कि इन निर्वासित भाइयोंके लिए हमदर्दी जो कुछ कर सकती है वह किया जाय । उन्हें आश्वासन दिया कि हिंदुस्तानमें आप लोगोंके लिए यथोचित प्रवध किया जायगा । पाठकोको जान लेना चाहिए कि इन लोगोंमेंसे बहुतरे तो गिरमिट-भुक्त थे । हिंदुस्तानमें उनका कोई सगा-सबधी न मिलता । कुछ तो दक्षिण अफ्रीकामें ही जन्मे भी थे । सबके लिए हिंदुस्तान परदेश-सा तो हो ही गया था । ऐसे निराधार जनोंको समुद्रके किनारे उतारकर भटकने-को छोड़ देना तो क्रूरता ही मानी जायगी । इसलिए उन्हें इतमीनान दिलाया गया कि हिंदुस्तानमें उनके लिए सब आवश्यक प्रबंध कर दिया जायगा ।

यह सब करते हुए भी जबतक उनके साथ कोई मददगार न हो तबतक उनको शांति नहीं मिल सकती थी । देशनिकाला पानेवालोंका यह पहला ही जत्था था । स्टीमर छूटनेके कुछ ही घंटे वाकी रह गये थे । चुनावके लिए वक्त न था । साथियों-मेंसे भाई पी० के० नायडुपर मेरी नजर गई । मैंने पूछा—

“इन गरीब भाइयोंको पहचाने हिंदुस्तान जा सकते हो ?”

“क्यों नहीं ?”

“पर स्टीमर तो छूटने ही वाला है ।”

“छूटने दीजिए ।”

“पर तुम्हारे कपड़े-लत्तेका क्या होगा ? खानेका क्या होगा ?”

“कपड़े जो पहने हूँ वही काफी होंगे । खाना स्टीमरसे मिल जायगा ।”

मेरे हर्ष और आश्चर्यकी सीमा न रही । यह बातचीत पारसी हस्तमजीके मकानपर हुई थी । वही उनके लिए कुछ कपड़े-कंबल आदि माग-भूगकर उन्हें रवाना किया ।

“देखना, रास्तेमे इन भाइयोकी पूरी सम्हाल रखना । उन्हें सुलाकर सोना । मैं मद्रासमे श्रीनटेसन्को तार दे रहा हूँ । वह जो कहे सो करना ।”

“मैं अपने आपको सच्चा सिपाही साबित करनेकी कोशिश करूँगा ।” यह कहकर नायडू रवाना हो गए । मैंने सोच लिया कि जहाँ ऐसे वीर पुरुष हों वहाँ हार हो ही नहीं सकती । भाई नायडूका जन्म दक्षिण अफ्रीकामे ही हुआ था । हिन्दुस्तानके उन्हें कभी दर्शन ही नहीं हुए थे । मैंने श्रीनटेसन्के नाम सिफारिशी चिट्ठी दी थी । उन्हें तार भी दे दिया ।

यह कहना अत्युक्ति न होगा कि हिन्दुस्तानमें इस वक्त प्रवासी भारतीयोंके कष्टका अध्ययन करनेवाले, उनकी सहायता करनेवाले और उनके वारेमे नियमित तथा ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले अकेले श्रीनटेसन् ही थे । उनके साथ मेरा पत्रव्यवहार नियमित रूपसे हुआ करता था । ये निर्वासित भाई जब मद्रास पहुंचे तो श्रीनटेसन्ने उनकी पूरी मदद की । भाई नायडूके जैसे समझदार आदमीके साथ रहनेसे उन्हें भी समुचित सहायता मिली । उन्होंने नगरवासियोंसे चर्चा किया और निर्वासितोंको यह मालूम नहीं होने दिया कि हम देशनिकालेका दंड पाकर यहाँ आये हैं ।

मद्रासवाल सरकारका यह काम जितना क्रूरता-भरा था

उतना ही गैरकानूनी भी था। वह खुद भी इसको जानती थी। आमतौरसे लोगोंको इस बातकी जानकारी नहीं रहती कि सरकारें अकसर जान-बूझकर अपने कानून तोड़ा करती हैं। कठिनाईमें पडनेपर नया कानून बनानेका समय रहता नहीं, इसलिए कानूनको तोड़कर मनमानी कर लेती हैं और पीछे या तो नये कानून बना लेती हैं या ऐसी स्थिति पैदा करती हैं कि जिससे जनता इस बातको भूल जाय कि सरकारने कानून तोड़ा है।

सरकारके इस गैरकानूनी कामके खिलाफ हिंदुस्तानियोंने जबर्दस्त आंदोलन चलाया। हिंदुस्तानमें भी शोर मचाया और ट्रांसवाल सरकारके लिए इस तरह गरीब हिंदुस्तानियोंको देशनिकाला देना कठिन हो गया। हिंदुस्तानियोंको जो कानूनी कार्रवाइया करनी चाहिए थीं वे सब उन्होंने कीं। अपीलें कीं और उनमें भी उनको जीत हुई। अंतमें निर्वासितोंको ठेठ हिंदुस्तान भेजनेकी प्रथा बंद हुई।

पर इसका असर सत्याग्रही सेनापर पड़े बिना न रहा। अब उसमें सच्चे योद्धा ही रह गये। 'सरकार कहीं पकड़कर हिंदुस्तान न भेज दे' इस भयका त्याग सब नहीं कर सके।

कौमका उत्साह भग करनेके लिए सरकारने यही एक काम नहीं किया। पिछले प्रकरणमें मैं बता चुका हूं कि सत्याग्रही कैदियोंको दुःख देनेमें उसने जरा भी कसर नहीं रखी। उनसे पत्थर तुड़वाने तकके काम कराये जाते। इतनेसे भी आगे सरकार बढ़ गई। पहले सभी कैदी साथ रखे जाते थे। अब उन्हें अलग-अलग रखनेकी नीति ग्रहण की गई और हर जेलमें उन्हें खव तकलीफ दी गई। ट्रांसवालका जाड़ा बहुत सख्त होता है। ठंड इतनी अधिक होती है कि सबेरे काम करते हुए हाथ अकड़ जाते हैं। इससे कैदियोंके लिए जाड़ेके दिन बहुत कठिन हो गये। ऐसी दशामे कुछ कैदी एक छोटीसी



जेलमें रखे गये जहा कोई उनसे मिलने भी नहीं जा सकता । इस जंथमें स्वामी नागप्पा नामका एक १८ वरसका नौजवान सत्याग्रही था । वह जेलके नियमोंका पालन करता और जो काम उसे सौंपा जाता पूरा करता । सबरे, पौ फटते ही, उसे सबकपर मिट्टी कटनेके लिए ले जाते थे । इससे उसे फेफड़ेके शोथ (डवल निमोनिया) का कठिन रोग हो गया और अतमें ७ जुलाई १९०९ को उसने अपने प्रिय प्राणोंकी बलि दे दी । नागप्पाके साथियोंका कहना है कि अंतिम क्षणतक वह लड़ाईकी ही बात सोचता, करता रहा । जेल जानेका उसे कभी पछतावा न हुआ । देशकी खातिर मिली हुई मौतको उसने इस तरह गले लगाया जैसे कोई भिन्नसे मिलता है । हमारे पैमानेसे नापा जाय तो नागप्पाको निरक्षर कहना होगा । अंग्रेजी, जुलू आदि भाषाएं वह अभ्याससे बोल लेता था । अंग्रेजी टूट्टी-फट्टी शायद लिख भी लेता हो; पर उसे विद्वानोंकी पंक्तिमें तो नहीं ही विठा सकते थे । फिर भी नागप्पाके धीरज, उसकी शक्ति, उसकी देशभक्ति, आमरणान्त बनी रहनेवाली उसकी दृढताका विचार करे तो क्या उसके विषयमें और कुछ चाहने लायक रह जायगा ? बड़े विद्वानोंके न मिलनेपर भी ट्रांसवालकी लड़ाई चल सकी; पर नागप्पा-जैसे सिपाही न मिले होते तो क्या वह चल सकती थी ?

जैसे नागप्पाकी मृत्यु जेलके कण्टोसे हुई, वैसे ही नारायण स्वामीकी देशनिकालसे हुई (१६ अक्टूबर १९१०) । देशनिकालकी तकलीफे उसकी मौत साबित हुई । पर इन घटनाओंसे कौमने हिम्मत न हारी । हाँ, कमजोर दिलवाले मैदानसे खिसक गये । पर वे भी अपनी शक्तिभर कुर्बानी तो कर ही चुके थे । कमजोर जानकर हमें उनकी अवगणना नहीं करनी चाहिए । हममें यह रिवाज हो गया है कि आगे बढ़ जानेवाले पीछे छूटनेवालोंका तिरस्कार करते और अपनेको ।

बड़ा वीर मानते हैं। हकीकत अकसर इसकी उलटी होती है। जिसकी शक्ति पचास रुपये देनेकी हो वह पन्चीस देकर बैठ जाय और पाच देनेकी शक्ति रखनेवाला पूरे पांच हाजिर कर दे तो हम यही मानेंगे कि पाच देनेवालेने अधिक दिया। फिर भी पन्चीस देनेवाला पाच देनेवालेके सामने अकसर इतराता है। पर हम जानते हैं कि उसके इतरानेका कोई भी कारण नहीं। वैसे ही अपनी निर्बलताके कारण आगे न जा सकनेवाला अगर अपनी सारी शक्ति खर्च कर चुका हो और शक्ति चुरा रखनेवाला उस नाप-तौलमे उससे अधिक शक्ति लगा रहा हो तो भी पहला उससे अधिक योग्य है। इसलिए जो लोग युद्धके अधिक कठोर होनेपर बैठे रहे उन्होंने भी देशकी सेवा तो की ही। अब वह वक्त आया जब अधिक सहन-शक्ति और अधिक हिम्मतकी आवश्यकता थी। इसमे भी ट्रासवालके भारतीय पीछे न रहे। युद्ध जारी रखनेके लिए जितनेकी जरूरत थी उतने तो रहे ही।

इस तरह हिंदुस्तानियोंकी दिन-दिन अधिक कठिन परीक्षा होने लगी। ज्यो-ज्यो वे अधिक दल प्रकट करते त्यो-त्यो सरकार भी और ज्यादा ताकत काममे लाती। सतरनाक कैदियोंके लिए या जिन्हे खास तौरसे सीधा करना होता है उनके लिए हर देशमे कुछ खास कैदखाने रखे जाते हैं। ट्रासवालमे भी ऐसा ही था। ऐसे एक जेलखानेका नाम 'डायकलफ' था। वहांका दारोगा भी सख्त, वहांकी मशकूत भी सख्त। फिर भी उसको भी पूरा कर देनेवाले कैदी मिल गये। वे मशकूत करनेको तैयार थे, पर अपमान सहनेको तैयार नहीं थे। दारोगाने उनका अपमान किया, इसलिए उन्होंने उपवास आरम्भ किया। जतन यह थी—“जबतक तुम इस दारोगाको नहीं हटाते या हमारी जेल नहीं बदलते तबतक हम अन्न ग्रहण नहीं करेंगे।” यह उपवास शुद्ध था। उपवास

करनेवाले ऐसे आदमी नहीं थे जो छिपे तौरपर कुछ खा-पी लेते हों। पाठकोंको जान लेना चाहिए कि ऐसे मामलेमें यहा हिंदुस्तानमें जो आंदोलन हो सकता है द्रासवालमें उसके लिए अधिक अवकाश नहीं था। वहाँके जेल-नियम भी अधिक कड़े थे। ऐसे समयमें भी कैदियोंको देखने जानेका वहा रिवाज नहीं था। सत्याग्रही जब जेलमें पहुँच गया तब आमतौरसे उसे अपनी फिक्र खुद करनी पड़ती। यह लडाईं गरीबोंकी थी और गरीबोंके तरीकेसे चलाई जा रही थी। अतः ऐसी प्रतिज्ञाकी जोखिम बहुत बड़ी थी, फिर भी ये सत्याग्रही दृढ़ रहे। उस वक्तका उनका कार्य आजकी तुलनामें अधिक स्तुत्य गिना जायगा; क्योंकि उस समय अनशनकी आदत लोगोंको नहीं पड़ी थी। पर वे सत्याग्रही अडिग रहे और उनकी जीत हुई। सात दिन के उपवासके बाद उन्हें दूसरी जेलमें भेजनेका हुक्म आ गया।

: ८ :

## फिर शिष्ट-मंडल

इस प्रकार सत्याग्रहियोंको जेलमें ठूसने और दैगनिकाला देनेका चक्र चल रहा था। इसमें ज्वारभाटा आता रहता। दोनों पक्ष कुछ ढीले भी हो रहे थे। सरकारने देखा कि जेलोंको भरनेसे पक्के सत्याग्रही हारनेवाले नहीं। दैगनिकालेसे उसकी बदनामी होती थी। मामले अदालतमें पहुँचते तो उनमें उसकी हार भी होती थी। हिंदुस्तानी भी जोरदार मुकाबलेके लिए तैयार नहीं थे। न इतने सत्याग्रही अब रहे ही गये थे। कुछ थक गये थे, कुछने विलकुल हिम्मत हार दी थी और अपने निश्चयपर अटल रहनेवालोंको मूर्ख समझते थे।

पर ये मूर्ख अपने आपको बुद्धिमान मानकर भगवान् और अपनी लड़ाई तथा उसके साधनोंकी सचाईपर पूरा भरोसा रखे हुए बैठे थे। वे मानते थे कि अंतमें तो सत्यकी ही जय होती है।

दक्षिण अफ्रीकाकी राजनीति तो एक क्षणके लिए भी स्थिर नहीं होती थी। बोअर और अंग्रेज दोनों चाहते थे कि दक्षिण अफ्रीकाके सब उपनिवेशोंको इकट्ठा करके और अधिक स्वतंत्रता प्राप्त करे। जनरल हर्टजोग चाहते थे कि ब्रिटेनसे विलकुल नाता टूट जाय। दूसरे लोग उससे नामका संबंध बनाए रखना पसंद करते थे। अंग्रेज संबंधका पूर्ण विच्छेद तो सहन न कर सकते थे। जो कुछ मिलना था वह ब्रिटिश पार्लामेंटके जरिये ही मिल सकता था, इसलिए बोअरों और अंग्रेजोंने यह तै किया कि दक्षिण अफ्रीकाकी ओरसे एक शिष्ट-मंडल विलायत जाय और उसका मामला ब्रिटिश मन्त्रि-मंडलके सामने रखे।

भारतीयोंने देखा कि चारो उपनिवेश एक हो गये, उनका 'यूनियन' (संघ) बन गया तो हमारी जैसी दशा है उससे भी बुरी हो जायगी। सभी उपनिवेश सदा हिंदुस्तानियोंको अधिक-से-अधिक दबाये रखना चाहते थे। यह तो स्पष्ट ही था कि ये सब भाग्यके द्वेपी आपसमें और ज्यादा मिल गये तो हिंदुस्तानी और ज्यादा दबाये जायगे। गो हिंदुस्तानियोंकी आवाज नकारखानेमें तूतीकी आवाज-जैसी ही थी, फिर भी हमें एक भी कोशिशसे वाज न रहना चाहिए, यह सोचकर भारतीयोका एक शिष्ट-मंडल फिर विलायत भेजनेका निश्चय हुआ। इस द्वार पोउमंडरके मेसन सेठ हाजी हबीब शिष्ट-मंडल में मेरे साथी चुने गये। इनका ट्रांसवालका कारबार बहुत पुराने जमानेसे था। अनुभव विस्तृत था। अंग्रेजी पढ़ी नहीं थी, फिर भी अंग्रेजी, डच, जूल आदि भाषाएं आसानीसे समझ लेते थे। इनकी सहानुभूति सत्याग्रहियोंकी ओर थी;

पर पूरे सत्याग्रही नहीं कहे जा सकते थे। हम दोनों केपटाउन से जिस जहाज (केनिलवर्थ कासिल) पर रवाना हुए। उसपर दक्षिण अफ्रीकाके मशहूर वुजुर्ग मेरीमेन भी थे। वह यूनियन वनवानेके लिए जा रहे थे। जनरल स्मट्स आदि तो पहलेसे पहुंचे हुए थे। नेटालकी तरफसे भी एक अलग भारतीय शिफ्ट-मडल इस वक्त विलायत गया था। यह सत्याग्रहके सिलसिलेमें नहीं, बल्कि नेटालमें हिंदुस्तानियोंको जो विशेष कष्ट और कठिनाईया थी उनकी बात कहने गया था।

इस वक्त लार्ड क्रूपर उपनिवेश मंत्री थे और लार्ड मॉरले भारत मंत्री। खूब बातचीत हुई। हम बहुतसे मिले। जितने पत्रोंके सपादकों और साधारण या उमरावोंकी सभाके सदस्योंसे हम मिल सकते थे उनमेंसे एकसे भी मिले बिना नहीं रहे। लार्ड एम्प्टहिलके वारेमें कह सकता हू कि उन्होंने हमारी वेहद मदद की। वह मि० मेरीमेन, जनरल वोथा आदिसे मिला करते थे और अतमें जनरल वोथाका एक सदेसा भी लाये। उन्होंने कहा—'जनरल वोथा आपकी भावनाको समझते हैं। आपकी छोटी मांगें मंजूर कर लेनेको तैयार हैं, पर एंग्लियाटिक कानून रद्द करने और दक्षिण अफ्रीकामें नये आदमियोंके आनेके संबंधके कानूनमें बदल-बदल करनेको तैयार नहीं हैं। आप चाहते हैं कि कानूनमें जो काले-गोरेका भेद किया गया है वह दूर कर दिया जाय। उनको इसमें इन्कार है। भेद रखना उनके लिए सिद्धांतरूप है और शायद वह सोचते हैं कि मैं इस भेदको दूर कर भी दू तो दक्षिण अफ्रीकाके गोरे इस बातको कभी सहन नहीं करेंगे। जनरल स्मट्सकी राय भी जनरल वोथाकी जैसी ही है। दोनों कहते हैं कि यह हमारा अंतिम निर्णय और अंतिम प्रस्ताव है। आप इससे अधिक मांगेंगे तो आप दुखी होंगे और आपकी काम भी दुखी होगी। अतः आप जो निर्णय करे सोच-समझकर करे।'

जनरल बोथाने मुझसे कहा है कि आपसे यह कह दू और आपकी जिम्मेदारीका खयाल आपको करा दूँ।”

यह संदेसा सुनानेके बाद लार्ड एम्प्टहिलने कहा—“देखिये, आपकी सारी व्यावहारिक माँगें तो जनरल बोथा मंजूर कर ही रहे हैं और इस दुनियामे हमे कही लेना और कही देना तो पड़ता ही है। हम जो चाहते हैं वह सब तो हमें मिल नहीं सकता। इसलिए आपको मेरी अपनी सलाह यही है कि आप इस प्रस्तावको स्वीकार कर ले। आपको सिद्धांतके लिए लड़ना हो तो आगे चलकर लड़ सकते हैं। आप दोनों इस बातपर विचार कर ले और फिर जो मुनासिब हो वह जवाब दें।”

यह सुनकर मैंने सेठ हाजी हबीबकी ओर देखा। उन्होंने कहा—“मेरी तरफसे कहिये कि मैं समझौता-पक्षकी ओरसे कहता हूँ कि मैं जनरल बोथाका प्रस्ताव स्वीकार करता हूँ। वह इतना दे देगे तो तत्काल हम संतोष कर लेंगे और सिद्धांतके लिए पीछे लड़ लेंगे। अब कौमका और वरवाद होना मुझे पसंद नहीं। जिस पक्षकी ओरसे मैं बोल रहा हूँ उसकी संख्या अधिक है और उसके पास पैसा भी अधिक है।” मैंने इन वाक्योंके अक्षर-अक्षरका उलथा कर दिया और फिर अपने सत्याग्रही पक्षकी ओरसे कहा—“आपने जो कष्ट किया उसके लिए हम दोनों आपके अहसानमंद हैं। मेरे साथीने जो बात कही है वह ठीक है। वह उस पक्षकी ओरसे बोले हैं जो संख्या और पैसा दोनोंमें अधिक बलवान है। जिनकी ओरसे मैं बोल रहा हूँ वे पैसेमें उनसे गरीब और संख्यामें थोड़े हैं। पर वे सिरपर कफन बांधे हुए हैं। उनकी लड़ाई व्यवहार और सिद्धांत दोनोंके खातिर है। अगर दोमेंसे एकको छोड़ना ही पड़े तो वे व्यवहारको जाने देगे और सिद्धांतके लिए लड़ेंगे। जनरल बोथाकी शक्तिका हमे अंदाजा है, पर अपनी प्रतिज्ञाको हम उससे ज्यादा बजनदार मानते हैं, इसलिए उसका पालन

करनेमें हम मर-मिटनेको तैयार हैं। हम घीरज रखेंगे। हमारा विश्वास है कि हम अपने निश्चयपर अटल रहे तो जिस ईश्वरके नामपर हमने प्रतिज्ञा की है वह उसे पूरी करेगा।

“आपकी स्थिति में पूरी तरह समझता हूँ। आपने हमारे लिए बहुत किया है। अब आप हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियोंका और साथ न दे सके तो हमें उससे भ्रम न होगा और इससे हम आपके उपकारोको भूलेंगे नहीं। हमें आशा है कि आप भी हमें आपकी सलाह कबूल न कर सकनेके लिए माफ कर देंगे। जनरल बोथोको हम दोनोंकी वाते सुखसे सुनाइएगा और कहिएगा कि हम जो थोड़ेसे सत्याग्रही हैं वे अपनी प्रतिज्ञाका अवश्य पालन करनेवाले और यह आशा रखनेवाले हैं कि हमारी दुख-सहनकी शक्ति अतमें उनके हृदयको भेदेगी और वे एशियाटिक कानूनको रद्द कर देंगे।”

लाड एम्प्टहिलने उत्तर दिया, “आप यह न समझिएगा कि मैं आपको छोड़ दूंगा। मुझे भी अपनी भलमनसीकी रक्षा तो करनी ही है। अग्नेज जिस कामको एक बार हाथमें लेता है उसको यकायक छोड़ता नहीं। आपकी लड़ाई न्यायसंगत है। आप शुद्ध साधनोसे लड़ते हैं। मैं आपको कैसे छोड़ सकता हूँ? पर मेरी स्थिति आप समझ सकते हैं। कष्ट तो आपको ही सहने होंगे। इसलिए समझौता हो सकता हो तो उसे स्वीकार करनेकी सलाह देना मेरा धर्म है। पर आप जिन्हे कष्ट सहन करना है, अपनी टेकके लिए चाहे जितना कष्ट सहनेको तैयार हैं तो मैं आपको कैसे रोक सकता हूँ? मैं तो आपको बघाई ही दूंगा। अतः आपकी कमेटीका अध्यक्ष तो बना ही रहूंगा और मुझसे जो मदद बन पड़ेगी वह भी जरूर करता रहूंगा; पर आपको इतना ध्यानमें रखना होगा कि मैं उमराव सभाका एक छोटा सदस्य समझा

जाता हूँ। मेरा वजन ज्यादा नहीं है। फिर भी जो कुछ है वह आपके लिए काम आता ही रहेगा, इस विषयमें आप निश्चक रहें।”

ये प्रोत्साहनके वचन सुनकर हम दोनोंको प्रसन्नता हुई। इस प्रसंगकी एक मधुर वस्तुकी ओर शायद पाठकोने ध्यान न दिया हो। सेठ हाजी हबीब और मुझमें, जैसा कि ऊपर बता चुका हूँ, मतभेद था, फिर भी हममें परस्पर इतना प्रेम और विश्वास था कि सेठ हाजी हबीबको अपना विरोधी वक्तव्य मेरे ही जरिये कहलानेमें हिचक न हुई। वह इतना विश्वास रख सकते थे कि उनका प्रश्न में लाई एम्प्टहिलके सामने ठीक तौरसे उपस्थित कर दूंगा।

यहां पाठकोसे एक अप्रस्तुत बात भी कह दूँ। विलायतमें रहनेके दिनोंमें बहुतसे भारतीय अराजकतावादियोंके साथ मेरी बातचीत हुई। उन सबकी दलीलोंका खडन करके और दक्षिण अफ्रीकाके वैसे विचारवाले लोगोंका समाधान करनेके प्रयत्नसे ‘हिंदस्वराज’ की उत्पत्ति हुई। उसके मुख्य तत्त्वोंकी मैंने लाई एम्प्टहिलके साथ भी चर्चा की थी। उसमें उद्देश्य यही था कि वह जरा भी यह न सोच सके कि मैंने अपने विचारको दबाकर उनके नाम और उनकी सहायताका दक्षिण अफ्रीकाके कामके लिए दुरुपयोग किया। उनके साथ हुई मेरी वहस और बातचीत मुझे सदा याद रही है। उनके घरमें बीमारी होते हुए भी वह मुझसे मिले थे और यद्यपि ‘हिंदस्वराज’में प्रकट किये हुए मेरे विचारोंसे वह सहमत नहीं हुए, फिर भी दक्षिण अफ्रीकाकी लड़ाईमें उन्होंने अपना हिस्सा आखिरतक पूरा अदा किया और हमारा मधुर संबंध अंततक बना रहा।



: ६ :

## टाल्स्टाय फार्म—१

इस बार विलायतसे जो शिष्टमंडल लौटा वह अच्छी खबर नहीं लाया। लोग लार्ड एम्प्टहिलके साथ हुई बातचीतका नतीजा क्या निकालेगे इसकी चिंता मुझे अधिक नहीं थी। मेरे साथ अंततक कौन खड़ा होगा यह मैं जानता था। सत्याग्रहके विषयमे मेरे विचार अब अधिक परिपक्व हो गये थे। उसकी व्यापकता और उसकी अलौकिकताको अब मैं अधिक समझ सका था। इसलिए मैं शांत था। 'हिंद-स्वराज' को मैंने विलायतसे लौटते हुए जहाजपर ही लिख डाला। उसका उद्देश्य केवल सत्याग्रहकी भव्यता दिखाना था। यह पुस्तक मेरी श्रद्धाका मानदंड है। इससे लडनेवालोकी संख्याका मेरे सामने सवाल ही नहीं था।

पर मुझे पैसेकी चिंता रहती थी। लंबे अरसेतक लड़ाई चलानी हो और पासमें पैसा न हो, यह दुख भारी हो गया। पैसेके बिना लड़ाई चलाई जा सकती है, पैसा अकसर सत्यकी लड़ाईको दूषित कर देता है, प्रभु सत्याग्रहीको, मुमुक्षुको, आवश्यकतासे अधिक साधन कभी देता ही नहीं, इस बातको जितना स्पष्ट आज समझता हूँ उतना उस वक्त नहीं समझता था। पर मैं आस्तिक हूँ। प्रभुने उस वक्त भी मेरा साथ दिया। मेरा संकट काटा। एक ओर मुझे दक्षिण अफ्रीकाके तटपर उतरते ही कौमको कामकी विफलताका समाचार देना था तो दूसरी ओर प्रभुने मुझे पैसेके कष्टसे मुक्त कर दिया। केप-टाउनमे उतरते ही मुझे विलायतसे तार मिला कि सुर रतनजी जमशेदजी ताताने सत्याग्रहकीषमें २५ हजार रुपया दिया है। इतना रुपया उस वक्त हमारे लिए काफी था। हमारा काम चल निकला।

पर इस धनसे या बड़ी-से-बड़ी धनराशिसे सत्याग्रहकी आत्मशुद्धिकी-आत्मबलकी-लड़ाई नहीं चल सकती। इस सपनाके लिए चारित्र्यकी पूजा होनी चाहिए। मालिकके विना महल जैसे खडहर-सरीखा लगता है वैसे ही चारित्र्यहीन मनुष्य और उसकी सम्पत्तिको समझना चाहिए। सत्याग्रहियोंने देखा कि लड़ाई कितने दिन चलेगी इसका अंदाजा किसीसे नहीं लगाया जा सकता। कहां जनरल बोधा और जनरल स्पट्सकी एक इंच भी न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहा सत्याग्रहियोंकी मरते-मरते जूमनेकी प्रतिज्ञा। हाथी और चीटीकी लड़ाई थी। हाथीके एक पावके नीचे अगणित चीटियोंका भुरता बन सकता है। सत्याग्रही अपने सत्याग्रहकी अवधिको हृदसे घेर नहीं सकता। एक बरस लगे या अनेक, उसके लिए सब बराबर हैं। उसके लिए तो लड़ना ही जय है। लड़नेके मानी थे जेल जाना, देगनिकाला होना। इसके बीच बाल-बच्चोंका क्या हो? निरंतर जेल जानेवालेको नौकरी तो कोई देगा ही नहीं। जेलसे छूटनेपर खुद क्या खायं, बाल-बच्चोंको क्या खिलाये? कहाँ रहे? भाड़ा कौन दे? आजीविकाके विना सत्याग्रही भी उद्विग्न होता है। भूखो मरकर और अपनोको भूखों मारकर भी लड़ाई लड़ते रहनेवाले दुनियामे अधिक नहीं हो सकते।

अबतक जेल जानेवालोंके कुनवोंका भरण-पोषण उनको हर महीनेपैसा देकर किया जाता था। हरएकको उसकी आवश्यकताके अनुसार दिया जाता था। चीटीको कण और हाथीको मन। सबको बराबर तो दे ही नहीं सकते थे। पांच बच्चेवाले सत्याग्रही और ब्रह्मचारीको जिसके आगे-पीछे कोई हो ही नहीं, एक पातमें नहीं बिठा सकते। केवल ब्रह्मचारियोंको ही भरती करें, यह भी नहीं हो सकता था। तब किस दर या पैमानेसे पैसा दिया जाय? आम तौरसे तो हरएक कुटुंबसे पूछा जाता कि कम-से-कम कितने रुपयेमे उसका गुजर हो जायगा और जो

रकम वह बताता उसपर विश्वास रखकर उसीके अनुसार उसका खर्च दिया जाता। इसमें छल-कपटके लिए बहुत अवकाश था। कपटियोंने इसका कुछ लाभ भी लिया। दूसरे सच्चे लोग भी, किसी खास ढंगसे रहनेके आदी होनेसे उसके योग्य सहायताकी आशा रखते थे। मैंने देखा कि इस ढंगसे लंबे अरसेतक लड़ाई चलाना अशक्य है। लायकके साथ अन्याय होने और नालायकके अपने पाखंडमें सफल हो जानेका डर रहता है। यह मुश्किल एक ही तरह हल हो सकती थी कि सारे कुटुंबोंको एक जगह रखे और सब साथ रहकर काम करे। इसमें किसीके साथ अन्याय होनेका डर न रहता। ठगोंके लिए बिलकुल गुब्बाइश नहीं रहती, यह भी कह सकते हैं। जनताके पैसेकी वचत होती और सत्याग्रही कुटुंबोंको नये और सादे जीवनकी तथा बहुतेके साथ मिलकर रहनेकी शिक्षा मिलती, अनेक प्रातों और अनेक धर्मोंके भारतीयोंके साथ रहनेका मौका मिलता।

पर ऐसी जगह कहा मिले ? शहरमें रहने जाय तो वकरीको निकालते हुए ऊटोको धुंसा लेनेका डर था। महीनेके खर्चके बराबर शायद मकानभाड़ा ही देना पड़े और सत्याग्रही कुटुंबोंको शहरमें सादगीसे भी कठिनाई होती। फिर शहरमें इतना लंबा-चौड़ा स्थान भी न मिल सकता जहा बहुतसे परिवार घर बैठे कोई उपयोगी धंधा कर सकें। अतः यह स्पष्ट था कि हमें ऐसा स्थान पसंद करना चाहिए जो शहरसे न बहुत दूर हो और न बहुत नजदीक, फिनिक्स तो था ही, 'इंडियन ओपीनियन' वहां छपता था। थोड़ी खेती भी होती थी, बहुतसे सुभीते मौजूद थे। पर फिनिक्स जोहान्सबर्गसे ३०० मीलके फासलेपर और रेलसे तीस घंटेका रास्ता था। इतनी दूर कुटुंबोंको लाना, ले जाना टेढ़ा और महंगा काम था। फिर सत्याग्रही कुटुंब अपना घर-बार छोड़कर इतनी दूर जानेको तैयार नहीं हो सकते थे।

होते भी तो उन्हें और सत्याग्रही बंदियोंको जेलसे छूटनेपर इतनी दूर भेजना अशक्य-सा लगा ।

अतः स्थान तो ट्रांसवालमे ही और वह भी जोहान्सबर्गके पास ही होना चाहिए था । मि० केलनबेकका परिचय पाठकोंको करा चुका हूँ । उन्होंने ११०० एकड़ जमीन खरीदी और सत्याग्रहियोंको बिना किसी आड़े-लगानके उसको काममे लानेका अधिकार दे दिया (३० मई १९१०) । इस जमीनमे बहुतेसे एक हजारके लगभग, फलवाले पेड़ थे और पहाड़ीकी तलहटीमे पाँच-सात आदमियोंके रहने लायक एक छोटा-सा मकान था । पानीके लिए एक झरना और दो कुएँ थे । रेलवे स्टेशन लाले करीब एक मीलपर था और जोहान्सबर्ग २१ मील । इस जमीनपर ही मकान बनवाने और सत्याग्रही कुटुंबोंको बसानेका निश्चय किया गया ।

: १० :

### टात्सुदाय फार्म—२

यह जमीन ११०० एकड़ थी और जहाँ ऊँचे हिस्सेपर एक छोटी-सी पहाड़ी थी, जिसकी तलहटीमें एक छोटा-सा मकान था । उसमे एक हजारके लगभग फल वाले पेड़ थे । उनमे नारंगी, एप्रिकॉट, प्लम इफरातसे फलते, इतने कि मौसिममे सत्याग्रही भरपेट खाये तो भी बच रहे । पानीका एक नन्हा-सा झरना था । उससे पानी मिल जाता । जहाँ रहना था उस जगहसे वह कोई ५०० गज दूर होगा । इसलिए पानी काँवरपर भरकर लानेकी मेहनत तो थी ही ।

इस स्थानमे हमारा यह आग्रह था कि घरका कोई काम नौरसे न लिया जाय और खेती-बारी और घर बनानेका काम

भी जितना अपने हाथो हो सकता है किया जाय। इसलिए पाखाना साफ करनेसे लगाकर खाना पकानेतकका सारा काम हमे अपने हाथों ही करना था। कुटुंबोंका रखना था, पर हमने शुरूसे ही तै कर लिया था कि स्त्रियां और पुरुष अलग-अलग रखे जायं। इसलिए दोनोंके लिए अलग-अलग मकान और थोड़े फासलेपर बनानेका निश्चय हुआ। १० स्त्रियों और ६० पुरुषोंके रहने लायक मकान तुरत बना लेनेका निश्चय किया गया। एक मकान मि० केलनबेकके रहनेके लिए बनाया था और उसके साथ-साथ एक पाठशालाके लिए भी। इनके सिवा बढईके काम, मोचीके काम इत्यादिके लिए एक कारखाना भी तैयार करना था।

जो लोग इस स्थानमे रहनेके लिए आनेवाले थे वे गुजरात, मद्रास, आंध्र और उत्तरी हिंदुस्तानके थे। धर्मके विचारसे वे हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे। कुल ४०के लगभग युवक, दो-तीन बूढ़े, पाच स्त्रियां और २०से ३० तक बच्चे थे, जिनमे पाच लडकिया थीं।

स्त्रियोंमें जो ईसाई थी उन्हें और दूसरोंको भी मांसाहारकी आदत थी। मि० केलनबेककी और मेरी भी राय थी कि इस स्थानमे मांसाहारका प्रवेश न हो तो अच्छा है। पर जिन्हे उसके विषयमे धर्म-नीतिकी तनिक भी अडचन न हो, जो संकटके समय इस स्थानमें आ रहे थे और जिन्हें जन्मसे इस चीजकी आदत हो उनसे थोड़े दिनोंके लिए भी उसे छोडनेको कैसे कहा जा सकता ? न कहा जाय तो खर्च कितना होगा ? फिर जिन्हे गोमांसकी आदत हो उन्हें क्या गोमांस दिया जाय ? कितने रसोईघर चलाये जाय ? मेरा धर्म इस विषयमे क्या था ? इन कुटुंबोंको पैसा देनेका निमित्त बनकर भी तो मैं मांसाहार और गोमांसाहारमे सहायक होता ही था। अगर यह नियम कर लू कि मांसाहार करनेवालेको मदद न मिलेगी तो

सत्याग्रहकी लड़ाई मुझे केवल निरामिषभोजियोंके जरिये ही लड़नी होगी। यह भी कैसे हो सकेगा ? लड़ाई तो भारतीय-मात्रकी थी। अपना धर्म मैं स्पष्ट देख सका। ईसाई या मुसलमान भाई गोमांस ही मागे तो मुझे उनको वह देना ही होगा। मैं उन्हें इस स्थानमें आनेकी मनाही नहीं कर सकता।

पर प्रेमका बेली ईश्वर है ही। मैंने तो सरल भावसे ईसाई वहनोके सामने अपना सकट रखा। मुसलमान भाइयोंने तो मुझे केवल निरामिष रसोई चलानेकी इजाजत पहले ही दे दी थी, केवल ईसाई वहनोकी बात मुझे समझनी थी। उनके पति या पुत्र तो जेलमें थे। उनकी सम्मति मुझे प्राप्त थी, उनके साथ ऐसे मौके अनेक बार आ चुके थे। केवल वहनोके साथ ऐसे निकट संवधका यह पहला ही अवसर था। मैंने उनसे मकानकी अड़चन, पैसेकी अड़चन और अपनी भावनाकी बात कही, साथ ही यह इतमीनान भी दिला दिया कि वे मांगेगी तो मैं गोमांस भी हाजिर कर दूंगा। वहनोने प्रेमभावसे मांस न मांगना मंजूर किया। रसोईका काम उनके हाथमें सौंपा गया। उनकी मददके लिए हममेंसे एक-दो पुरुष भी दे दिये गये। उनमें मैं तो था ही। मेरी मौजूदगी छोटे-मोटे झगड़े-टंटोंको दूर रख सकती थी। रसोई जितनी सादी हो सकती है रखनेका निश्चय हुआ। खानेका समय निश्चित हुआ। रसोई एक ही रखी गई। सबको एक ही पांतमें भोजन करना था, सबको अपने-अपने वरतन धो-भाजकर साफ रखने थे। शामिल वरतन सब लोग वारी-वारीसे मांजें यह तै हुआ। मुझे यह वता देना चाहिए कि टाल्स्टाय फार्म लंबे अरसेतक चला, पर वहनों या भाइयोंने कभी मासाहारकी मांग नहीं की। शराब, तंबाकू आदि तो वर्जित थे ही।

मैं लिख चुका हूँ कि मकान बनानेका काम भी जितना अपने हाथों हो सके उतना करनेका हमारा आग्रह था। स्थापति

(Architect) तो मि० वेल्सन थे ही। वह एक यूरोपियन राज ले आये। एक गुजराती बड़ई नारायणदास हमानियाने, अपनी महायत्ना बिना पैसोंके प्रदान की। और दूसरे बड़ई भी थोड़े पैसोंमें बन्ना दिये। केवल धारीरिक श्रमका काम हमने अपने हाथों किया। हममेंसे जिनके अग लचीले थे उन्होंने नो पमान कर दिया। बटुंका आवा काम तो बिहारी नामके सत्याग्रहीने उठा लिया। नफारतका काम, शहर जाना और वहाँमे गामान लाना आदि निह गमान थंवी नावडूने अपने जिम्मे ले लिया।

एक टुकड़ीमें एक थे भाई प्रागजी लडूभाई देसाई। उन्होंने अपनी जिदगीमें कभी सर्दी-गर्मी नहीं नहीं थी। यहा तो काड़ातेली ठंड, गरमी और गहरी बरसात सब सहनी थी। हम स्थानमें हमारे नियामका श्रीगणेश तो खेमोमें हुआ। जबतक मकान बने तबतक उन्हीमें मोना पड़ा। मकान दो महीनेमें बने हांगे। मकान नफेद लोहेकी चादरोके थे, इससे उनके बनानेमें ज्यादा खर्च न लगता। हमें लकड़ी भी जिस-जिस नापकी दरकार थी तैयार मिल जाती थी। हमको बस इतना ही करना रहता कि नापकर उनके टुकड़े कर ले। खिडकी, दरवाजे भी थोड़े ही बनाने थे, इनीसे इतने कम समयमें इतने अधिक मकान बना लिये गये। पर इन कामोंमें भाई प्रागजीकी पूरी मशवकत ही गई। जेलकी तुलनामें फार्मका काम निश्चय ही कडा था। एक दिन तो थकावट और गर्मीसे वह बेहोश हो गये; पर वह भ्रष्ट हार माननेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने अपने धारीरको यहाँ पूरी तरह फस लिया और अंतमें तो इतनी शक्ति प्राप्त कर ली थी कि मशवकतमें सबके साथ जुट सके।

ऐसे ही दूसरे भाई थे जोसफ रॉयपन। वह तो बैरिस्टर थे, पर उन्हें बैरिस्टरीका गर्व न था। बहुत कड़ी मेहनत उनसे

न हो सकती थी, ट्रेनसे वोभा उतारना और वैलगाडीपर उसे लादना उनके लिए कठिन था, पर अपनी शक्तिमर उन्होंने इसे भी किया ।

टाल्सटाय फार्ममे निवल सबल हो गये और मेहनत सबके लिए शक्तिबद्धक सावित हुई ।

सबको किसी-न-किसी कामसे जोहान्सवर्ग जाना पड़ता । वच्चोको सैरके लिए जानेकी इच्छा होती, मुझको भी कामवश जाना होता । हमने निश्चय किया कि सार्वजनिक आश्रमके कामसे जाना हो तभी रेलसे जानेकी इजाजत मिले और तीसरे दरजेको छोडकर और किसीमे जाना तो हो ही नहीं सकता था । जिसे सैरके लिए जाना हो वह पैदल चलकर जाय और अपना नास्ता वाघकर साथ ले जाय । कोई गहरमे खानेको खर्च न करे । इतने कड़े नियम न रखे होते तो जो पैसा वचानेके लिए हमने बनवास स्वीकार किया वह रेलभाड़े और बाजारके रास्तेमें उड़ जाता । घरका नास्ता भी सादा ही होता । घरके पिसे और बिना छने आटेकी रोटी, मूगफलीका घर बनाया हुआ मक्खन और नारंगीके छिलकेका मुरब्दा । आटा पीसनेके लिए हाथसे चलानेकी लोहेकी वनी चक्की ली थी । मूगफलीको भूनकर पीस लेनेसे मक्खन तैयार हो जाता था । उसका दाम दूधके मक्खनकी अपेक्षा चार गुना सस्ता पड़ता । नारंगी तो फार्ममे ही इफरातसे होती थी । फार्ममे गायका दूध तो शायद ही कमी लिया जाता । हम द्विब्बेका दूध काममें लाते ।

अब फिर सफरकी चर्चापर आएँ । जिसे जोहान्सवर्ग जानेका शौक होता वह हफ्तेमे एक या दो बार पैदल जाता और उसी दिन लौट आता । पहले वता चुका हूँ कि वह २१ मीलका रास्ता था । पैदल जाने-आनेके इस एक नियमसे ही सैकड़ो रुपये बच गये और पैदल जानेवालोको बहुत



लाभ भी हुआ। कितनोंको पैदल चलनेकी नई आदत पड़ गई। नियम यह था कि इस तरह जानेवाले दो वजे रातको उठे और २॥ वजे रवाना हो जायं। सब छः से सात घंटेके अंदर जोहान्सबर्ग पहुंच सकते थे। कम-से-कम समय लेनेवाले ४ घंटे १८ मिनटमें पहुंचते।

पाठक यह न माने कि ये नियम आश्रमवासियोंपर भाररूप थे। सभी उनका प्रेमपूर्वक पालन करते थे। बलात्कारसे तो मैं एक भी आदमीको वहां न रख सकता। युवक सफरमें ही या आश्रममें, सारा काम हँसते-हँसते और किलकते हुए करते। शारीरिक श्रमके समय तो उन्हें ऊँचम मचानेसे रोकना कठिन होता। उनसे उतना ही काम लेनेका नियम रखा गया था जितना उन्हें खुश रखते हुए लिया जा सके। इससे काम कम हुआ, यह मुझे नहीं जान पड़ा।

पाखानेकी कथा समझ लेनी चाहिए। इतने आदमी इकट्ठे रहते थे, फिर भी किसीको कहीं कूड़ा, मैला या जूठन पड़ी दिखाई नहीं देती थी। एक गढा खोद रखा गया था, सारा कूड़ा उसीमें डालकर ऊपरसे मिट्टी डाल दी जाती। पानी कोई रास्तेमें न गिराने पाता। सब वरतनोंमें इकट्ठा किया जाता और पेड़ोंको सींचनेमें खर्च किया जाता। जूठन और साथ-साथ-कारिके छिलको आदिकी खाद बनती। पाखानेके लिए रहनेके मकानके पास एक चौरस गढा डेढ़ फुट गहरा खोद रखा था। उसीमें नारा पाखाना डाल दिया जाता और ऊपरसे खोदी हुई मिट्टीको भी डालकर पाट दिया जाता। इससे जरा भी दुर्गंध न आती। मक्खियां भी वहां नहीं भिनभिनाती थी और किसीको इसका खयाल भी न आता कि यहाँ पाखाना पाटा गया है। साथ ही फार्मको अमूल्य खाद मिलती थी। हम मैलेका सदुपयोग करें तो लाखों रुपयेकी खाद बचाएं और अनेक रोगोंसे भी बचे। पाखानेके बारेमें अपनी

बुरी आदतके कारण हम पवित्र नदीके किनारेको भ्रष्ट करते हैं, मक्खियोंकी उत्पत्ति करते हैं और नहा-धोकर साफ-सुथरे होनेके बाद, जो मक्खियां हमारी बेहूदी लापरवाहीसे खुले हुए बिष्टापर बैठ चुकी हैं उन्हें अपने शरीरका स्पर्श करने देते हैं। एक छोटी-सी कुदाली हमें बहुत-सी गंदगीसे बचा सकती है। चलनेके रास्तपर मैला फेंकना, थूकना, नाक साफ करना ईश्वर और मनुष्य दोनोंके प्रति पाप है। इसमें दयाका अभाव है। जंगलमें रहनेवाला भी अगर अपने मैलेको मिट्टीमें दबा नहीं देता तो वह दंडके योग्य है।

हमारा काम था सत्याग्रही कुटुंबोंको उद्योगी बनाये रखना, पैसा बचाना और अंतमें स्वावलंबी बनना। हम यह कर सके तो चाहे जितने अरसेतक लड़ सकते थे। जूतोंका तो खर्च था ही। बंद जूते (शु) से गर्म आव-हवामे तो नुकसान ही होता है। सारा पसीना पैर चूस लेता है और नाजुक हो जाता है। मोजेकी जरूरत तो हमारी जैसी आवहवामे होती ही नहीं। पर कांटे-रोड़े आदिसे बचनेके लिए कुछ बचावकी आवश्यकता हम मानते थे। इसलिए हमने कंटकरक्षक अर्थात् चप्पल बनानेका काम सीख लेनेका निश्चय किया। दक्षिण अफ्रीकामें प्राइगट्टाउनके पास मेरियनहिलमें रोमनकैथेलिक पादरियोंका ट्रेपिस्ट नामका मठ है। वहां ऐसे उद्योग चलते हैं। ये पादरी जर्मन हैं। उनके एक मठमें जाकर मि० केलनवेक चप्पल बनाना सीख आये। उन्होंने मुझे सिखाया और मैंने दूसरे साथियोंको। यों अनेक युवक चप्पल बनाना सीख गये और हम मित्रमंडलीमें उसे बचने भी लगे। मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि मेरे कितने ही 'बेले' इस हुनरमें मुझसे सहज ही आगे निकल गये। दूसरा धंधा हमने बड़ईका दाखिल किया। हम एक गांव-सा बसा रहे थे। वहां हमे चौकीसे लगाकर दक्स-सदूकतक अनेक

छोटी-बड़ी चीजोंकी आवश्यकता थी। वे सब चीजे हम अपने हाथ ही बनाते। जिन परोपकारी मिस्त्रियोंकी बात ऊपर कह चुका हूँ उन्होंने तो कई महीनेतक हमें मदद दी। इस विभागकी अध्यक्षता मि० केलनवेकने स्वयं स्वीकार की थी। उनकी कुशलता और सावधानताका अनुभव हमें प्रतिक्षण होता था।

युवकों और बालक-बालिकाओंके लिए एक पाठशाला तो चाहिए ही थी। यह काम सबसे कठिन जान पडा और अततक पूर्णताको नहीं पहुँचा। शिक्षणका भार मुख्यतः मि० केलनवेक और मुझपर था। पाठशाला दोपहरसे ही चलाई जा सकती थी। उस वक्त हम दोनों सवेरेकी मशक्कतसे खूब थके होते। पढनेवालोंका भी यही हाल होता। अतः अकसर वे और हम भी ऊँघने लगते। हम आँखोंपर पानीके छोटे देते, दन्चोंके साथ हँस-खेलकर उनकी और अपनी ऊँघ भगाते; पर अकसर यह कोशिश बेकार जाती। शरीर जो आराम मागता है वह लेकर ही छोडता है। यह तो एक और सबसे छोटा विघ्न था, क्योंकि नीदमे भोके खाते हुए भी कक्षाएँ तो चलती ही थी। पर तामिल, तेलगू और गुजराती तीन भाषाएँ बोलनेवालोंको क्या सिखाया जाय और कैसे? मातृभाषाके द्वारा शिक्षा देनेका लोभ तो मुझे था ही। तामिल थोड़ी-बहुत जानता था, पर तेलगू तो एक अक्षर भी न आती थी। ऐसी स्थितिमें एक शिक्षक क्या करे? युवकोंमेंसे कुछका शिक्षकरूपमें उपयोग किया। यह प्रयोग सफल हुआ, यह नहीं कहा जा सकता। भाई प्रागजीका उपयोग तो होता ही था। युवकोंमेंसे कुछ बड़े नटखट और आलसी थे। किताबके साथ हमेशा लडाई करते थे। ऐसे विद्यार्थियोंको आगे बढ़ानेकी शिक्षक क्या आशा कर सकते थे? फिर हमारा काम अनियमित था। जरूरी होनेपर मुझे जोहान्सबर्ग जाना ही पडता। यही बात मि० केलनवेककी थी।

दूसरी कठिनाई धार्मिक शिक्षाकी थी। मुसलमानोंको कुरान पढानेका लोभ तो मुझे था ही। पारसियोंको अवेस्ता पढानेकी इच्छा होती। एक खोजका लडका था। उसके पास अपने पंथकी एक छोटी-सी पोथी थी। उसके बापने वह पोथी पढानेका भार मुझपर डाल दिया था। मैंने इस्लाम और पारसी धर्मकी पुस्तके इकट्ठी की। हिंदू-धर्मके जो मुझे मूलतत्त्व जान पडे उन्हें मैंने लिख डाला—अपने ही वचनोंके लिए या फार्मके वचनोंके लिए, यह बात अब याद नहीं रही। यह चीज मेरे पास होती तो अपनी प्रगति या गतिकी नाप करनेके लिए मैं उसे यहा दे देता; पर ये चीजे तो कितनी ही अपनी जिदगीमे मैंने फेंक दी या जला डाली। इन वस्तुओंके संग्रहकी आवश्यकता मुझे ज्यो-ज्यो कम जान पड़ती गई और ज्यो-ज्यो मेरा काम बढ़ता गया त्यो-त्यो मैं इन चीजोंका नाश करता गया। मुझे इसका पछतावा भी नहीं। इन वस्तुओंका संग्रह मेरे लिए एक बोझ और बडे खर्चकी चीज हो जाता। उनके रक्षणके साधन मुझे जुटाने पडते और मेरी अपरिग्रही आत्माको यह असह्य होता।

पर यह शिक्षणका प्रयोग व्यर्थ नहीं गया। बालकोंमे कभी असहिष्णुता नहीं आई। एक दूसरेके धर्म और रीति-रिवाजके प्रति उन्होंने उदार-भाव रखना सीखा। सगे भाइयोंकी तरह हिल-मिलकर रहना सीखा। एक-दूसरेकी सेवा करना सीखा। सभ्यता सीखी। उबमी वने और आज भी उन बालकोंमेसे, जिनके कार्योंकी थोड़ी-बहुत खबर मुझको है उसपरसे मैं जानता हू कि टाल्स्टाय फार्ममे उन्होंने जो कुछ सीखा वह व्यर्थ नहीं गया। अधूरा सही, पर यह विचारमय और धार्मिक प्रयोग था और टाल्स्टाय फार्मके जो संस्मरण अत्यन्त मधुर हैं उनमे यह शिक्षणके प्रयोगका स्मरण तनिक भी कम भवुर नहीं है।

पर इन मधुर स्मृतियोंके लिए एक पूरे प्रकरणकी आवश्यकता है ।

: ११ :

### टाल्स्टाय फार्म—३

इस प्रकरणमे टाल्स्टाय फार्मके बहुतसे संस्मरणोका सग्रह होगा । अतः ये स्मरण असबद्ध लगेंगे । पाठक इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे ।

पढानेके लिए जैसा वर्ग मुझे मिला था वैसा शायद ही किसी शिक्षकके हिस्से पडा हो । सात बरसके बालक-बालिकाओसे लगाकर २० बरसतकके जवान और १२-१३ बरसतककी लड़कियां इस वर्गमे थी । कुछ लड़के ऐसे थे जिन्हें जगली कह सकते हैं । वे खूब ऊधम मचाते ।

ऐसे जमातको क्या पढाऊ ? सबके स्वभावके अनुकूल कैसे होऊ ? फिर सबके साथ किस भाषामे बातचीत करूँ ? तामिल और तेलगुभाषी बच्चे या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अंग्रेजी । थोड़ी डच भी जानते थे । मुझे तो अंग्रेजीसे ही काम लेना होता । मैंने वर्गके दो विभाग कर दिये— गुजराती भाषी बच्चोंसे गुजरातीमें बोलता, बाकी सबसे अंग्रेजीमे । शिक्षणकी योजना यह थी कि उसका मुख्य भाग होता तो कोई रोचक वार्ता कहना या पढकर सुनाना । बच्चोंको साथ मिलकर बैठना और मित्रभाव, सेवाभाव सिखाना, यही उद्देश्य मैंने सामने रखा था । इतिहास-भूगोलका थोडा सामान्य ज्ञान करा देता और थोडा लिखना सिखा देता । कुछको अकण्ठित भी सिखाता । इस तरह गाढी चला

लेता । प्रार्थनामें गानेके लिए कुछ भजन सिखाता । उसमें शामिल होनेके लिए तामिल बालकोंको भी ललचाता ।

लडके-लडकियां आजादीसे साथ उठते- बैठते । टाल्स्टाय फार्ममें मेरा यह सहशिक्षाका प्रयोग अधिक-से-अधिक निभंय था । जो आजादी मैंने बालक-बालिकाओंको बहा दी या सिखाई थी वह आजादी देने या सिखानेकी मेरी हिम्मत भी आज नहीं होती । मुझे अकसर ऐसा लगा है कि मेरा मन उन दिनों आजकी अपेक्षा अधिक निर्दोष था । इसका कारण मेरा अज्ञान हो सकता है । इसके बाद कई बार मुझे धोखा हुआ है, कष्टवे अनुभव हुए हैं । जिन्हें मैं नितांत निर्दोष समझता था वे सदोष सिद्ध हुए हैं । अपने आप भी गहराईमें पैठनेपर मैंने विकार पाये हैं । इससे मन कातर बन गया है ।

मुझे अपने इस प्रयोगपर पछतावा नहीं । मेरी आत्मा गवाही देती है कि इस प्रयोगसे कुछ भी हानि नहीं हुई; पर दूधका जला छालको भी फूक-फूककर पिया करता है । यही बात मेरे वारेमें समझनी चाहिए ।

मनुष्य श्रद्धा या हिम्मत दूसरेसे चुरा नहीं सकता । 'सशयात्मा विनश्यति' । टाल्स्टाय फार्ममें मेरी हिम्मत और श्रद्धा पराकाष्ठाको पहुँची हुई थी । यह श्रद्धा और हिम्मत फिर देनेके लिए मैं प्रभुसे प्रार्थना किया करता हूँ । पर वह सुने तब न ! उसके सामने तो मुझ-जैसे अगणित भिखारी होते हैं । भरोसा इतना ही है कि जैसे उससे याचना करने-वाले असंख्य हैं वैसे उसके कान भी असंख्य हैं । इसलिए उसपर मेरी श्रद्धा पूरी है । यह भी जानता हू कि जब मैं इसका अधिकारी हो जाऊँगा तब मेरी अर्ज जरूर सुनेगा ।

यह था मेरा प्रयोग । मैं तो बदमाज समझे जानेवाले लडकों और निर्दोष सयानी लडकियोंको साथ नहानेको भेजता ।

लड़के-लड़कियोंको मर्यादाधर्मके विषयमें खूब समझा दिया था। मेरे सत्याग्रहसे वे सभी परिचित थे। मैं उन्हें माके जितना ही प्यार करता था। इसे मैं तो जानता ही था, पर वे भी इसे मानते थे। पाठकोंको पानीके भरनेकी बात याद होगी। वह रसोईसे कुछ दूरपर था। वहा बालक-बालिकाओंका सगम होने देना और फिर यह आशा रखना कि वे निर्दोष निष्पाप बने रहेंगे? मेरी आखें तो उन लड़कियोंके पीछे वैसे ही फिरा करती थी जैसे मांकी आखें बेटेके पीछे फिरा करती हैं। स्नानका समय नियत था। उसके लिए सब लड़कियां और सब लड़के साथ जाते। संघमें जो एक प्रकारकी सुरक्षितता होती है वह यहाँ थी। उन्हें कही एकांत तो मिलता ही नहीं। आमतौरसे मैं भी उसी वक्त वहाँ पहुँच जाता।

हम सभी एक खुले वरामदेमें सोते थे। लड़के-लड़कियां मेरे आस-पास सोते। दो बिस्तरोके बीच मुस्किलसे तीन फुटका अंतर होता। बिस्तरोके क्रममें अवश्य थोड़ी सावधानी रखी जाती; पर सदोष मनके लिए यह सावधानी क्या कर सकती थी? अब मैं देखता हू कि इन लड़के-लड़कियोंके बारेमें प्रभुने ही लाज रखी। मैंने इस विश्वाससे यह प्रयत्न किया कि लड़के-लड़कियां इस तरह निर्दोष रीतिसे मिल-जुल सकते हैं। उनके मा-बापने मुझपर बेहद विश्वास रखकर यह प्रयोग करने दिया।

एक दिन इन लड़कियोंने ही या किसी लड़केने मुझे खबर दी कि एक युवकने दो लड़कियोंके साथ मजाक किया है। मैं कांप उठा। मैंने जांच की। बात सच थी। युवकोंको समझना, पर इतना काफी नहीं था। दोनों लड़कियोंके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न चाहता था जिससे हर एक युवक यह समझ सके और जान ले कि इन बालाओंपर कुदृष्टि डाली ही नहीं जा सकती। लड़कियां भी समझ ले कि हमारी पवित्रतापर

कोई हाथ डाल सकता ही नहीं। सीताके शरीरको विकारी रावण स्पष्टतक न कर सका। राम तो दूर थे। ऐसा कौन-सा चिह्न इन लड़कियोंको दू, जिससे वे अपने आपको सुरक्षित समझे और दूसरे भी उन्हें देखकर निर्विकार रहे? रातभर जागा। सबेरे लड़कियोंसे विनती की। उन्हें चौकाये बिना समझाकर सलाह दी कि वे अपने सुंदर केश कतर देनेकी इजाजत मुझे दे दे। फार्मपर हम एक दूसरेकी दाढी बनाया और बाल कतर दिया करते थे। इससे कतरनी मेरे पास थी। पहले तो उन लड़कियोने नहीं समझा। बडी स्त्रियोको मैंने अपनी बात समझा दी थी। उन्हें मेरी सलाह सहन तो नहीं हुई, पर वे मेरा हेतु समझ सकी थी। उनकी मदद मुझे मिली। दोनो लड़किया भव्य थी। आह! आज उनमेंसे एक चल बसी है। वह तेजस्विनी थी! दूसरी जीवित है और अपनी गृहस्थी चला रही है। अतमे वे दोनो समझ गईं। उसी क्षण उस हाथने जो आज यह प्रसंग लिख रहा है, उन बालिकाओके केशपर कतरनी चला दी। पीछे दरजेमे इस कार्यका विस्लेषण करके सबको समझा दिया। परिणाम सुंदर रहा। फिर मैंने मजाककी बात नहीं सुनी। इन लड़कियोने कृष्ण खोया तो नहीं ही। कितना पाया यह तो भगवान ही जानते होंगे। मैं आशा रखता हू कि युवक इस घटनाको याद करते और अपनी दृष्टिको शुद्ध रखते होंगे।

ऐसे प्रयोग अनुकरणके लिए नहीं लिखे जाते। कोई शिक्षक उनका अनुकरण करे तो वह भारी जोखिम अपने सिरपर लेगा। इस प्रयोगका उल्लेख स्थितिविशेषमे मनुष्य किस हदतक जा सकता है यह दिखाने और सत्याग्रहकी लडाईकी विशुद्धता बतानेके लिए किया गया है। इस विशुद्धतामे ही उसकी विजयकी जड़ थी। इस प्रयोगके लिए शिक्षकको मां-बाप दोनो बनना होता है और हर कष्ट-हानिके लिए



तैयार होकर ही ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं। उनके पीछे कठिन तपश्चर्या का बल होना चाहिए।

इस कार्यका असर फार्मवासियोंकी सारी रहन-सहनपर पड़े बिना न रहा। कम-से-कम खर्चमें गुजर करना हमारा उद्देश्य था, इसलिए पहनावेमें भी हेर-फेर किया। दक्षिण अफ्रीकाके शहरीमें आमतौरसे हमारे पुरुषवर्गका पहनावा यूरोपियन ढंगका ही होता है। सत्याग्रहियोंका भी था। फार्मपर उतने कपड़ोंकी जरूरत नहीं थी। हम सभी मजदूर बन गये थे। इससे पहनावा रखा मजदूरोंका, पर यूरोपीय ढंगका—यानी मजदूरोंके पहननेका पतलून और उसी तरहकी कमीज। इस पहनावेमें जेलका अनुकरण था। मोटे आसमानी रंगके कपड़ोंका सस्ता पतलून और कमीज मिलती, वही सब पहनते। स्त्रियोंमें अधिकांश सिलाईका काम सुंदर रीतिसे कर सकती थी। उन्होंने सिलाईका सारा काम अपने ऊपर ले लिये।

भोजनमें चावल, दाल, तरकारी, रोटी और कभी-कभी खीर होना सामान्य नियम था। ये सारी चीजें एक ही बरतनमें परसी जाती। बरतनमें थालीके बदले जेलकी जैसी तसली रखी गई थी और लकड़ीके चमचे अपने हाथसे बना लिए गये थे। खाना तीन वक्त दिया जाता। सबेरे छ. बजे रोटी और गेहूँका कहवा (काफी). ग्यारह बजे दाल-भात और तरकारी और शामके ५।। बजे गेहूँकी लपसी और दूध या रोटी और गेहूँका कहवा। रातके ९ बजे सबको सो जाना होता। शामके भोजनके बाद सात या साढे सात बजे प्रार्थना होती। प्रार्थनामें भजन गाये जाते और कभी रामायणसे तो कभी इस्लामके धर्मग्रंथोंमेंसे कुछ पढ़ा जाता। भजन अंग्रेजी, हिंदी और गुजरातीमें होते। कभी तीनोंके भजन गाये जाते तो कभी एकहीसे। फार्ममें बहुतेरे एकादशी व्रत करते। वहाँ भाई पी के. कोतवाल पहुँच गये थे जिन्हें उपवास आदिका अच्छा ज्ञान

और अनुभव था। उनको देखकर बहुतेने चातुर्मास किया। इसी बीच रोजा भी आ गया। हममे कुछ मुसलमान नौजवान थे। उन्हें रोजा रखनेको प्रोत्साहन देना हमे अपना धर्म जान पड़ा। उसके लिए सरगाही (सहरी) और रातके भोजनका प्रबंध कर दिया। उनके लिए रातमे खीर आदि भी बनती। मासाहार तो होता ही नहीं था। किसीने इसकी मांग भी नहीं की। उनके धर्मभावका सम्मान करनेके लिए हम भी एक ही जून शामको भोजन करते। हमारा सामान्य नियम सूर्यास्तसे पहले भोजन कर लेनेका था। मुसलमान लडके थोडे ही थे, इसलिए अंतर इतना ही होता कि दूसरे सूर्यास्तसे पहले खा-पीकर तैयार हो जाते। मुसलमान नवयुवकोने भी रोजा रखनेमे इतनी मलमनसी बरती कि किसीको ज्यादा तकलीफ न होने दी। पर इस तरह गैर मुस्लिम लडकोके आहार-संयममे उनका साथ देनेका असर सबके ऊपर अच्छा ही हुआ। हिंदू-मुसलमानके लडकोके बीच मजहबको लेकर एक वार भी झगड़ा हुआ हो या भेद उत्पन्न हुआ हो इसकी याद मुझे नहीं है। इसका उलटा मैं जानता हूं कि सब अपने-अपने धर्मपर दृढ रहते हुए भी एक दूसरेके प्रति पूरा आदर रखते और एक दूसरेको स्वधर्माचरणमे सहायता देते।

हम शहरसे इतनी दूर रहते थे फिर भी बीमारियोंके लिए दवा-दारूका जो साधारण प्रबंध रखा जाता है वैसा कुछ भी नहीं रखा गया था। उन दिनों लडके-लडकियोंकी निदोषिताके विषयमे मुझे जो श्रद्धा थी वही श्रद्धा बीमारीमे केवल प्राकृतिक उपचार करनेके विषयमे भी थी। मैं सोचता था कि पहले तो सादे जीवनमे बीमारी होगी ही क्यों और हो भी गई तो हम उसका उपाय कर लेंगे। मेरी आरोग्यविषयक पुस्तक मेरे प्रयोगो और मेरी उस संयमकी श्रद्धाकी नोटबुक हैं। मुझे यह अभिमान था कि मैं तो बीमार हो ही नहीं सकता।

यह मानना था कि केवल पानी, मिट्टी या उपवासके प्रयोग या भोजनके अदल-बदलसे सब प्रकारके रोग दूर किये जा सकते हैं। फार्ममें एक भी बीमारीके मौकेपर डाक्टरका उपयोग नहीं किया गया। उत्तर भारतका रहनेवाला एक सत्तर बरसका बूढ़ा था। उसको दमे और खांसीकी शिकायत थी। वह भी महज खुराकके अदल-बदल और पानीके प्रयोगसे चंगा हो गया। पर ऐसे प्रयत्न करनेकी हिम्मत अब मैं खो बैठा हूँ और खुद दो बार बीमार पड़नेके बाद यह मानने लगा हूँ कि मैंने इसका अधिकार भी खो दिया।

फार्म जब चल रहा था उसी बीच स्व० गोखले दक्षिण अफ्रीका आये थे। उनकी यात्राके वर्णनके लिए तो अलग प्रकरणकी जरूरत है। पर उसका एक कड़वा-मीठा सस्मरण यहाँ लिखे देता हूँ। हमारा जीवन कैसा था यह तो पाठकोने जान ही लिया। फार्ममें खाट-जैसी कोई चीज नहीं थी; पर गोखलेजीके लिए एक माग लाये। कोई ऐसा कमरा नहीं था जहाँ उनको पूरा एकांत मिले। बैठनेके लिए पाठशालाकी बेचे भर थी। ऐसी स्थितिमें भी नाजुक तबियत-वाले गोखलेजीको फार्मपर लाये बिना हमसे कैसे रहा जाता? वैसे वह भी उसे देखे बिना कैसे रह सकते थे? मेरा खयाल था कि उनका शरीर एक रातकी तकलीफ बर्दाश्त कर लेगा और वह स्टेशनसे फार्मतक डेढ़ मील पैदल भी आ सकते हैं। मैंने उनसे पूछ लिया था और अपनी सरलतावश उन्होंने बिना सोचे-समझे मुझपर विश्वास रखकर सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली थी। संयोगवश उसी दिन वर्षा भी हो गई। यकायक मेरे किये प्रबंधमें कोई हेरफेर नहीं हो सकता था। इस अज्ञानभरे प्रेमके कारण उस दिन मैंने गोखलेजीको जो कष्ट दिया वह मुझे कभी नहीं भूला। इतना बड़ा परिवर्तन उनकी प्रकृति सहन नहीं कर सकती थी। उन्हें ठंड लग गई।

भोजनके लिए उन्हें रसोईमें नहीं ले जा सकते थे । मि० केलनवेकके कमरेमें उन्हें उतारा था । वहा खाना ले जानेमें ठडा तो ही जाता । उनके लिए मैं खास गोरवा बनाता । भाई कोतवाल खास चपातिया बनाते । पर वे गरम कैसे रखे जाय ? ज्यो-न्यों करके निवटाया । गोखलेने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा; पर उनके चेहरेसे मैं समझ गया और अपनी मूर्खता भी समझ गया । जब उन्हें मालूम हुआ कि हम सभी जमीनपर सोते हैं तब उनके लिए जो खाट लोई गई थी उसे हटा दिया और अपना बिस्तर भी फर्शपर ही लगा लिया । यह रात मैंने पश्चात्ताप करते बिताई । गोखलेकी एक आदत थी जिसे मैं बुरी आदत कहता । वह नौकरकी ही सेवा स्वीकार करते । ऐसी यात्राओंमें नौकरको साथ न रखते । मैंने और मि० केलनवेकने उनसे बहुत विनती की कि हमें पाव दवाने दीजिए; पर वह टस-से-मस न हुए । हमें अपना शरीर स्पर्शतक न करने दिया । उलटे आधी खीरू और आधी हूँसीमें कहा—“जान पड़ता है कि आप सब लोगोंने यही समझ लिया है कि कष्ट भोगनेके लिए अकेले आप ही लोग जन्मे हो और हम-जैसे लोग इसीलिए पैदा हुए हैं कि तुम्हें कष्ट दे । अपनी अतिकी सजा आज तुम पूरी-पूरी भोग लो । मैं तुम्हें अपना शरीर छूनेतक नहीं दूंगा । तुम सब लोग निवटनेके लिए दूर जावोगे और मेरे लिए कम्बोड रखोगे ! ऐसा क्यों ? चाहे जितनी तकलीफ उठानी पड़े, मैं भोग लूंगा; पर तुम्हारा गर्व चूर करूंगा ।” यह वचन हमारे लिए वज्रसमान थे । मैं और मि० केलनवेक स्निन्न हुए; पर इतना ढाढस था कि उनके चेहरेपर हास्य था । अर्जुनने कृष्णको अनजानेमें बहुत कष्ट दिया होगा, पर कृष्णने क्या उसे याद रखा ? गोखलेने हमारा सेवाका भाव ही याद रखा, सेवा तो करने ही नहीं दी । मोवासासे उन्होंने मुझे जो प्रेमभरा पत्र लिखा वह मेरे हृदयपर अंकित हो गया है । उन्होंने कष्ट सह लिये, पर जो

सेवा हम कर सकते थे वह अततक न करने दी। भोजन यदि हमारे हाथसे न लेते तो करते क्या ?

अगले दिन सबेरे न उन्होंने खुद आराम लिया, न हमें लेने दिया। उनके सब भाषणोंको जिन्हें हम पुस्तकरूपमें छपाने जा रहे थे, सुधारा। उनकी आदत थी कि कुछ भी लिखना हो तो उसका मजमून इधर-से-उधर टहलते हुए सोचते। उन्हें एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मैंने सोचा कि उसे तो वह तुरत लिख डालेगे; पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। मैंने टीका की तो मुझे यह व्याख्यान सुनना पड़ा—“मेरा जीवन तुम क्या जानो ? मैं छोटी-से-छोटी बात भी उतावलीमें नहीं करता। उसको सोचता हूँ। उसके मध्यविदुको सोचता हूँ; फिर विषयके अनुरूप भाषाका विचार करता हूँ और तब लिखता हूँ। सब ऐसा करे तो कितना वक्त बच जाय ? और समाज भी आज जो अवकचरे विचार उसे मिले रहे हैं उनके भारसे बच जाय।”

जैसे गोखलेके आगमनके वर्णनके विना टाल्स्टाय फार्मके संस्मरण अधूरे माने जायंगे वैसे ही मि० केलनबेककी रहन-सहनके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। इस निर्मल पुरुषका परिचय मैं पहले करा चुका हूँ। मि० केलनबेकका टाल्स्टाय फार्ममें, हम लोगोंके बीचमें हम-जैसे ही होकर रहना यही अचरजकी बात थी। गोखले सामान्य बातोंसे आकृष्ट होनेवाले आदमी नहीं थे; पर केलनबेकके जीवनके महान परिवर्तनसे वह भी अतिशय आकृष्ट हुए थे। केलनबेकने कभी दुनियाकी सर्दी-गर्मी न सही थी, एक भी तकलीफ या अटंचन न उठाई थी। असयम उनका धर्म हो गया था। सप्तारके सुख भोगनेमें उन्होंने कोई कसर नहीं रखी थी। पैसेमें जो चीज मिल सकती थी अपने सुखके लिए उसे प्राप्त करनेमें उन्होंने कभी आगा-पीछा न किया था।

ऐसे आदमीका टाल्स्टाय फार्ममें रहना, सोना-बँठना,

खाना-पीना और फार्मवासियोंके साथ घुल-मिल जाना ऐसी-वैसी बात नहीं थी। हम लोगोंको यह देखकर आनन्दजनक आश्चर्य हुआ। कुछ गोरोंने मि० केलनबेकको भूख या पागल समझ लिया। दूसरे कित्तनोंके दिलमें उनकी त्यागव्यक्तिको देखकर उनके लिए इज्जत बढ़ी। केलनबेकने अपने त्यागको कभी दुःखरूप न माना। जितना आनन्द उन्होंने सुखोंके भोगमें पाया था उससे अधिक उनके त्यागमें पाया। सारी जिदगीके सुखका वर्णन करते हुए वह तल्लीन हो जाते और क्षणभरके लिए तो सुननेवालेको भी वह सुख भोगनेकी इच्छा हो जाती। छोटे-बड़े सबके साथ वह इतने प्रेमसे हिल-मिल जाते कि उनका अल्प वियोग भी सबको खले विना न रहता। उन्हें फलवाले पेड़ोंका बड़ा शौक था। इससे मालीका काम उन्होंने अपने ही लिए रख छोड़ा था। रोज सवेरे वच्चों और बड़ोंसे भी सीचने-संवारनेका काम कराते। वह इतने हँसमुख और स्वभावके इतने आनन्दमय थे कि मशकत पूरी कराते, फिर भी उनके साथ काम करना सबको रुचता। जब-कभी रातके दो बजे उठकर टात्स्टाय फार्मसे जोहान्सवर्गसे जाने वाले निकलते तो मि० केलनबेक इस टोलीमें जरूर होते।

इनके साथ धार्मिक संवाद सदा हुआ करता था। मेरे पास अहिंसा, सत्य इत्यादि कामोंको छोड़कर दूसरी बात हो ही क्या सकती थी? सर्पादिक मारनेमें भी पाप है, मेरी इस बातसे जैसे मेरे अनेक दूसरे यूरोपियन मित्र पहले चौंके थे वैसे ही मि० केलनबेकको भी धक्का लगा; पर पीछे तात्त्विक दृष्टिसे उन्होंने यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया। हमारे सबके आरंभमें ही उन्होंने यह बात मान ली थी कि बुद्धि जिस वस्तुको स्वीकार कर ले उसका आचरण करना उचित और धर्म है। इसीमें वह अपने जीवनमें इतने महत्त्वके परिवर्तन एक क्षणमें विना किसी हिचकके कर सके थे। अब अगर सर्पादिका मारना अनुचित है तो

मि० केलनवेकको इच्छा हुई कि उनकी मित्रता संपादन करे। पहले तो उन्होंने ऐसी पुस्तके इकट्ठी की जिनसे भिन्न-भिन्न जातिके सर्पोंकी पहचान हो सके। उनमें उन्होंने देखा कि सभी साप जहरीले नहीं होते। कुछ तो खेतोंकी फसलकी रक्षा करनेवाले होते हैं। हम सबने सापोंको पहचानना सीख लिया और अंतमें एक विशाल अजगरको, जो फार्ममें ही मिल गया था, पाल लिया। उसको सदा अपने ही हाथसे खाना देते। मैंने नरमीसे उनके साथ यह दलील की—“यद्यपि आपका भाव शुद्ध है फिर भी अजगर तो उसको पहचाननेसे रहा, क्योंकि आपकी प्रीतिके साथ भय मिला हुआ है। उसको खुला रखकर उसके साथ खेचनेकी हिम्मत तो न आपकी है, न मेरी और ऐसी हिम्मत ही वह चीज है जिसे हम अपने अदर पैदा करना चाहते हैं। इसलिए इस सर्पको पालनेमें मैं सद्भाव तो देखता हूँ; पर उसमें अहिंसा नहीं देखता। हमारा व्यवहार तो ऐसा होना चाहिए कि अजगर उसे पहचान सके। प्राणिमात्र भय और प्रीतिको पहचानते हैं, यह तो हमारा रोजका अनुभव है। फिर इस सांपको आप जहरीला तो मानते ही नहीं। इसके तौर-तरीके, इसकी आदने आदि जाननेके लिए ही उसे कैद कर रखा है। यह एक प्रकारकी विलासिता हुई। मित्रतामें इसके लिए भी स्थान नहीं है।”

मि० केलनवेकको यह दलील जंची, पर उस अजगरको तुरन्त छोड़ देनेकी उनकी इच्छा नहीं हुई। मैंने किसी तरहका दबाव नहीं डाला। सर्पके व्यवहारमें मैं भी रस लेने लगा था और बच्चोंको तो उसमें अतिशय आनंद मिल रहा था, उगकों तग करनेकी सभीको मनाही थी; पर इस कैदीने अपना रास्ता खुद निकाल लिया। पिंजड़ेका दरवाजा खुला रह गया हो या उसी ने युक्तिसे खोल लिया हो, चाहे जो कारण हो, दो-चार दिनोंके अंदर ही एक दिन मवेरे मि० केलनवेक अपने कैदी मित्रों

मिलने गये तो देखते हैं कि उसका पिजडा खाली है। वह खुग हुए, मैं भी हुआ; पर इस प्रयोगके फलस्वरूप सर्प हमारी वात-चीतका स्थायी विषय हो गया था।

मि० केलनबेक एक गरीब जर्मनको फार्मपर लाये थे। वह गरीब तो था ही, अपंग भी था। उसका कूबड़ इतना निकल आया था कि लकड़ीके सहाड़ेके बिना चल ही नहीं सकता। उसकी हिम्मतकी हद नहीं थी। शिक्षित होनेसे सूदम वातोंमें बहुत रस लेता था। फार्ममें वह भी हिंदुस्तानियो-जैसा ही होकर सबके साथ हिल-मिलकर रहता था। उसने निर्भय होकर साँपोंके साथ खेलना शुरू किया। छोटे साँपोंको तो हाथमें पकड़कर ले आता और हथेलीपर रखकर खिलाता भी। फार्म लवे अरसेतक चलता तो इस जर्मनके, जिसका नाम ऑलब्रेस्ट था, प्रयोगका फल क्या होता, यह तो ईश्वर ही जाने।

इन प्रयोगोंके फलस्वरूप यद्यपि हमारे मनमें साँपोंका डर घट गया था; पर कोई यह न समझ ले कि फार्ममें कोई साँपसे डरता ही नहीं था या सर्पोंको मारनेकी सभीको मनाही थी। अमुक वस्तुमें हिंसा है या पाप है, यह मान लेना एक बात है और तदनुसार आचरण करनेकी शक्ति होना दूसरी बात है। जिसके मनमें साँपका डर बना हो और जो स्वयं प्राण त्याग करनेको तैयार न हो वह संकटमें पडनेपर साँपको छोड़नेवाला नहीं। फार्ममें ऐसी एक घटना हुई थी जो मुझे याद है। पाठकोंने यह तो समझ ही लिया होगा कि वहाँ साँपोंका उपद्रव काफी था। हम जब इस फार्ममें गये तब वहाँ आदमियोंकी वस्ती विलकुल ही नहीं थी और कुछ अरसेसे योही निर्जन पड़ा था। एक दिन मि० केलनबेकके ही कमरेमें साँप दिखाई दिया और ऐसी जगह जहासे उसे भगाना या पकड़ लेना नामुमकिन-सा था। फार्मके एक विद्यार्थीने उसको देखा। उसने



मुझे बुलाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिए। उसने उसे मारनेकी इजाजत मागी। इस अनुमतिके बिना वह सापको मार सकता था; पर आम तौरसे विद्यार्थी या दूसरे लोग भी मुझसे पूछे बिना ऐसे काम नहीं करते थे। मारनेकी इजाजत दे देना मुझे अपना धर्म दिखाई दिया और मैंने इजाजत दे दी। यह बात लिखते समय भी मुझे ऐसा नहीं जान पड़ता कि यह इजाजत देनेमें मैंने कोई गलती की। सापको हाथसे पकड़ लेने या फार्मवासियोको और किसी तरह भयमूक्त कर देनेकी मुझमें शक्ति न थी और आज भी उसे उत्पन्न नहीं कर सकता हूँ।

फार्ममें सत्याग्रहियोंका ज्वारभाटा आया करता था, यह बात तो पाठक आसानीसे समझ सकते हैं। कोई सत्याग्रही जेल जानेवाला होता तो कोई-न-कोई उससे छूटकर आया होता। छूटकर आनेवालोंमें दो ऐसे आये जिन्हें मजिस्ट्रेटने जाती मुचलकेपर छोड़ा था और जिन्हें सजा सुननेके लिए अगले दिन अदालतमें हाजिर होना था। वे बैठे बात कर रहे थे। इतनेमें उनके लिए जो आखिरी ट्रेन थी उसका वक्त हो गया और वे उसे पा सकेंगे या नहीं, यह सदिग्ध हो गया। दोनों जवान थे और अच्छे कसरती थे। वे और हमसे भी कुछ लोग जो उन्हें विदा करने जानेवाले थे, दौड़े। रास्तेमें ही मैंने ट्रेनके आनेकी सीटी सुनी। ट्रेन छूटनेकी सीटी हुई तब हम स्टेशनकी बाहरी हदतक पहुच पाये थे। वे दोनों भाई तो अधिकाधिक तेज दौड़ते जा रहे थे। मैं पीछे छूट गया। ट्रेन चल दी। दोनों युवकों को दौड़ते देख स्टेशनमास्टरने चलती ट्रेन रोक दी और उनको बैठा लिया। मैंने स्टेशन पहुचकर स्टेशनमास्टरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। इस घटनाका वर्णन करनेमें मैंने दो बातें जतायी हैं : एक तो यह कि सत्याग्रहियोंको जेल जाने और प्रतिज्ञा कां पालन करनेकी कितनी उत्सुकता होती थी। दूसरी

यह कि स्थानीय कर्मचारियोंके साथ उन्होंने कैसा मधुर संबन्ध जोड़ लिया था। ये युवक उस ट्रेनको न पकड़ सके होते तो अगले दिन अदालतमें हाजिर न हो पाते। उनका कोई दूसरा जामिन नहीं था। न उनसे रुपये-पैसेकी ही जमानत ली गई थी। वे महज अपनी भलमनसीके विश्वासपर छोड़े गये थे। सत्याग्रहियोंकी साख इतनी हो गई थी कि उनके खुद जेल जानेसे आतुर होनेके कारण मजिस्ट्रेट उनसे जमानत लेनेकी जरूरत नहीं समझते थे। इस कारण इन युवक सत्याग्रहियोंको ट्रेन छूट जानेके डरमें भारी खेद हुआ था। अतः वे बायुवेगसे दौड़े। सत्याग्रहके आरम्भमें अधिकारियोंकी ओरसे सत्याग्रहियोंको कुछ कष्ट दिये गये थे, यह बात कही जा सकती है। यह भी कह सकते हैं कि कहीं-कहीं जेलके अफसर-अहलकार बहुत ज्यादा सख्त थे; पर लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई हमने कुल मिलाकर देखा कि अहलकार पहलेसे कम कड़वे हो गये और कुछ तो मीठे भी हो गये और जहां उनके साथ लवा सावका पड़ा वहां इस स्टेशनमास्टरकी तरह हमारी मदद भी करने लगे। कोई पाठक इससे यह न सोचे कि सत्याग्रहियोंने अहलकारोंको किसी तरह घूस देकर उनसे सुभीते प्राप्त किये। ऐसे अयोग्य सुभीते प्राप्त करनेकी बात उन्होंने कभी सोची ही नहीं; पर सभ्यताके सुभीते लेनेका हौसला किसको न होगा? और वैसे सुभीते सत्याग्रहियोंको कितनी ही जगह मिल सकते थे। स्टेशनमास्टर प्रतिकूल हो तो नियमोंकी सीमामें रहते हुए भी मुसाफिरको कितनी ही तरहसे हैरान कर सकता है। ऐसी हैरानियोंके खिलाफ आप कोई शिकायत—फरियाद भी नहीं कर सकते। और वह अनुकूल हो तो कायदेके अदर रहकर भी आपको बहुतसे सुभीने दे सकता है। ऐसी सब सहूलियतें हम फार्मके पासके स्टेशन लॉकेके स्टेशनमास्टरसे पा सके थे और इसका कारण था सत्याग्रहियोंका सौजन्य, उनका धैर्य और कष्ट-सहन करनेकी उनकी शक्ति।

एक अप्रस्तुत प्रसंगकी चर्चा यहां कर देना संभवतः अनुचित न माना जायगा । मुझे भोजनके सुधार और प्रयोग धार्मिक, आर्थिक और आरोग्यकी दृष्टिसे करनेका शौक लगभग ३५ वरससे रहा है । यह शौक आज भी मद नहीं पडा है । मेरे प्रयोगोका असर मेरे आसपासवालोपर तो पडता ही है । इन प्रयोगोके साथ दवाकी मदद लिये विना प्राकृतिक—जैसे पानी और मिट्टीके—उपचारोसे रोग मिटानेके प्रयोग भी मैं करता था । जब वकालत करता था उन दिनो मक्किलोंके साथ मेरा संबन्ध कौटुम्बिक—जैसा हो जाता । इससे वे मुझे अपने सुख-दुःखमें साथी बनाते । कुछ आरोग्यविषयक मेरे प्रयोगोसे परिचित हो जानेके बाद उस विषयमें मेरी सहायता लेते । ऐसी सहायता लेनेवाले कभी-कभी टल्स्टाय फार्मपर भी चढ आते । यो जाने-वालोंमें लुटावन नामका एक बूढा था जो उत्तर भारतका रहनेवाला था और पहले गिरमिटमें दक्षिण अफ्रीका आया था । उसकी उम्र ७०के पार होगी । उसे पुराने दमे और खासीकी बीमारी थी । वैद्योंके चूर्ण और डाक्टरोंके मिक्सचर काफी आजमा चुका था । उन दिनो अपने उपचारोके विषयमें मेरे विश्वासकी भी कोई सीमा नहीं थी । मैंने कहा कि तुम मेरी सभी शर्तोंका पालन करो और फार्ममें रहो तो मैं तुमपर अपने प्रयोगोकी परीक्षा कर सकता हूं । यह तो कैसे कह सकता हूँ कि मैंने उसका इलाज करना कबूल किया । लुटावनने मेरी शर्तें मजूर कर ली । उसको तवाकू पीनेका भारी ब्यसन था । उससे जो शर्तें कबूल कराई गईं थी उनमें एक तवाकू छोड देनेकी भी थी । लुटावनको मैंने एक दिनका उपवास कराया । रोज १२ बजे धूपमें कूने वाय देना शुरू किया । उस वक्त मौसम ऐसा था कि धूपमें बैठे जा सके । भोजनमें थोडा भात, थोडा जैतूनका तेल, शहद और शहदके साथ कभी खीर और मीठी नारंगी और कभी अगूर

और मुने गेहूँका कहवा देता । नमक-ससाला विलकूल बढ था । जिस भकानमे मैं सोता, उसीमे भीतरके हिस्सेमे लुटावनका भी बिस्तर लगता था । बिस्तरमे सबको दो कबल मिलते थे—एक बिछानेके लिए दूसरा ओढनेके लिए । और एक काठका तकिया होता था । एक अठवारा बीता । लुटावनके शरीरमे तेज आया । दमा घटा, खासी भी घटी । पर रातमे दमा और खासी दोनों उठते । मेरा शक तबाक-पर गया । मैंने उससे पूछा । लुटावनने कहा—“मैं नहीं पीता ।” एक-दो दिन और गये । फिर भी फर्क न पडा तो मैंने छिपे तौरपर लुटावनपर निगाह रखनेका निश्चय किया । सभी जमीनपर सोते थे । सर्पादिका भय तो था ही, इसलिए मि० केलनबेकने मुझे विजलीकी चोरवत्ती (टार्च) दे रखी थी और खुद भी एक रखते थे । इस वत्तीको मैं पास रखकर सोता । एक रात मैंने तै किया कि बिस्तरपर पडा-पडा जागता रहूंगा । दरवाजेके बाहर बरामदेमे मेरा बिस्तर था और दरवाजेके भीतर दगलमें ही लुटावनका लगा था । आधी रातको लुटावनको खाँसी आई । उसने दिया-सलाई जलाई और बीड़ी पीना शुरू किया । मैं धीरेसे जाकर उसके बिस्तरके पास खडा हो गया और वत्तीका बटन दबा दिया । लुटावन घबराया, सब समझ गया । बीड़ी बुझा दी और मेरे पाव पकड़ लिए । “मैंने भारी कसर किया । अब मैं कभी तंबाकू न पीऊंगा । आपको मैंने धोखा दिया । मुझको आप माफ करें ।” यह कहते-कहते लुटावनका गला भर आया । मैंने उसको तसल्ली दी और कहा कि बीड़ी न पीनेमे तुम्हारा हित है । मेरे हिसाबसे खासी अवतक चली जानी चाहिए थी । वह नहीं गई, इसलिए मुझे शक हुआ । लुटावनकी बीड़ी गइ और उसके साथ दो या तीन दिनमे खासी और दमा ढीले पड़े, और एक महीनेमे दोनों

चले गये। लुटावनमे खूब तेज-शक्ति-उत्साह आ गया और उसने हमसे विद्रा मांगी।

स्टेगनमास्टरका बेटा, जो दो सालका रहा होगा, टाइफाइड ज्वरसे पीड़ित हुआ। उन्हे मेरे उपचारोका पता था ही। मुझसे सलाह ली। उस बच्चेको दो दिन तो मैंने कुछ भी खानेको नहीं दिया। तीसरे दिनसे आधा केला, खूब मसला हुआ और उसमें एक चम्मच जैतूनका तेल और दो-चार बूद नींबूका रस डालकर देने लगा। इसके सिवा और सब खुराक बंद। रातमे उसके पेटपर मिट्टीकी पट्टी बाधता। यह बच्चा भी चंगा हो गया। हां मकता है कि डाक्टरका निदान गलत रहा हो और उसका दुखार टाइफाइड (मियादी) न रहा हो।

ऐसे बहुतेरे प्रयोग मैंने फार्ममे किये। उनमेसे एकमें भी विफल होनेकी बात मुझे याद नहीं है; पर आज वही उपचार करनेकी मेरी हिम्मत नहीं होती। टाइफाइडके रोगीको जैतूनका तेल और केला देते तो मुझे कपकंपी होने लगोगी। १९१८ मे हिंदुस्तानमे मुझे आबकी बीमारी हुई और उसीका इलाज मेरे किये न हो सका और मुझे आजतक इसका पता नहीं कि जो उपचार दक्षिण अफ्रीकामें सफल होते थे वही उपचार हिंदुस्तानमें उसी अंशमें सफल नहीं होते इसका कारण मेरे आत्मविश्वासका घट जाना है या यहकि यहांकी जलवायु उन उपचारोके पूरी तरह अनुकूल नहीं? मैं इतना जानता हू कि इन घरेलू इलाजो और टाल्सुटाय फार्ममें रखी गई सादी जिदगीसे कौमके कुछ नहीं तो भी दो-तीन लाख रुपये बच गये। रहनेवालोमें कौटुबिक भावना उत्पन्न हुई। सत्याग्रहियोंको शुद्ध आश्रय-स्थान मिला। बेईमानी और मक्कारीके लिए अवकाश न रहा, मूग और ककड़ी अलग-अलग हो गई।

ऊपरकी घटनाओंमें वर्णित आहारके प्रयोग आरोग्यकी दृष्टिसे किये गये; पर इस फार्मके अंदर ही मैंने अपने ऊपर एक अतिशय महत्त्वका प्रयोग किया, जो शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे था।

निरामिषभोजीकी हैसियतसे हमें दूध लेनेका अधिकार है या नहीं, इस विषयपर मैंने खूब विचार किया था, खूब पढा भी था, पर फार्ममें रहनेके दिनोंमें कोई पुस्तक या अखबार मेरे हाथमें पडा जिसमें मैंने देखा कि कलकत्तेमें गाय-भैंसोका दूध निचोड़कर निकाल लिया जाता है। उस लेखमें फूकेकी निर्दयताभरी और भयानक क्रियाका भी वर्णन था। एक बार मि० केलनवेकके साथ दूध लेनेकी आवश्यकताके बारेमें बात-चीत हो रही थी। उस सिलसिलेमें मैंने इस क्रियाकी बात भी कही। दूधके त्यागके दूसरे अनेक आध्यात्मिक लाभ भी मैंने बताये और कहा कि दूध छोडा जा सकता हो तो अच्छा है। मि० केलनवेक अत्यन्त साहसी थे, इसलिए दुग्ध-त्यागके प्रयोगके लिए तुरत तैयार हो गये। उन्हें मेरी बात बहुत पसन्द आई। उसी दिन हम दोनोंने दूध त्याग दिया और अंतमें हम केवल सूखे और ताजे फलोंपर रहने लगे। आगपर पकाई हुई हर तरहकी खुराक त्याग दी। इस प्रयोगका अंत क्या हुआ, इसका इतिहास देनेका यह स्थान नहीं है। पर इतना तो कह ही दू कि मैं केवल फल खाकर पांच बरस रहा। इससे न मैंने कोई कमजोरी अनुभव की और न मुझे किसी प्रकारकी व्याधि हुई। इस कालमें मुझमें शारीरिक काम करनेकी पूरी शक्ति थी, यहांतक कि एक दिनमें मैं पैदल ५५ मीलकी यात्रा कर सकता था। दिनभरमें ४० मीलकी मंजिल कर लेना तो मामूली बात थी। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस प्रयोगके आध्यात्मिक परिणाम बड़े सुंदर हुए। इस प्रयोगको अंशतः त्याग देना पडा, इसका दुःख

मुझे सदा रहा है और मैं राजनैतिक काम-काजके झमेले-मं जिस हृदयतक उलझ गया हूँ उससे छुटकारा पा सकूँ तो इस उम्रमें और शरीरके लिए जोखिम लेकर भी इसके आध्यात्मिक फलके परीक्षणके लिए फिरसे यह प्रयोग कर देख। डाक्टरों-वैद्योंमें आध्यात्मिक दृष्टिका अभाव होना भी हमारे मार्गमें विघ्नकारक हो गया है।

पर अब इन मधुर और महत्त्वके सस्मरणोंकी समाप्ति करनी होगी। ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धिके सग्रामके अंदर ही किये जा सकते हैं। अखिरी लडाईंके लिए टाल्स्टाय फार्म आध्यात्मिक शुद्धि और तपश्चर्याका स्थान सिद्ध हुआ। इसमें मुझे पूरा सदेह है कि ऐसा स्थान न मिला होता या प्राप्त किया गया होता तो आठ बरसतक हमारी लडाईं चल सकी होती या नहीं, हमें अधिक पैसा मिल सका होता या नहीं और अतमे जो हजारों आदमी लडाईंमें शामिल हुए वे शामिल होते या नहीं। टाल्स्टाय फार्मका ढोल पीटनेका नियम हमने नहीं रखा था। फिर भी जो वस्तु दयाकी पात्र नहीं थी उसने लोगोंके दयाभाव, सहानुभूतिको जाग्रत किया। उन्होंने देखा कि हम खुद जो बात करनेको तैयार नहीं हैं और जिसे कष्ट-रूप मानते हैं, फार्मवासी उस बातको कर रहे हैं। उनका यह विश्वास, १९१३ में जो फिरसे बड़े पैमानेपर लडाईं शुरू हुई, उसके लिए बड़ी पूजीरूप हो गया। इस पूजाके मुआविकेका हिसाब नहीं हो सकता। मुआवजा कब मिलता है, यह भी कोई नहीं कह सकता। पर मिलता है इस विषयमें मुझे तो तनिक भी शंका नहीं और मेरा कहना है कि किसीको भी शंका नहीं करनी चाहिए।

: १२ :

## गोखलेकी यात्रा—१

इस तरह टाल्टुटाय फार्ममें सत्याग्रही अपनी जिदगी बिता रहे थे और जो कुछ उनके नसीबमें लिखा था उसके लिए तैयार हो रहे थे। युद्ध कब समाप्त होगा इसका न उन्हें पता था, न चिंता थी। उनकी प्रतिज्ञा एक ही थी : खुनी कानूनके सामने सिर न झुकायेंगे और ऐसा करते हुए जो कष्ट सिरपर आयेंगे उन्हें सह लेंगे। सिपाहीके लिए लड़ना ही जीत है; क्योंकि इसमें ही वह सुख मानता है और चूकि लड़ना अपने हाथमें होता है इसलिए वह मानता है कि हार-जीत या सुख-दुःख खुद मुझपर ही अवलंबित है। या यों कह सकते हैं कि पराजय-जैसी चीज उसके शब्दकोषमें होती ही नहीं। जीताके शब्दमें कहे तो उसके लिए सुख-दुःख, हार-जीत समान है।

इक्के-दुक्के सत्याग्रही जेल जाया करते थे। जब इसका मौका न हो तब फार्मके बाहरी कामको देखकर कोई यह नहीं सोच सकता था कि इसमें सत्याग्रही रहते होंगे और वे लडाईकी तैयारी कर रहे होंगे। फिर भी कोई नास्तिक वहाँ आ जाता तो वह भिन्न होता तो हमपर तरस खाता और आलोचक होता तो हमारी निंदा करता। कहता—“आलस सवार हो गया है। इसीसे जगलमें पड़े-पड़े रोटियां खा रहे हैं। जेलसे हार गये हैं, इसलिए सुदर फलोद्यानमें बसकर नियमित जीवन बिता और शहरके झुम्डोसे दूर रहकर सुख भोग रहे हैं।” ऐसे आलोचकको कैसे समझाया जाय कि सत्याग्रही अयोग्य रीतिसे नीतिको भंग करके जेल जा ही नहीं सकता ? उसे कौन समझाये कि सत्याग्रहीकी भाँतिमें, उसके समयमें



ही लडाईकी तैयारी होती है ? उससे कौन कहे कि सत्याग्रही मनुष्यकी सहायताका खयालतक दिलसे निकाल देता है, केवल भगवानका भरोसा रखता है। परिणाम यह हुआ कि जिन्हें किसीने न सोचा था ऐसे सयोग आ उपस्थित हुए या भगवानने भेज दिये। ऐसी सहायता भी मिली जिसकी आशा हम नहीं रखते थे। हमारी परीक्षा भी अचानक, जब वह हमारी कल्पनासे कोसों दूर थी, आ पहुंची और अंतमें ऐसी बाह्य विजय भी मिली, जिसको दुनिया समझ सके।

मेरे अरसेसे गोखले और दूसरे नेताओंसे प्रार्थना करता आ रहा था कि दक्षिण अफ्रीका आकर भारतीयोंकी स्थिति-को देखें। पर कोई आयेगे या नहीं इस विषयमें मुझे पूरा संदेह था। मि० रिच किसी भी नेताको भेजनेकी कोशिश कर रहे थे; पर जब लडाई बिलकुल ही मंद पड़ गई हो वैसे वक्तमें आनेकी हिम्मत कौन करता ? १९११ में गोखले विलायतमें थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीकाके संग्रामका अध्ययन तो किया ही था। बड़ी कौंसिलमें बहस भी की थी और गिर-मिटियोंका नेटाल भेजना वद कर देनेका प्रस्ताव भी पेश किया था (२५ फरवरी १९१०), जो पास हुआ। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार बराबर चल ही रहा था। भारतमन्त्रीके साथ वह मजबूत भी कर रहे थे और उन्हें यह जता दिया गया था कि वह दक्षिण अफ्रीका जाकर पूरे मसालेको समझना चाहते हैं। भारतमन्त्रीने उनके इरादेको पसंद किया था। गोखलेने मुझे छ. हफ्तेके दौरेकी योजना बनाने-को लिख भेजा और दक्षिण अफ्रीकासे विदा होनेकी आखिरी तारीख भी लिख दी। हमारे हर्षका तो पाग ही न रहा। किसी भी भारतीय नेताने अबतक दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा नहीं की थी। दक्षिण अफ्रीकाकी बात तो क्या, हिन्दु-स्तानके बाहरके एक भी देश या उपनिवेशमें प्रवासी

भारतीयोंकी हालत समझनेके उद्देश्यसे कोई नहीं गया था । इससे हम सभी गोखले-जैसे महान् नेताके आग्रमनके महत्त्वको समझ सके और निश्चय किया कि उनका ऐसा स्वागत-सम्मान किया जाय जैसा कभी किसी वादशाहका भी न हुआ हो । दक्षिण अफ्रीकाके मुख्य-मुख्य नगरोंमें उनको ले जानेकी बात भी तै की गई । सत्याग्रही और दूसरे हिन्दुस्तानी स्वागतकी तैयारीमें खूबीसे शरीक हुए । इस स्वागतमें शामिल होनेके लिए गोरोंको भी निमंत्रण दिया गया और लगभग सभी जगह वे उसमें सम्मिलित हुए । हमने यह भी तै किया कि जहाँ-जहाँ सार्वजनिक सभा की जाय वहाँ-वहाँ उस नगरका मेयर स्वीकार करे तो आमतौरसे उसीको सभापतिके आसनपर विठाय जाय और जहाँ-जहाँ मिल सके वहाँ-वहाँ टाउनहॉलमें ही सभा की जाय । रेलवे विभागकी इजाजत लेकर रास्तेके बड़े-बड़े स्टेशनोंको सजानेका भार भी अपने ऊपर लिया और अधिकांश स्टेशनोंके सजानेकी इजाजत भी हासिल कर ली । आमतौरसे ऐसी इजाजत नहीं दी जाती । स्वागतकी हमारी जबर्दस्त तैयारीका असर अधिकारियोंपर हुआ और उसमें जितनी हमदर्दी वह दिखा सके उतनी दिखाई । मिसालके लिए जोहान्सबर्गमें वहाँके स्टेशनको सजानेमें ही हमें कोई १५ दिन लग गये होंगे; क्योंकि वहाँ हमने एक सुंदर चित्रित तोरण बनाया था, जिसका नकशा मि० केलनवेकने तैयार किया था ।

दक्षिण अफ्रीका कैसा देश है इसका अंदाजा गोखलेको विलायतमें ही हो गया था । भारतमंत्रोंने दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारको गोखलेके रुतबे, साम्राज्यमें उनके स्थान इत्यादिकी सूचना दे दी थी; पर स्टीमर कंपनीसे टिकट ले रखने या अच्छा केबिन (कमरा) रिजर्व करा रखनेकी बात किसीको कैसे सूझ सकती ? गोखलेकी तबीयत नाजुक तो रहती ही थी ।

अतः उन्हें जहाजपर अच्छा केबिन चाहिए था। एकान्त भी जरूरी था। स्टीमर कंपनीके यहांसे दो टुक जवाब मिला कि ऐसा-केबिन हमारे यहां है ही नहीं। मुझे ठीक याद नहीं कि गोखलेने खुद या उनके किसी मित्रने इंडिया आफिस (भारतमन्त्रीके दफ्तर) को इसकी खबर दी। कंपनीके डाइरेक्टरको इंडिया आफिसकी ओरसे पत्र लिखा गया और जहा कोई था ही नहीं वहां गोखलेके लिए अच्छे-से-अच्छा केबिन हाजिर हो गया। इस प्रारम्भिक कड़वाहटका फल मीठा रहा। स्टीमरके कप्तानको भी गोखलेका सुंदर स्वागत करनेकी हिदायत कर दी गई। इससे गोखलेके इस सफरके दिन आनंद और शक्तिमें वीते। वह जितने गभीर थे उतने ही आनंदी और विनोदी भी थे। जहाजपर होनेवाले खेलों आदिमें वह अच्छी तरह शामिल होते और इससे जहाजके यात्रियोंमें खूब लोकप्रिय हो गये थे। यूनियन सरकारने गोखलेसे उसके मेहमान होने और रेलवेका सरकारी सेलन स्वीकार करनेका अनुरोध किया था। मुझसे मशविरा कर लेनेके बाद सेलन और प्रिटोरियममें सरकारका आतिथ्य स्वीकार कर लेनेका निश्चय किया।

गोखले केप टाउन बदरगांहेमें जहाजसे उतरनेवाले थे। १९१२ की २२ वी अक्टूबरको वह जहाजसे उतरे। उनका स्वास्थ्य जितना मैं सोचता था उससे कहीं ज्यादा नाजुक था। वह एक खास खूराक ही ले सकते थे। अधिक धम भी सहन नहीं हो सकता था। जो कार्यक्रम मैंने बनाया था वह उनसे नहीं चल सकता था। जितना अदल-बदल हो सकता था उतना किया। वह बदला ही न जा सके तो स्वास्थ्यकी जोखिम उठाकर भी वह सारा कार्यक्रम कायम रखनेको तैयार हो गये। उनसे पूछे बिना कठिन कार्यक्रम बना डालनेमें मैंने जो मूर्खता की उसका मुझे बहुत पछतावा हुआ। कुछ

रद्दोवदल तो मैंने किया, पर अधिकांश कार्यक्रम तो ज्यो-का-त्यो कायम रखना ही पड़ा। गोखलेको अधिक एकान्त मिलना आवश्यक था, यह मैं नहीं समझ सका था। ऐसा एकान्त दिलानेमें मुझे अधिक-से-अधिक कठिनाई पड़ी। पर सत्यके खातिर मुझे नम्रतापूर्वक इतना तो कहना ही होगा कि रोगियो और बड़ोकी सेवा करनेका मुझे अभ्यास और शौक था, इससे अपनी मूर्खता जान लेनेके बाद मैं प्रवचने इतना सुधार कर सका कि उन्हें यथेष्ट एकान्त और शांति मिल सके। सारे दौरेमें उनके मन्त्रीका काम मैंने ही किया। स्वयं-सेवक ऐसे थे कि उन्हें अघेरी रातमें भी जाकर जवाब ला दे। अतः सेवकोके प्रभादसे उन्हें कभी कोई कठिनाई हुई ही, इसकी मुझे याद नहीं। मि० केलनवेक भी इन स्वयंसेवकोमें थे।

केप टाउनमें अच्छी-से-अच्छी सभा होनी चाहिए, यह तो स्पष्ट ही था। आइज़र-कटवके वारेमें मैं प्रथम खडमें लिख चुका हूँ। उसके मुखिया सिनेटर डब्ल्यू० पी० आइज़रसे इस सभाका सभापतित्व स्वीकार करनेकी प्रार्थना की और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। विशाल सभा हुई। हिंदुस्तानी और यूरोपियन बड़ी संख्यामें उपस्थित हुए। मि० आइज़रने मधुर शब्दोंमें गोखलेका स्वागत किया और दक्षिण अफ्रीकाके हिंदुस्तानियोंके साथ अपनी हमदर्दी जाहिर की। गोखलेका भाषण छोटा, परिपक्व विचारोंसे भरा हुआ, दृढ़ पर विनययुक्त था। उससे भारतीय प्रसन्न हुए और गौरोंका मन गोखलेने हर लिया। अतः यह कह सकते हैं कि गोखलेने जिस दिन दक्षिण अफ्रीकाकी धरतीपर कदम रखा उसी दिन वहाँकी पचरसी जनताके हृदयोंमें प्रवेश कर गये।

केप टाउनसे जोहान्सबर्ग जाना था। रेलका दो दिनका सफर था। यूट्टका कुरुक्षेत्र ट्रांसवाल था। केप टाउनसे आते हुए ट्रांसवालका पहला बड़ा सरहद्दी स्टेशन ब्लैकस-

डार्प पड़ता। वहा हिंदुस्तानियोंकी आवादी भी खासी थी। इससे वहाँ और जोहान्सबर्ग पहुँचनेसे पहले रास्तेमें पडनेवाले ऐसे ही दो और नगरोंमें भी गोखलेको रोकने और सभामें उपस्थित होनेका कार्यक्रम बनाया गया था। इससे क्लर्कस्टॉपसे स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था कराई गई। ज़रीनों जंगह उन नगरोंके मेयरोंने सभापतिका आसन ग्रहण किया। कहीं भी एक घटेसे अधिक समय नहीं दिया गया। जोहान्सबर्ग ट्रेन ठीक वक्तपर पहुँची, एक मिनटका भी फर्क नहीं पडा। स्टेशनपर बढिया कालीन आदि बिछाये गये थे। एक मंच भी बनाया गया था। जोहान्सबर्गके मेयर मि० एलिस और दूसरे यूरोपियन उपस्थित थे। मि० एलिसने अपनी मोटर इसके लिये पेश की कि गोखले जबतक जोहान्सबर्गमें रहे तबतक उनकी सवारीमें रहे। गोखलेको मानपत्र स्टेशनपर ही भेट किया गया। मानपत्र तो उन्हें हर जगह ही मिलता। जोहान्सबर्गका मानपत्र वहीकी खानसे निकले हुए सोनेकी हृदयाकार तस्तीपर खुदा हुआ था जो दक्षिण अफ्रीकाकी बढिया लकड़ी (रोडेशियाकी टीक) पर जडी हुई थी। इस लकड़ीपर ताजमहल और हिंदुस्तानके कुछ दृश्योंके चित्र बड़ी खूबसूरतीसे खोदे गये थे। गोखलेका सबके साथ परिचय कराना, मानपत्र पढना, उसका जवाब देना, दूसरे मानपत्र स्वीकार करना, ये सारे काम २० मिनटके अंदर ही निबटा दिये गये। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढनेमें पाच मिनटसे अधिक नहीं लगे होंगे। गोखलेके उत्तरने भी इससे ज्यादा वक्त नहीं लिया होगा। स्वयंसेवकोंका प्रवच इतना सुंदर था कि पूर्व निश्चित लोगोंसे अधिक एक भी आदमी प्लेटफार्मपर नहीं आने पाया। शोरगुल विलकुल नहीं था। बाहर जबदस्त भीड थी, फिर भी किसीके आने-जानेमें तनिक भी अडचन नहीं हुई।

गोखलेको ठहरानेका प्रबंध मि० केलनवेकके एक सुंदर बंगलेमें किया गया था जो जोहान्सवर्गसे पाच मीलके फामलेपर अवस्थित एक पहाड़ीकी चोटीपर बना हुआ था। वहाँका दृश्य इतना सुंदर था, शांति इतनी आनददायक थी और वगलेकी वनावट सादी होते हुए भी इतनी कलामय थी कि गोखलेको यह स्थान बहुत ही पसंद आया। सब लोगोसे मिलनेका प्रबंध शहरमें किया गया था। इसके लिए एक खास दफ्तर किरायेपर लिया गया था। उसमें तीन कमरे थे। एक खास कमरा गोखलेके आराम करनेके लिए, दूसरा मुलाकातके लिए और तीसरा मिलनेको आनेवालोके बैठनेके लिए। नगरके कुछ विशेष व्यक्तियोंसे निजी मुलाकातके लिए भी हम गोखलेको ले गये थे। प्रमुख युरोपियनोने भी अपनी एक निजी सभा की थी जिसमें उनके दृष्टिविदुको गोखले पूरी तरह समझ ले। इसके सिवा जोहान्सवर्गमें उनके सम्मानमें एक बड़ा भोज भी दिया गया जिसमें ४०० आदमियोंको निमन्त्रण दिया गया था। इनमें १५० के लगभग युरोपियन होंगे। भारतीयोका प्रवेश टिकटसे रखा गया था जिसकी कीमत एक गिनी रखी गई थी। इससे इस दावतका खर्च निकल आया। भोजन शुद्ध निरामिष और मद्यपान-रहित ही था। रसोई भी सारी स्वयंसेवकोने ही बनाई थी। इस सुंदर आयोजनका चित्र यहाँ प्रस्तुत कर सकना कठिन है। दक्षिण अफ्रीकामे हमारे भारतीय भाई हिंदू-मुसलमान छुआ-छूत नहीं जानते। हां, निरामिषभोजी भारतीय अपने निरामिषाहारकी रक्षा करते हैं। हिंदुस्तानियोंमें फितने ही ईसाई भी थे। वे बहुत करके गिरमिटिया मां-बापकी सतान हैं। उनमेंसे बहुतरे होटलोमें खाना पकाने और परसनेका धंधा करते हैं। इन भाइयोकी मददसे ही इतने बड़े भोजका प्रबंध कर लेना शक्य हुआ। भोजनमें कोई पंद्रह प्रकारकी चीजे रही

होगी। दक्षिण अफ्रीकाके यूरोपियनोके लिए यह विलकुल नया और अचरजभरा अनुभव था। इतने अधिक हिंदुस्तानियोंके साथ एक पातमे भोजन करने बैठना, निरामिष भोजन और बिना शरावके काम चला लेना, तीनों अनुभव उनमेसे बहुतोके लिए नये थे। दो तो सभीके लिए नये थे।

इस सम्मेलनमें गोखलेने जो भाषण दिया वह दक्षिण अफ्रीकामें उनका सबसे बड़ा और सबसे अधिक महत्वका भाषण था। वह लगातार ४५ मिनट बोले। इस भाषणकी तैयारीमे उन्होने हमारी पूरी हाजिरी ली थी। उन्होने अपना यह जिदगीभरका नियम बताया कि स्थानीय लोगोके दृष्टिबिंदुकी अवगणना न हो और उसका जितना लिहाज किया जा सकता है उतना किया जाय, इसलिए मुझे यह बता देनेको कहा कि मैं अपनी दृष्टिसे उनसे क्या कहलवाना चाहता हूँ। यह मुझे लिखकर देना था और इसके साथ यह शर्त थी कि अगर उनके एक वाक्य या विचारका भी वह उपयोग न करें तो मैं बुरा न मानूँ। वह मजमून न ज्यादा लवा हो न छोटा, फिर भी कोई जरूरी बात छूट न जाय। इन सारी शर्तोंका पालन करते हुए मुझे उनके लिए अपने नोट तैयार करने होते थे। यह तो कह ही दूँ कि मेरी भाषाका तो उन्होने विलकुल ही उपयोग नहीं किया। अंग्रेजी भाषामे पारगत गोखले मेरी भाषाका कहीं भी उपयोग करेगे, यह आशा मैं रखता हूँ क्यों? मेरे विचारोंका उन्होने उपयोग किया, यह भी मैं नहीं कह सकता। पर उन्होने मेरे विचारोंकी उपयोगिता स्वीकार की। इससे मैंने मनको यह समझा लिया कि उन्होने किसी तरह मेरे विचारोंका उपयोग कर लिया होगा। पर उनकी विचारधरणी ऐसी थी कि उन्होने उसमें अपने विचारको कहीं स्थान दिया या नहीं, इसका पता आपको चल ही नहीं सकता था। गोखलेके सभी भाषणोंमे मैं उपस्थित था, पर मुझे एक भी ऐसा अक्षर याद नहीं आता

जब मैंने सोचा हो कि उन्होंने अमुक भाव प्रकट नहीं किया होता या अमुक विशेषणका व्यवहार न किया होता तो अच्छा होता। उनके विचारोंकी स्पष्टता, दृढता, विनय इत्यादि उनके अनिश्चय परिश्रम और सत्यपरायणताका प्रसाद थी।

जोहान्स्वर्गमें केवल हिंदुस्तानियोंकी विराट् सभा भी होनी ही चाहिए थी। मेरा यह आग्रह पूर्वकालसे ही चला आ रहा है कि हम या तो अपनी मातृभाषामें बोले या राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानीमें। इस आग्रहकी बदौलत दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंके साथ मेरा संबंध सरल और निकटका हो गया। इससे मैं सोचता था कि हिंदुस्तानियोंके साथ गोखले भी हिंदुस्तानीमें ही बोलें तो अच्छा है। इस विषयमें गोखलेके विचार मुझे मालम थे। टूटी-फूटी हिंदीसे वह अपना काम चला ही नहीं सकते थे। इसलिए या तो मराठीमें बोलते या अंग्रेजीमें। मराठीमें बोलना उन्हें बनाबटी-सा जान पड़ा और उसमें बोलें भी तो गुजरती और उत्तर भारतवाले श्रोताओंके लिए उसका हिंदुस्तानी उलथा तो करना ही होता। तो फिर अंग्रेजीमें ही क्यों न बोले ? सौभाग्यवश मेरे पास एक ऐसी दलील थी जिससे गोखले मराठीमें बोलना मजूर कर लें। जोहान्स्वर्गमें कोंकणके बहुतसे मुसलमान बसते थे। थोड़े सहाराष्ट्रीय हिंदू तो थे ही। इन सभीको गोखलेका मराठी भाषण सुननेकी बड़ी इच्छा थी और उन्होंने मुझसे कह रखा था कि गोखलेसे मराठीमें बोलनेकी प्रार्थना करूं। मैंने उनसे कहा—“आप मराठीमें बोलेंगे तो ये लोग बहुत खुश होंगे और आप जो बोलेंगे उसका हिंदुस्तानी तरजुमा मैं कर दूंगा।” वह खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले—“तुम्हारा हिंदुस्तानीका ज्ञान तो मैं सब जानता हूं। यह हिंदुस्तानी तुमको मवारक हो। पर तुम मराठीका उलथा हिंदुस्तानीमें करने चले हो। यह तो बताओ कि इतनी मराठी तुमने कहाँ सीखी ?” मैंने



जवाब दिया—“जो बात आपने मेरी हिंदुस्तानीके बारेमे कही है वही मराठीकी भी समझिए । मराठीका एक अक्षर भी मैं बोल नहीं सकता । पर जिस विषयका मुझे ज्ञान है उस विषयपर आप मराठीमें जो कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मैं जरूर समझ जाऊंगा । इतना तो आप देख लेंगे कि मैं लोगोंके सामने उसका अनर्थ कदापि न करूंगा । मैं आपको ऐसे उलथा करनेवाले दे सकता हूँ जो मराठी अच्छी तरह समझते हैं, पर चायद आप इसको पसद न करें । अतः मुझे निभा लीजिएगा और मराठीमे ही बोलिएगा । कोकणी भाइयोंके जैसी मुझे भी आपका मराठी भाषण सुननेकी हवस है ।”

“तुम अपनी टेक जरूर रखना । यहाँ तुम्हारे पाले पडा है, इसलिए छुटकारा थोडे ही पा सकता हूँ ।” यो कहकर मुझे रिझाया और इसके बाद ऐसी सभाओमे ठठ जंजीवारतक मराठीमे ही बोले और मैं उनका विशेष रूपसे नियुक्त भाषांतरकार रहा । मैं नहीं जानता कि यह बात मे उन्हें कहां तक समझा सका कि मुहाबरेदार और व्याकरण-बुद्ध अंग्रेजीमे बोलनेकी अपेक्षा यथासभव मातृभाषा, यहाँ तक कि टूटी-फूटी व्याकरण-रहित हिंदीमें ही बोलना मुनासिब है । पर इतना जानता हूँ कि दक्षिण अफ्रीकामे वह महज मुझे खुश करनेकी खातिर मराठीमें बोले । मराठीमें कुछ भाषण देनेके बाद इसके फलसे उन्हें भी प्रसन्नता हुई, यह मैं देख सका । गोखलेने दक्षिण अफ्रीकामें अनेक अवसरोंपर अपने व्यवहारसे यह दिखा दिया कि जहाँ सिद्धांतका प्रश्न नहीं वहाँ अपने सेवकोंको प्रसन्न करना गुण है ।

: १३ :

## गोखलेकी यात्रा—२

जोहान्सबर्गसे हमें प्रिटोरिया जाना था । प्रिटोरियामे गोखलेको युनियन सरकारकी ओरसे निमन्त्रण था । अतः ट्रांसवाल होटलमे उसने उनके लिए जो स्थान खाली रखवाया था वही उतरना था । यहाँ गोखलेको युनियन सरकारके मंत्रिमंडलसे मिलना था, जिसमे जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे । जैसा कि ऊपर बता चुका हूँ, उनका कार्यक्रम मने ऐसा बनाया था कि रोज करनेके कामोंकी सूचना मैं उन्हें सवेरे या वह पृष्ठें तो अगली रातको दे दिया करता था । मंत्रिमंडलसे मिलनेका काम बड़ी जवाबदेहीका था । हम दोनोंने तै किया कि मैं उनके साथ न जाऊँ, जानेकी इच्छा भी प्रकट न करूँ । मेरी उपस्थितिसे मंत्रिमंडल और गोखलेके बीच कुछ-न-कुछ पर्दा पड जाता । मंत्रिगण जी-भरकर स्थानीय भारतीयोंकी और इच्छा हो तो मेरी भी जो गलतियाँ मानते हो उन्हें न बता सकते । वे कुछ कहना चाहते हो तो उसे भी खुले दिलसे न कह सकते, पर इससे गोखलेकी जिम्मेदारी दुगनी हो जाती थी । कोई तथ्यकी भूल हो जाय या वे कोई नया तथ्य सामने रखे और उसका जवाब गोखलेके पास न हो अथवा उन्हें हिंदुस्तानियोंकी ओरसे कोई स्वीकृति देनी हो तो उस दशामे क्या करना होगा, यह समस्या उपस्थित हो गई । पर गोखलेने तुरत उसका हल निकाल लिया । मैं उनके लिए भारतीयोंकी स्थितिका अथसे इति तक खुलासा तैयार कर दूँ । भारतीय कहाँतक जानेको तैयार हूँ, यह भी लिख दूँ । उसके बाहरकी कोई भी बात सामने आये तो गोखले अपना अज्ञान स्वीकार कर ले । यह निश्चय करके वह निश्चित हो गये । अब करना इतना ही रहा कि मैं उस तरहका

खुलासा तैयार कर दू और गोखले उसे पढ़ लें। पर वह उसे पढ़ लें इतना वक्त तो मैंने रखा ही नहीं था। कितना ही छोटा खुलासा लिखू फिर भी चार उपनिवेशोंमें भारतीयोंकी स्थितिका इतिहास दस-बीस पन्ने लिखे बिना कैसे दे सकता था। फिर उस खुलासेको पढ़नेके बाद उनके मनमें कुछ सवाल तो उठते ही। पर उनकी स्मरणशक्ति जितनी तीव्र थी वैसी ही थम करनेकी शक्ति अगाध थी। सारी रात जगे और पोलकको और मुझे जगाया। एक-एक बातकी पूरी जानकारी प्राप्त की और उन्होंने भी समझा या नहीं, इसकी जांच भी करा ली। अपने विचार मुझे सुनाते जाते। अंतमें उन्हें सतोष हुआ। मैं तो निर्भय था ही।

लगभग दो घंटे या इससे कुछ अधिक वह मंत्रिमंडलके पास बैठे और लौटकर मुझसे कहा—“मुझे एक दरसके अंदर हिंदुस्तान लौट आना है। सब बातोंका फैसला हो गया। खूनी कानून रद्द होगा। इमिग्रेशन कानूनमें वर्णभेद निकाल दिया जायगा। तीन पाँडका कर उठा दिया जायगा।” मैंने कहा, “मुझे इसमें पूरी शका है। मंत्रिमंडलको जितना मैं जानता हूँ उतना आप नहीं जानते। आपका आशावाद मुझे प्रिय है, क्योंकि मैं खुद भी आशावादी हूँ; पर अनेक बार धोखा खा चुका हूँ। इसलिए इस विषयमें आपकी जितनी आशा मैं नहीं रख सकता। पर मुझे कोई डर नहीं। आप मंत्रिमंडलसे वचन ले आये, इतना ही मेरे लिए काफी है। मेरा धर्म तो इतना ही है कि जब आवश्यक हो तब लड़ लू और यह साबित कर दूँ कि हमारी लड़ाई न्यायकी है। इसकी सिद्धिमें आपको मिला हुआ वचन हमारे लिए बहुत लाभजनक होगा। और लड़ना पडा ही तो लड़नेमें उससे हमारा बल दूना हो जायगा। पर अधिक भारतीयोंके जेलमें गये बिना और एक सालके अंदर मैं हिंदुस्तान लौट सकता हूँ, ऐसा मुझे नहीं दिखाई देता।”

यह सुनकर वह बोले—“मैं तुमसे जो कहता हूँ उसमे फर्क पडनेवाला नहीं। मुझे जनरल बोथाने वचन दिया है कि खूनी कानून रद्द कर दिया जायगा और तीन पौडका कर उठा दिया जायगा। तुम्हे वारह महीनेके अंदर हिंदुस्तान लौटना ही होगा। मैं तुम्हारा एक भी वहाना सुननेवाला नहीं।”

जोहान्स्वर्गका भाषण प्रिटोरियाकी यात्राके बाद हुआ था। ट्रान्सवालसे गोखले डबन, मेरित्सवर्ग आदि स्थानोंमे गये। वहां भी बहुतसे यूरोपियनोंसे मिले-जुले। किम्बरलीकी हीरेकी खान भी देखी। किम्बरली और डबनमे भी स्वागत-मंडलकी आरसे जोहान्स्वर्गकी जैसी दावते की गई और उनमे भी बहुतसे यूरोपियन सम्मिलित हुए। यों भारतीय और यूरोपियन दोनोंके मन हर कर गोखलेने १९१२की १७वीं नवंबर-को दक्षिण अफ्रीकाके समुद्र-तटसे प्रस्थान किया। उनकी इच्छासे मैं और मि० केलनबेक जजीवारतक उन्हें पहचाने गये। स्टीमरपर उनके लिए ऐसे भोजनका प्रवध कर दिया था जो उनकी प्रकृतिके अनुकूल हो। रास्तेमे डेलागोआ वे, इनहाम-वेन, जजीवार आदि बदरगाहोंपर भी उनका खूब सम्मान किया गया।

स्टीमरपर हमारे बीच होनेवाली वातचीतका विषय केवल हिंदुस्तान या उसके प्रति हमारा धर्म ही होता। उनकी हर वातमे उनकी कोमल भावना, उनकी सत्यपरायणता और उनका स्वदेगाभिमान झलक उठता। मैंने देखा कि स्टीमरपर वह जो खेल खेलते उनमे भी खेलकी वनिस्वत हिंदुस्तानकी सेवाका भाव अधिक होता। उसमे भी संपूर्णता तो होनी ही चाहिए थी।

स्टीमरपर हमें इतमीनानसे बातें करनेकी फुरसत तो रहती ही। इन वार्तालापोमे उन्होने मुझे हिंदुस्तानके लिए तैयार किया। भारतके हरएक नेताके चरित्रका विश्लेषण

करके दिखाया। उनका विश्लेषण इतना सही था कि उन नेताओंके विषयमें जो कुछ मैंने स्वयं अनुभव किया उसमें और गोखलेके आलेखनमें शायद ही कहीं फर्क पाया हो।

गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रामें उनके साथ मेरा जो संबंध रहा उसके कितने ही पवित्र संस्मरण ऐसे हैं जो यहाँ दिये जा सकते हैं, पर सत्याग्रहके इतिहासके साथ उनका सबंध नहीं है, इससे मुझे अनिच्छापूर्वक अपनी कलम रोकनी पड़ रही है। जजीवारमें हुआ वियोग मेरे और मि० कोलनबेक दोनोंके लिए अतिशय दुःखदायी था, पर यह सोचकर कि देहघागियोंके निकट-से-निकट सबंधका भी एक दिन अंत होता ही है हमने धैर्य धारण किया और दोनोंने यह आशा रखी कि गोखलेकी भविष्यवाणी सत्य होगी और हम दोनों एक वरसके अंदर हिंदुस्तान जा सकेंगे। पर यह अनहोनी बात निकली।

फिर भी गोखलेकी दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रामें हमें अधिक दुःख किया और कुछ दिन बाद जब युद्ध फिर अधिक तीव्ररूपमें आरंभ हुआ तब इस यात्राका मर्म और उसकी आवश्यकता हम अधिक समझ सके। गोखले दक्षिण अफ्रीका न गये होते और मंत्रिमंडलसे न मिले होते तो तीन पौडके करको हम युद्धका विषय न बना सके होते। अगर खूनी कानून रद्द हो जानेपर सत्याग्रहकी लड़ाई बंद हो जाती तो तीन पौडके करके लिए हमें नया सत्याग्रह करना पड़ता और उसे करनेमें अपार कष्ट सहन करना पड़ता। इतना ही नहीं, लोग तुरंत दूसरे सत्याग्रहके लिए तैयार होते या नहीं, इसमें भी शक ही थी। इस करको रद्द कराना स्वतंत्र भारतीयोंका फर्ज था। इसके लिए अजिया भेजना आदि सब वैध उपाय किये जा चुके थे। १९१५से यह कर अदा किया जा रहा था। पर कैसा ही घोर कष्ट क्यों न हो, वह लंबे अरसेतक बना रहे तो लोग उसके आदी हो जाते हैं और उसके विरोध करनेका धर्म उन्हें समझाना कठिन हो जाता है,

दुनियाको उसकी घोरता समझाना भी उतना ही कठिन हो जाता है। गोखलेको मिले हुए वचनने सत्याग्रहियोंका रास्ता साफ कर दिया। गान्धी-सरकार अपने वचनके अनुसार उक्त करको उठा दे, नहीं तो यह वचन-भंग ही लड़ाईका सबल कारण हो जाता। हुआ भी ऐसाही। सरकारने एक बरसके अंदर कर नहीं उठाया। इतना ही नहीं, साफ कह दिया कि वह हटाया नहीं जा सकता।

अतः गोखलेकी यात्रासे तीन पौडके करको सत्याग्रहके जरिये हटवानेमें हमे मदद तो मिली ही, इस यात्रासे वह दक्षिण अफ्रीकाके प्रश्नके विशेषज्ञ मान लिये गये। दक्षिण अफ्रीकाके चारों ओर उनके कथनका वजन भी बढ़ गया। साथ ही दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंके विषयमें निजी जानकारी हो जानेके कारण इस बातको अधिक समझने लगे कि हिंदुस्तानको उनके लिए क्या करना चाहिए और हिंदुस्तानको यह बात समझानेमें उनकी शक्ति तथा अधिकार बहुत बढ़ गया। हमारी लड़ाई जब फिर छिड़ी तो हिंदुस्तानसे पैसोंकी वर्षा होने लगी और लाई-हार्डिजने सत्याग्रहियोंके साथ अपनी गहरी और ज्वलन्त सहानुभूति दर्साकर उन्हें प्रोत्साहन दिया। हिंदुस्तानसे मि० एडवूज और मि० पियर्सन दक्षिण अफ्रीका गये। गोखलेकी यात्राके बिना ये सभी बातें अगक्य होतीं।

वचन-भंग कैसे हुआ और उसके बाद क्या हुआ, यह नये प्रकरणका विषय है।

: १४ :

वचन-भंग

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह-संग्राममें इतने सूक्ष्म विचार-

से काम लिया जा रहा था कि प्रचलित नीतिके विरुद्ध एक भी कदम नहीं उठाया जाता। इतना ही नहीं, बल्कि इस बातका भी ध्यान रखा जाता कि सरकारको अनुचित रीतिसे कष्ट न पहुंचाया जाय। मिसालके लिए, खूनी कानून केवल ट्रांसवालके हिंदुस्तानियोपर लागू किया गया था। इससे सत्याग्रह-नीतिमें केवल ट्रांसवालके भारतीय ही दाखिल किये जाते थे। नेटाल, केप कोलोनी इत्यादिसे सत्याग्रहियोंको भरती करनेका कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया, बल्कि वहासे आये हुए, इसके प्रस्ताव भी लौटा दिये गये। लडाईं-की मर्यादा भी इस कानूनको रद्द करानेतक ही थी। इस बातको न गोरे समझ सकते थे, न भारतीय। आरंभमें भारतीयोंकी ओरसे यह मांग हुआ करती थी कि अगर लडाईं शुरू करनेके बाद खूनी कानूनके अतिरिक्त और कष्टोको भी हम उसके उद्देश्यमें शामिल कर सकते हो तो क्यों न कर लें? मने उन्हें धीरजके साथ समझाया कि इसमें सत्यका भंग होता है और जिस युद्धमें सत्यका ही आग्रह हो उसमें उसके भंगकी बात कैसे सोची जा सकती है? गुट युद्धमें तो लड़ते-लड़ते लड़नेवालोका बल बढ़ता हुआ दिखाई दे तो भी युद्ध आरंभ करते समय जो उद्देश्य नियत किये गये हो उनसे आगे जा ही नहीं सकते। दूसरी ओर लड़नेका बल अगर दिन-दिन छीजता दिखाई दे तो भी जिस हेतुके लिए लडाईं छेडी गई हो उसका त्याग नहीं किया जा सकता। इन दोनों सिद्धांतोपर दक्षिण अफ्रीकामें पूरी तरह अमल किया गया। युद्ध आरंभ करते समय जिस बलके भरोसे हमने युद्धका लक्ष्य नियत किया हमने देखा कि आगे चलकर वह बल झूठा निकला, फिर भी जो मुट्ठीभर सत्याग्रही बच रहे थे वे युद्धका त्याग नहीं कर सके। इस प्रकार लड़ना अपेक्षाकृत आसान होता है और बलमें वृद्धि होते हुए भी उद्देश्यमें

वृद्धि न करना उससे कही कठिन होता है। इसमें अधिक समय दरकार होता है। ऐसे प्रलोभन दक्षिण अफ्रीकामें अनेक बार हमारे सामने आये; पर मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उसका लाभ हमने एक बार भी नहीं उठाया और इसीसे मैंने अक्सर कहा है कि सत्याग्रहीके लिए एक ही निश्चय होता है। वह उसे न घटा सकता है, न बढ़ा सकता है। उसमें न क्षयका अवकाश होता है और न वृद्धिका। आदमी जो पैमाना अपने लिए तै करता है, दुनिया भी उसको उसी पैमानेसे नापती है। सरकारने जब जान लिया कि सत्याग्रही ऐसी सूक्ष्म नीति बरतनेका दावा करते हैं तब उसने उनके ही पैमानेसे उनको नापना शुरू कर दिया, हालांकि वह खुद उस नीतिके एक भी नियम-सिद्धांतसे अपने आपको बंधा नहीं मानती थी। उसने सत्याग्रहियोंपर दो-चार बार नीति-भंगका इलजाम लगाया। सूनी कानूनके बाद हिंदुस्तानियोंके खिलाफ कोई नया कानून गढ़ा जाय तो उसका समावेश सत्याग्रहके हेतुओंमें हो सकता है, इस बातको एक बच्चा भी समझ सकता है। फिरे भी जब नये दाखिल होनेवाले हिंदुस्तानियोंपर नया प्रतिबंध लगाया गया और वह लड़ाईके हेतुओंमें शामिल कर लिया गया तब सरकारने उनपर युद्ध-हेतुओंमें नये विषयोंको शामिल करनेका इलजाम लगाया। यह आरोप सोलहो-आने अनुचित था। अगर नये आनेवाले हिंदुस्तानियोंपर ऐसी रक़ावटें लगाई गईं जो पहले नहीं थीं तो उनको भी युद्धके हेतुओंमें शामिल करनेका हक हमें होना ही चाहिए था और हम देख चुके हैं कि सोराबजी बगैरह इसीलिए ट्रांसवालमें दाखिल हुए। सरकारको यह बात वर्दाश्त नहीं हो सकती थी। पर निष्पक्ष लोगोंको इस कदमका औचित्य समझानेमें मुझे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई।

गोखलेकी रवानगीके बाद ऐसा मौका फिर आया।



गोखलेने तो सोचा था कि तीन पीडका कर एक वरसके अंदर रद्द हो ही जायगा और उनके जानेके बाद यूनियन पार्लामेंटका जो अधिवेशन होगा उसमें उसे उठा देनेके कानूनका मसविदा पेश कर दिया जायगा। इससे पहले जनरल स्मट्सने यह प्रकट किया कि नेटालके यूरॉपियन यह कर उठा देनेको तैयार नहीं हैं, इसलिए यूनियन सरकार उसे रद्द करनेका कानून पास करनेमें असमर्थ है। वस्तुतः ऐसी कोई बात नहीं थी। यूनियन पार्लामेंटमें चारों उपनिवेशोंके प्रतिनिधि बैठते हैं। अकेले नेटालके सदस्योंकी उसमें कुछ नहीं चल सकती थी। फिर मंत्रिमंडलके पेश किये हुए बिलको पार्लामेंट नामंजूर करे वहातक पहुंचाना जरूरी था। जनरल स्मट्सने इसमेंसे कुछ भी नहीं किया। इससे हमें इस कर करको युद्धके कारणोंमें सम्मिलित कर लेनेका सुयोग सहज ही मिल गया। इसके लिए हमें दो कारण मिले : एक तो यह कि चलती लडाईके दरमियान सरकारकी ओरसे कोई वचन दिया जाय और फिर उस वचनका भंग किया जाय तो यह वचन-भंग चलते सत्याग्रहके कार्य-क्रममें दाखिल हो जाता है। दूसरा यह कि हिंदुस्तानके गोखले सरीखे प्रतिनिधिको दिया हुआ वचन तोड़ा जाय तो यह उनका ही नहीं, सारे हिंदुस्तानका अपमान है और यह अपमान सहन नहीं किया जा सकता। केवल पहला ही कारण होता और सत्याग्रहियोंमें क्षमि न होती तो उक्त करको रद्द करनेके लिए सत्याग्रह करना बहू छोड़ सकते थे। पर जब उससे हिंदुस्तानका अपमान हो रहा हो तब तो उसे सहन कर लेना संभव ही नहीं था। इसलिए तीन पीडके करको युद्धके कार्य-क्रममें शामिल कर लेना सत्याग्रहियोंको फर्ज जान पडा और जब तीन पीडके करको युद्धके हेतुओंमें स्थान मिल गया तब गिरमिटिया हिंदुस्तानियोंको भी सत्याग्रहमें सम्मिलित होनेका मौका मिल गया। पाठकोको

यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि अबतक ये लोग लड़ाईसे बाहर ही रखे गये थे। अतः एक ओर तो लड़ाईका बोझ बढ़ा और दूसरी ओर लड़नेवालोंके भी बढ़नेका समय आया हुआ दिखाई दिया।

गिरमिटियोंसे अबतक सत्याग्रहकी शिक्षा देनेकी तो बात ही क्या, लड़ाईकी चर्चातक नहीं की गई थी। वे निरक्षर थे, इसलिए 'इंडियन ओपीनियन' या दूसरे अखबार कहांसे पढ़ सकते थे? फिर भी मैंने देखा कि ये गरीब लोग सत्याग्रहका निरीक्षण कर रहे थे और जो कुछ हो रहा था उसको समझ रहे थे। कुछको इस लड़ाईमें शामिल न हो सकनेका दुःख भी था। पर जब वचन-भंग हुआ और तीन पौडका कर भी युद्धके हेतुओंमें शामिल किया गया तब उनमेंसे कौन लड़ाईमें शामिल होगा, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं था।

वचन-भंगकी बात मैंने गोखलेको लिखी। उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। मैंने उन्हें लिखा कि आप निश्चित रहें, हम मरते दम तक लड़ेंगे और इस करको रद्द कराके रहेंगे। हां, एक बरसके अंदर जो मुझे हिंदुस्तान लौटना था वह टला और पीछे कब लौट सकंगा यह कहना अशक्य हो गया। गोखले तो अंकशास्त्री थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि तुम्हारे पास अधिक-से-अधिक और कम-से-कम कितने लड़नेवाले हो सकते हैं और उनके नाम मंगि। जहातक मुझे याद है, मैंने अधिक-से-अधिक ६५ या ६६ और कम-से-कम १६ नाम मंगे थे। मैंने यह भी लिख दिया कि इतनी छोटी-सी तादादके लिए मैं हिंदुस्तानसे पैसेकी मददकी अपेक्षा नहीं रखूंगा। यह बिनती भी की कि हमारे वारेमें आप निश्चित रहें और अपने शरीरको अधिक कष्ट न दे। मैं अखबारोंके जरिये और दूसरे तौरपर भी जान चुका था कि दक्षिण अफ्रीकासे बंबई वापस जानेपर गोखलेपर

कमजोरी दिखाने इत्यादिके आक्षेप किये गये थे। इससे मैं चाहता था कि हिंदुस्तानमें हमें पैसा भेजनेके लिए वह कुछ भी आंदोलन न करे। पर गोखलेसे मुझे यह कड़ा जवाब मिला—“जैसे तुम लोग दक्षिण अफ्रीकामें अपना फर्ज समझते हो वैसे हम भी कुछ अपना फर्ज समझते होंगे। हमें क्या करना उचित है, यह तुमको बतानेकी आवश्यकता नहीं है। मैं तो महज वहाँकी स्थिति जानना चाहता था। हमारी ओरसे क्या होना चाहिए इस बारेमें सलाह नहीं मागी थी।” इन शब्दोंका मर्म मैं समझ गया। इसके बादसे मैंने इस विषयमें एक शब्द भी नहीं कहा और न लिखा। उन्होंने इसी पत्रमें मुझे आश्वासन दिया और चेतावनी भी दी। उन्हें डर था कि जब सरकारने इस तरह वचन-भंग किया है तब लडाईं बहुत लवी होगी और ये मूठठीभर आदमी कबतक उससे लोहा ले सकेंगे। इधर हम लोगोंने अपनी तैयारियां शुरू की। इस बारकी लडाईंमें शांतिसे बैठना तो हो ही नहीं सकता था। हमने यह भी समझ लिया कि इस बार सजाएं लवी होगी। अतः टास्टराफार्म बंद कर देनेका निश्चय किया गया। मदोंके जेलसे छूटनेके बाद कुछ कुटुंब अपने-अपने घर चले गये। जो लोग बाकी रह गये थे उनमें अधिकांश फिनिक्स आश्रमके थे। अतः निश्चय हुआ कि आगेसे सत्याग्रहियोंका केन्द्र फिनिक्स ही हो। तीन पौडके करकी लडाईंके अंदर अगर गिरमिटिये शामिल हुए तो उनसे मिलना-जुलना नेटालमें अधिक सुभीतेसे हो सकता था। इस खयालसे भी फिनिक्सको केन्द्र बनाना तै हुआ।

लडाईं शुरू करनेकी तैयारी चल ही रही थी कि इनमें एक नया विघ्न उपस्थित हो गया, जिससे स्त्रियोंको भी लडाईंमें शामिल करनेका मौका मिला। कुछ वीर स्त्रियां उसमें शामिल होनेकी मांग पहले ही कर चुकी थी और जब बिना परवाना दिखाये फेरी करके जेल जाना आरंभ हुआ तब फेरी करने-

वालोकी स्त्रियोंने भी जेल जानेकी इच्छा प्रकट की थी। पर उस वक्त परदेशमें स्त्रीवर्गको जेल भेजना हम सबको अयोग्य जान पडा। उन्हे जेल भेजनेका कारण भी नहीं दिखाई दिया और उन्हे जेल ले जानेकी मेरी तो उस वक्त हिम्मत भी नहीं थी। इसके साथ-साथ यह भी दिखाई दिया कि जो कानून खास तौरसे मर्दोंपर ही लागू होता हो उसको रद्द करानेमें स्त्रियोंको रोकना मर्दोंके लिए जिल्लतकी बात होगी। पर इस वक्त एक ऐसी घटना हुई जिसमें स्त्रियोंका खास तौरसे अपमान होता था और हमे जान पडा कि इस अपमानको दूर करनेके लिए स्त्रियाँ भी बलिदान हो जाएं तो अनुचित न होगा।

: १५ :

## ब्याह ब्याह नहीं रहा

मानों अब्दुल रहकर इंसवर हिंदुस्तानियोंकी जीतका सामान तैयार कर रहा हो और दक्षिण अफ्रीकाके गोरोंके अन्यायको अधिक स्पष्ट गीतिसे प्रकट कर देना चाहता हो, दक्षिण अफ्रीकामें एक ऐसी घटना हुई जिसकी सभावना किसीको भी नहीं थी। हिंदु तानसे बहुतेरे विवाहित लोग दक्षिण अफ्रीका गये थे और कुछने वही ब्याह किया था। हिंदुस्तानमें सामान्य ब्याहकी रजिस्टरी करानेका कानून तो है ही नहीं। धार्मिक क्रिया ही काफी समझी जाती है। दक्षिण अफ्रीकामें भी हिंदुस्तानियोंके लिए यही प्रथा होनी चाहिए थी। हिंदुस्तानी चालीस बरससे उस देशमें बस रहे थे। फिर भी हिंदुस्तानके मित्त-मित्त धर्मोंके अनुसार हुए ब्याह नोजायज नहीं समझे गये थे। पर इस वक्त एक मुकदमा ऐसा हुआ जिसमें केप सुप्रीमकोर्टके एक न्यायाधीशने यह फैसला

दिया कि दक्षिण अफ्रीकाके कानूनमे वही व्याह जायज माना जायगा जो ईसाई धर्मकी रीतिसे सपन्न हुआ हो और जिसकी रजिस्टरी विवाहके अधिकारी (रजिस्ट्रार आव मेरिजेज) के यहां करा ली गई हो। अर्थात् हिंदू, मुसलमान, पारसी इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए व्याह इस भयंकर निर्णयसे दक्षिण अफ्रीकामे रद्द हो गये और बहुत-सी विवाहिता भारतीय महिलाओंका दरजा दक्षिण अफ्रीकामे अपने पतिकी धर्म-पत्नीका न रहकर रखेलीका हो गया और उनकी संतानको बापकी कमाई पानेका हक भी नहीं रहा। यह स्थिति न स्त्रियोंको सहन हो सकती थी, न पुरुषोंको। दक्षिण अफ्रीकामे बसने-वाले हिंदुस्तानियोंमे भारी खलवली मची। मैंने अपने स्वभावके अनुसार सरकारसे पूछा कि सरकार न्यायाधीशके इस निर्णयको मान लेगी या कानूनका उन्होंने जो अर्थ किया है वह सही हो तो भी वह अनर्थ है यह समझकर नया कानून बनाकर हिंदू-मुसलमान इत्यादि धर्मोंकी विधिसे हुए व्याहोंको जायज मान लेगी? सरकारका भाव इस वक्त ऐसा नहीं था कि वह हमारी बातकी परवा करती। इसलिए जवाब इन्कारों का मिला।

उक्त निर्णयके विरुद्ध अपील की जाय या नहीं, इसपर विचार करनेके लिए सत्याग्रह-मंडलकी बैठक हुई। अंतमे सभीने निश्चय किया कि ऐसे मामलेमे अपील हो ही नहीं सकती। अपील करनी ही हो तो सरकार करे या वह चाहे तो अपने वकील (एटर्नी जनरल) की मारफत खुले तौरपर हिंदुस्तानियोंका पक्ष ले, तभी हिंदुस्तानी अपील कर सकते हैं। इसके बिना अपील करना हिंदू-मुसलमान विवाहोंका नाजायज ठहरा दिया जाना सहन कर लेना-सा होगा। फिर अपील की गई और उसमे हमारी हार हुई तो सत्याग्रह करना ही होगा। अंतः ऐसे अपमानके बारेमे अपील की ही नहीं जा सकती।

अब ऐसा वक्त आ गया जब शुभतिथि या मंगलमूर्हतंकी राह देखी जा ही नहीं सकती थी। स्त्रियोंका अपमान होनेके बाद धीरज कैसे रहता ? थोड़े या बहुत जितने भी आदमी मिल जाएं उन्हीको लेकर तीव्र रूपसे सत्याग्रह आरंभ करनेका निश्चय किया गया। अब स्त्रियोंका लड़ाईमें शामिल होना रोका नहीं जा सकता था। इतना ही नहीं, हमने उन्हें लड़ाईमें शामिल होनेका निमंत्रण देनेका निश्चय किया। पहले तो जो बहने टालस्टाय फार्ममें रह चुकी थी उन्हीको निमंत्रण दिया गया। वे बहने तो लड़ाईमें शामिल होनेको बेचैन हो रही थी। मैंने उन्हें लड़ाईकी सभी जोखिमें बता दी। खाने-पीने, कपड़े-लुत्ते, सोने-बैठनेमें पावदियां होगी, यह समझा दिया। यह चेतावनी दे दी कि जेलमें उन्हें सख्त मशकूत करनी होगी। कपड़े झुलवाये जाएंगे। अमले अपमान करेगे। पर ये बहने एक भी बातसे नहीं डरी। सभी बहादुर थी। एकके तो कई महीनेका गर्भ था। कुछकी गोदमें बच्चे थे; पर उन्होंने भी शामिल होनेका आग्रह किया और उनमेंसे किसीको भी रोक सकना मेरे बसकी बात नहीं थी। ये सभी बहने नामिल थी। उनके नाम ये हैं—

- १ श्रीमती धंदी नायडू; २ श्रीमती एन० पिल्ले;
३. श्रीमती के० मुरगसा पिल्ले, ४. श्रीमती ए० पी० नायडू;
- ५ श्रीमती पी० के० नायडू, ६. श्रीमती चिन्नस्वामी पिल्ले;
- ७ श्रीमती एन. एस. पिल्ले; ८ श्रीमती मुदालिगम्;
९. श्रीमती भवानी दयाल; १०. श्रीमती एम० पिल्ले,
- ११ श्रीमती एम० वी० पिल्ले।

इनमेंसे ६ बहनोंकी गोदमें बच्चे थे।

अपराध करके जेल जाना आसान है। निर्दोष होते हुए अपने आपको गिरफ्तार कराना कठिन है। अपराधी गिरफ्तार होना नहीं चाहता, इससे पुलिस उसके पीछे

लगी रहती है और उसे पकड़तो है। पर जो अपनी खुशी और निरपराध होते हुए जेल जाना चाहता है उसको पुलिस तभी पकड़ती है जब वह इसके लिए लाचार हो जाती है। इन वहनोंका पहला यत्न विफल हुआ। उन्होंने बिना परवानके ट्रांसवालमें दाखिल होकर फेरी की, पर पुलिसने उन्हें गिरफ्तार करनेसे इन्कार किया। उन्होंने फ्रीनिखनसे अरिजिया (अरेंज फ्री स्टेट) की सरहदमें बिना अनुमतिके प्रवेश किया। फिर भी किन्नीने उन्हें न पकड़ा। अब स्त्रियोंके सामने यह नवाल खड़ा हो गया कि वह किस तरह अपने आपको गिरफ्तार कराएं। ज्यादा मर्द गिरफ्तार होनेको तैयार नहीं थे और जो थे उनके लिए अपने आपको गिरफ्तार कराना आसान नहीं था।

हमने वह कदम उठानेका निश्चय किया जिसे आखिरके लिए मोच रखा था। यह कदम बड़ा प्रभावकारी सिद्ध हुआ। मैंने सोचा रखा था कि युद्धके अंतिम पर्वमें फिनिकसके अपने ननी सानियोंको होम दंगा। यह मेरे लिए अंतिम त्याग था। फिनिकसमें रहनेवाले मेरे अंतरंग सहयोगी और संबंधी थे। खयाल यह था कि अन्ततः चन्दानेके लिए जितने आदमी चाहिए उतने आदमियों और सोलह बरससे नीचेके लड़के-लड़कियोंको छोड़कर बाकी सबको जेल-यात्राके लिए भेज दें। इनसे अधिक त्याग करनेके साधन मेरे पास नहीं थे। गोखलेको लिखते हुए जिन सोलह आदमियोंका उल्लेख किया था वे इनमें ही थे। इस मंडलीको मरहद लांघ कर ट्रांसवालमें बिना परवानके प्रवेश करनेके अपराधके लिए गिरफ्तार कराना था। डर था कि अगर इस कदमकी बात पहले ही प्रकट कर दी गई तो सरकार उनको नहीं पकड़ेगी। इसलिए दो-चार मित्रोंको छोड़कर और किसीको मैंने यह बात नहीं कनाई थी। मरहद लांघते समय पुलिस-अफसर नवा

नाम-धाम पूछा करता था। इस वक्त उसको नाम-पता न बताना भी हमारी योजनाके अंदर था। पुलिस-अफसरको नाम-धाम न बताना भी एक जुदा अपराध माना जाता था। डर था कि नाम-पता बतानेमें पुलिस यह जान गई कि वे मेरे सगे-सवधियोंसे है तो वह उन्हें गिरफ्तार नहीं करेगी। इससे नाम व ठिकाना न बतानेकी बात सोची गई थी। इस कदमके साथ-साथ उन बहनोंको नेटालमें दाखिल होना था जो ट्रांसवालमें दाखिल होनेका विफल प्रयत्न कर रही थी। जैसे नेटालसे परवानेके बिना ट्रांसवालमें दाखिल होना अपराध था वैसे ही ट्रांसवालसे नेटालमें बिना परवानेके दाखिल होना भी अपराध था। इसलिए हमने तै किया था कि पुलिस इन बहनोंको पकड़े तो ये अपने आपको नेटालमें गिरफ्तार करा दें और न पकड़े तो नेटालके कोयलेकी खानोके केन्द्र न्यूकैसलमें जाकर वहाँके गिरमिटिया मजदूरोंसे खानोसे निकल आनेका अनुरोध करे। इन बहनोंकी मातृभाषा तामिल थी। थोड़ी बहुत हिंदुस्तानी भी आती ही थी। मजदूरवर्गका बड़ा भाग मद्रास इलाकेका और तामिल-तैलंग बोलनेवाला था। उत्तरी हिंदुस्तानवाले भी काफी थे। मजदूर इन बहनोंकी बात सुनकर काम छोड़ दे तो सरकार मजदूरोंके साथ-साथ उन्हें भी गिरफ्तार किये बिना नहीं रहती। इसीसे मजदूरोंमें और ज्यादा जोश पैदा होनेकी पूरी संभावना थी। इस प्रकारकी व्यूह-रचना मनमें करके मैंने उसे ट्रांसवालकी बहनोंको समझा दिया था।

इसके बाद मैं फिनिक्स गया। वहाँ सबके साथ बैठकर बातें की। पहले तो वहाँ रहनेवाली बहनोंके साथ मगबिरा करना था। बहनोंको जेल भेजनेका कदम बड़ा भयानक है। यह मैं जानता था। फिनिक्समें रहनेवाली अधिकांश बहनों गुजराती थी। अतः उन्हें उक्त ट्रांसवालकी बहनोंकी तरह



मुस्तैद या अनुभवों नहीं मान सकते थे। इसके सिवा यह बात भी थी कि उनमेंसे अधिकांश मेरी रिश्तेदार थी। इसलिए हो सकता था कि मेरी लाज रखनेके लिए ही जेल जानेकी बात सोचे और पीछे कसौटीके समय डरकर या जेलमें जानेके बाद वहाँके कष्टसे घबराकर माफी आदि माग लें तो मेरे दिलको गहरा धक्का लगता और लडाईं एकवारगी कमजोर हो जाती। अपनी पत्नीके बारेमें तो मैं निश्चय कर लिया था कि उसको कभी नहीं ललचाऊंगा। उसके मुहसे तो ना निकल ही नहीं सकता। और हा निकले तो उस हाकी भी कितनी कीमत समझू, यह मैं जान न सकता था। मैं समझता था कि ऐसी जोखिमके काममें पत्नी अपनी मर्जीसे जो कुछ करे पतिको वही स्वीकार करना चाहिए और वह कुछ भी कहे तो उसका तनिक भी दुःख नहीं मानना चाहिए। इसलिए यह तै कर लिया था कि उसके साथ इस बारेमें बात ही नहीं करूंगा। दूसरी वहनोंके साथ मैंने बातें की। उन्होंने भी दासबाल-वाली वहनोंकी तरह तुरंत वीडा उठा लिया और जेल जानेको तैयार हो गईं। मुझे इस बातका इतमीनान दिलाया कि कैसे ही कष्ट क्यों न सहने पड़ें, वे अपनी सजाकी मुद्दत पूरी करेगी। पर इस सारी बातचीतका सार मेरी पत्नीने भी जान लिया। उसने मुझसे कहा—“आप मुझे इस बातकी खबर नहीं देते, इसका मुझे दुःख होता है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नहीं जा सकती? मुझे भी वही रास्ता लेना है जिसपर चलनेकी सलाह आप इन वहनोंको दे रहे हैं।” मैंने जवाब दिया—“तुम्हारा दिल दुखानेकी बात मैं सोच ही नहीं सकता। इसमें अविश्वासकी बात नहीं है। मैं तो तुम्हारे जेल जानेसे प्रसन्न ही हूंगा। पर मुझे इसका आभास-तक नहीं होना चाहिए कि तुम मेरे कहनेसे जेल गई हो। ऐसे काम हरएकको अपनी हिम्मतसे ही करना चाहिए। मैं कहूँ

तो मेरी बात रखनेके लिए तुम सहज ही जेल चली जाओगी । पीछे अदालतमें खड़ी होते ही कांपने लगे या हिम्मत हार दो अथवा जेलके कपटोसे कातर हो जाओ तो इसमें तुम्हारा दोष तो मैं मानूंगा, पर मेरी दशा क्या होगी ? मैं तुम्हें किस तरह ग्रहण कर सकूंगा ? दुनियाके सामने कैसे मुह दिखा सकूंगा ? इसी डरसे मैंने तुम्हें जेल जानेको नहीं ललचाया ।” मुझे जवाब मिला—“मैं हिम्मत हारकर चली आऊ तो आप मुझे न अपनाये । मेरे लडके कष्ट सह सकते हैं । आप सब लोग सह सकते हैं और अकेली मैं ही नहीं सह सकती, यह आप कैसे सोच सकते हैं ? मुझे तो इस लड़ाईमें शामिल करना ही होगा ।” मैंने जवाब दिया—“तो तुम्हें शामिल करना ही होगा । मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो । मेरा स्वभाव भी जानती हो । अब भी सोचना-विचारना हो तो सोच-विचार लो और भलीभांति विचार कर लेनेके बाद अगर तुम्हारा दिल कहे कि तुम्हें इसमें शामिल नहीं होना चाहिए तो तुम्हें इसकी आजादी है । और यह भी जान लो कि निश्चय बदलनेमें अभी कोई गर्म भी नहीं ।” जवाब मिला—“मुझे कुछ सोच-विचार करना ही नहीं है । मेरा निश्चय ही है ।”

फिनिक्समें रहनेवाले दूसरे लोगोको भी मैंने स्वतंत्र रीतिसे निश्चय करनेकी सलाह दी थी । लड़ाई थोड़े दिन चले या बहुत दिन, फिनिक्स-आश्रम कायम रहे या जमींदोज हो जाय, जेल जानेवाले तदुरुस्त रहे या बीमार हो जाय, पर कोई पीछे नहीं हट सकेगा, यह शर्त मैंने बार-बार और तरह-तरहसे कहकर समझा दी । सब तैयार हो गये । फिनिक्ससे बाहरके अकेले रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू थे । उनसे यह सारा विचार-विमर्श छिपा रखा जाय, यह नहीं हो सकता था । वह पीछे रहनेवाले आदमी भी नहीं थे । वह जेल हो

भी आये थे, पर फिर जानेका आग्रह कर रहे थे। इस जत्थेमें शामिल होनेवालोंके नाम इस प्रकार हैं

१. सौ० कस्तूर मोहनदास गांधी, २ सौ० जयाकुवर मणिलाल डाक्टर, ३. सौ० काशी छगनलाल गांधी, ४. सौ० सन्तोका मगनलाल गांधी, ५. श्रीपारसी रुस्तमजी जीवन घोरखोद्, ६. श्रीछगनलाल खुशालचंद गांधी, ७. श्रीरावजी भाई मणिलाल पटेल, ८. श्री मगन भाई हरिभाई पटेल, ९ श्री-सालोमन रायपन, १०. भाई रामदास मोहनदास गांधी, ११. भाई राजगोविन्द, १२. भाई शिवपूजन वद्री, १३ गोविंद राजूलू, १४. श्रीकृष्ण स्वामी मुदालियार, १५ भाई गोकुलदास हसराज, १६. रेवाशकर रतनशी सोडा ।  
आगे क्या हुआ यह अगले प्रकरणमें पढ़ियेगा ।

: १६ :

## स्त्रियां जेलमें

इस जत्थेको सरहद पारकर बिना परवानेके ट्रांसवालमें दाखिल होनेके जर्ममें गिरफ्तार होना था। नामोसे पाठक देखेंगे कि उनमें कुछ ऐसे नाम हैं, जो प्रकट हो जाते तो पुलिस जायद उन्हें गिरफ्तार नहीं करती। मेरे विषयमें यही बात हुई थी। एक-दो बार गिरफ्तार करनेके वाद सरहद पार करते वक्त पुलिसने मुझे पकडना छोड़ दिया था। इस जत्थेके कचकी खबर किसीको नहीं दी गई थी। अखबारोंको तो दे ही कैसे सकते थे ? जत्थेके सदस्योंको समझा दिया गया था कि वे पुलिसको भी नाम-धाम न बताए। पूछनेपर उससे कह दें कि हम अदालतमें नाम बतायेंगे।  
पुलिसके सामने ऐसे मामले अकसर आते। अपने आपको

गिरफ्तार करानेके आदी हो जानेके बाद हिंदुस्तानी अकसर मजेके लिए पुलिसको तग करनेकी नीयतसे भी उसको नाम नहीं बताते थे। अतः इस जत्थेके नाम न बतातेमें उसे कोई विचित्रता नहीं जान पड़ी। पुलिसने इस जत्थेको गिरफ्तार किया। मुकदमा चला। सबको तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली।

जो वहने ट्रासवालमे अपने आपको गिरफ्तार करानेके प्रयत्नमे निराश हुई थी वे नेटालकी सरहदमें दाखिल हुई। पुलिसने उन्हें बिना परवानेके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार नहीं किया। यह तै हूआ था कि पुलिस उन्हें न पकड़े तो वे न्यूकैसल जाकर पडाव करे और कोयलेकी खानोके हिंदुस्तानी मजदूरोंसे अपना काम छोड देनेकी विनती करे। न्यूकैसल नेटालमे कोयलेकी खानोंका केन्द्र है। इन खानोंमें मुख्यतः हिंदुस्तानी मजदूर ही काम करते थे। वहनोने अपना काम शुरू किया। उसका असर बिजलीकी तरह फैल गया। तीन पीटके करकी कहानी उन्होंने सुनी तो उनपर गहरा असर हुआ। उन्होंने अपना काम छोड दिया। मुझे तार मिला। मैं खुश हुआ, पर इतना ही घबराया भी। मुझे क्या करना है? इस अद्भुत जागरणके लिए मैं तैयार नहीं था। मेरे पास पैसा नहीं था; न इतने आदमी थे जो इस कामको संभाल लें। अपना फर्ज मैं समझता था। मुझे न्यूकैसल जाना और जो कुछ हो सके वह करना था। मैं उठा और चल दिया।

सरकार अब इन बहादुर ब्रह्मोको क्यों छोडने लगी? वे गिरफ्तार हुईं। उन्हें भी वही सजा मिली जो फिनिक्सवाले जत्थेको मिली थी—तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैद और उसी जेलमे रखी गई।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय अब जागे। उनकी नींद टूटी। उनमे नई चेतना आई जान पड़ी। पर वहनोके

बलिदानने हिंदुस्तानको भी जगाया। सर फीरोजशाह मेहता अबतक तटस्थ थे। १९०१ में उन्होंने मुझे कड़े शब्दोंमें चेतावनी देकर दक्षिण अफ्रीका न जानेको समझाया था। उनका मत मैं पहले बता चुका हूँ। सत्याग्रहकी लड़ाईका भी उनपर थोड़ा ही असर हुआ था। पर स्त्रियोकी कैदने उनपर जादूका-सा असर डाला। बंबईके टाउनहालमें भाषण देते हुए उन्होंने खुद कहा कि स्त्रियोकी जेल-यात्राने मेरी छाति भग कर दी। हिंदुस्तानसे अब चुप बैठे नहीं रहा जा सकता।

बहनोंकी वहादुरीके क्या कहने। सभी नेटालकी राजधानी मारित्सबर्गमें रखी गई। यहा उन्हें काफी कष्ट दिया गया। खराकमें उनका जरा भी खयाल नहीं रखा गया। काम उन्हें कपड़े धोनेका दिया गया। बाहरसे खाना भेजनेकी सख्त मनाही लगभग आखिरतक रही। एक बहनने एक विशेष प्रकारके भोजनका ही व्रत ले रखा था। बड़ी कठिनाईसे उसे वह भोजन देनेका निश्चय हुआ। पर वह ऐसा होता था कि गलेसे उतारा न जा सके। उसे जैतूनके तेलकी खास जरूरत थी। पहले तो वह मिला ही नहीं। फिर मिला भी तो वरसोका पुराना और बदबूदार। अपने खर्चसे मंगानेकी प्रार्थना की गई तो जवाब मिला—“यह कोई होटल नहीं है। जो मिले वह खाना होगा।” यह बहन जब जेलसे निकली तो देहमें ठठरी भर रह गई थी। महाप्रयाससे जान बची।

एक दूसरी बहन भयंकर ज्वर लेकर निकली। उस ज्वरने रिहाई (२२ फरवरी १९१४) के बाद कुछ ही दिनोंमें उसे प्रभुके पास पहुंचा दिया। उसको मैं कैसे भूल सकता हूँ? वलियम्मा सोलह सालकी लडकी थी। मैं जब उसको देखने गया तो वह खाटपर पड़ी थी। लंबे कदकी होनेसे उसकी लकड़ी-जैसी देह डरावनी लगती थी।

मैंने पूछा "वल्लिअम्मा, जेल जानेका पछतावा तो नहीं हो रहा है न ?"

"पछतावा क्यों होगा ? मुझे तो फिर गिरफ्तार करे तो इस वक्त भी जेल जानेको तैयार हूँ।"

"पर उसका फल मृत्यु हो तो ?"

"हुआ करे । देशके लिए मरना किसे न भायेगा ?"

इस बातचीतके कुछ ही दिन बाद वल्लिअम्मा स्वर्ग सिधारी । उसकी देह गई, पर यह बाला अपना नाम अमर कर गई है । वल्लिअम्माकी मृत्युके बाद जगह-जगह शोक प्रकाश करनेवाली सभाएँ हुईं और कौमने इस पवित्र वहनकी स्मृति-रक्षाके लिए 'वल्लिअम्मा हाल' के नामसे एक सभा-भवन बनानेका निश्चय किया । यह हाल बनानेके धर्मका कौमने अबतक पालन नहीं किया । उसमें अनेक विघ्न आये । कौमने फूट पड़ी । मुख्य कार्यकर्ता एकके पीछे एक छोड़कर चले गये । पर पत्थर-चूनेका हाल बने या न बने, वल्लिअम्माकी सेवाका नाश नहीं हो सकता । इस सेवाका हाल तो वह अपने हाथों ही निर्माण कर गई है । उसकी मूर्ति आज भी बहुतसे हृदय-मदिरामें विराजती है और अबतक भारतवर्षका नाम है तबतक दक्षिण अफ्रीकाके इतिहासमें वल्लिअम्माका नाम भी अमर रहेगा ।

इन वहनोका बलिदान विशुद्ध था । ये बेचारी कानून-कायदेकी बारीकियोंको नहीं जानती थीं । उनमें बहुतोंको देशकी कल्पना नहीं थी, उनका देशप्रेम केवल श्रद्धापर अवलंबित था । उनमें अनेक निरक्षर थीं, इसलिए अस्ववार पढ़ना कहाँसे जानती ? पर वे इतना जानती थीं कि कौमके मानरूपी वस्त्रका हरण हो रहा है । उनका जेल जाना उनका आर्त-नाद था । शुद्ध यज्ञ था । ऐसी हृदयकी प्रार्थनाको प्रभु सुनते हैं । यज्ञकी सफलता उसकी उसी शुद्धतापर आश्रित होती है । भगवान भावके भूखे हैं । भक्तिपूर्वक अर्थात् निस्स्वार्थ-

बुद्धिसे अर्पित-पत्र, पुष्प या जलको वह सप्रेम स्वीकार करते हैं और उसका करोड़ गुना फल देते हैं। सुदामाके मुट्ठीभर चावलकी भेटसे उसकी बरसोकी भूख भाग गई। वह तोके जेल जानेका चाहे कोई फल न हो, पर एक ही शुद्ध आत्माका भक्तिपूर्वक किया हुआ आत्मार्पण कभी निष्फल नहीं होता। दक्षिण अफ्रीकामे किस-किसका यज्ञ फला इसे कौन जानता है? पर इतना हम जानते हैं कि वलिअम्माका यज्ञ तो सफल हुआ ही। दूसरी वहनोका यज्ञ भी जरूर सफल हुआ।

स्वदेश-यज्ञमें, जगत-यज्ञमें असह्य आत्माओका होम हो चुका है, हो रहा है और होगा। यही यथार्थ है; क्योंकि कोई नहीं जानता कि कौन शुद्ध है। पर सत्याग्रही इतना तो समझ ही रखे कि उनमें एक भी शुद्ध हो तो उनका यज्ञ फल उपजानेके लिए काफी है। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। असत्—असत्य अर्थात् नहीं, सत्—सत्य अर्थात् है। जब असत्का अस्तित्व ही नहीं है तब उसकी सफलता क्या होगी? और जो है, उसका नाश कौन कर सकनेवाला है? इतनेहीमे सत्याग्रहका सम्पूर्ण शास्त्र समाया हुआ है।

: १७ :

### मजदूरोकी धारा

वहनोके इस त्यागका असर मजदूरोपर अद्भुत हुआ। न्यूकैसलके नजदीकी खानोके मजदूरोने अपने आजार फेंक दिये। उनकी धारा नगरकी ओर बह चली। खबर मिलते ही मैंने फिनिक्स छोडा और न्यूकैसलके लिए रवाना हो गया। इन मजदूरोका अपना घर नहीं होता। मालिक ही उनके लिए घर बनवाते हैं। उनकी सबको-गलियोंमें लैम्प

लगवाते हैं। मालिक ही उनको पानी भी देते हैं। अर्थात् मजदूर हर तरह पराधीन होते हैं और जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है :

“पराधीन सपनेहुं सुख वाहीं”

ये हड़तालकी मेरे पास अनेक प्रकारकी शिकायतें लाने लगे। कोई कहता—“मालिक रास्तेपरकी रोशनी बंद कर रहे हैं।” कोई कहता—“पानी बंद कर रहे हैं।” कोई कहता—“वे हड़तालियोंका सामान कोठरियोंसे बाहर निकालकर फेंके दे रहे हैं।” एक पठान सैयद इब्राहीमने अपनी पीठ दिखाकर कहा—“यह देखो, मुझे कैसा मारा है ! मैंने आपके लिए वदमासको छोड़ दिया है। आपका यही हुक्म है। मैं पठान हूं और पठान कभी मार खाता नहीं, मार भारता है।”

मैंने जवाब दिया—“भाई, तुमने बहुत ही अच्छा काम किया। इसीको मैं सच्ची बहादुरी कहता हूं। तुम जैसे लोगोंसे ही हम जीतेगे।”

मैंने यों म्बारकबादी तो दी, पर दिलमें सोचा कि बहुतोंपर ऐसी बीती तो हड़ताल नहीं चलेगी। मारको छोड़ दें तो मालिकोंकी शिकायत किस बातकी करें ? हड़ताल करनेवालोंकी रोशनी-पानी आदिकी सुविधाएँ मालिक बंद कर दें तो इसमें शिकायतके लिए अधिक स्थान नहीं। पर हो या न हो, लोग ऐसी स्थितिमें कैसे निभा सकते हैं ? मुझे कोई उपाय सोच लेना ही होगा। अथवा लोग थककर कामपर वापस जायं इससे तो यही अच्छा है कि वे अपनी हार कबूल कर लें और कामपर लौट जाएं। पर लोग मेरे मुंहसे ऐसी सलाह हरगिज न सुनेंगे। तब एक ही रास्ता था : मजदूर मालिकोंकी कोठरियां खाली कर दें, यानी ‘हिजरत’ करे।

मजदूर दस-बीस नहीं थे, सकड़ों थे। हजारों होते भी धेर न लगती। उनके लिए मकान कहाँसे पैदा करें ? खाना



कहासे लाऊ ? हिंदुस्तानसे पैसा मगाना नहीं था। वहासे पैसेका जो मेंह बरसा वह अभी आरभ नहीं हुआ था। भारतीय व्यापारी इतना डर गये थे कि वे मुझे खुले तौरपर कोई मदद देनेको तैयार नहीं थे। उनका व्यापार खान-मालिको और दूसरे गोरोंके साथ था। इसलिए वे खुले तौरपर मेरा साथ कैसे देते ? जब कभी मैं न्यूकैसेल जाता, उन्हीके यहा उतरता था। इस बार मैंने खुद ही उनका रास्ता आसान कर दिया, दूसरी ही जगह उतरनेका निश्चय किया।

मैं बता चुका हू कि जो वहाँ ट्रांसवालसे आई थी वे द्राविड प्रदेशकी थी। वे एक द्राविड कुटुंबके यहा, जो ईसाई था, ठहरी थी। यह कुटुंब मध्यम स्थितिका था। उसके पास जमीनका एक छोटा-सा टुकड़ा और दो-तीन कमरोका मकान था। मैंने यही उतरनेका निश्चय किया। घरके मालिकका नाम लाजरस था। गरीबको किसका डर हो सकता है ? ये लोग मूलत एक गिरमिटिया कुटुंबके थे। इसलिए उन्हे और उनके स्वजनोको भी तीन पौंडका कर देना होता। गिरमिटियोके कष्टोकी पूरी जानकारी उन्हे होनी ही चाहिए थी और उनके साथ हमदर्दी भी पूरी होनी चाहिए थी। इस कुटुंबने मेरा सहर्ष स्वागत किया। मुझे मेहमान बनाना मित्रोंके लिए कभी आसान तो रहा ही नहीं, पर इस वक्त मेरा स्वागत करना आर्थिक नाशका स्वागत करना था और गायद जेलका स्वागत करना भी होता। ऐसे धनिक व्यापारी थोड़े ही हो सकते थे जो अपने आपको ऐसी स्थितिमे डालनेको तैयार हो। अत मैंने अपनी और उनकी मर्यादा समझकर तै किया कि मुझे उनको कठिनाईमें नहीं डालना चाहिए। लाजरस बेचारेको थोड़ी-सी तनख्वाह खोनी पडती तो वह खो देता। उसे कोई जेल ले जाय तो वह चला जाता। पर अपनेसे भी ज्यादा गरीब गिरमिटियोका कष्ट वह कैसे

अनुद्विग्न चित्तसे सहन करता ? इसने देखा कि ट्रांसवालकी वहने जो उसीके यहां टिकी हुई थी, गिरमिटियोंकी मदद करने जाकर जेलखाने पहुंच गई। भाई लाजरसने सोचा कि उनके प्रति उसका भी कुछ फर्ज है और मुझे आश्रय दे दिया। उसने मुझे आश्रय तो दिया ही, साथ ही अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। मेरे उसके यहां जानेके बाद उसका घर धर्मशाला बन गया। सैकड़ों आदमी और हर तरहके आदमी चाहे जब आते और जाते। उसके घरके आसपासकी जमीन आदमियोंसे खचाखच भर गई। उसका चल्हा चौबीसो घंटे जला करता। उसकी धर्मपत्नीको इसमें जी-तोड़ मेहनत करनी पडती। फिर भी पति-पत्नी दोनोंके चेहरे हर वक्त हँसते रहते। उनकी मुस्काहृतिमें मैंने कभी अप्रसन्नता नहीं देखी।

पर गरीब लाजरस क्या सैकड़ों मजदूरोको खिला सकता था ? मजदूरोको मैंने सुना दिया कि उन्हें अपनी हडतालको स्थायी चीज समझकर मालिकोंके दिये हुए भोंपड़े खाली कर देने चाहिए। जो चीजे बिक सकती हों बेच डालो, बाकी सामानको कोठरीमें पडा रहने दो। मालिक उसको हाथ नहीं लगायेंगे। पर और बदला चुकानेके लिए वे उसे उठाकर फेंक दे तो मजदूरोको यह जोखिम भी उठानी होगी। मेरे पास वे पहननेके कपड़े और ओढनेके कवलेके सिवा और कोई भी चीज न लाये। जबतक हडताल चलती रहेगी और जबतक वे जेलके बाहर रहेंगे तबतक मैं उन्हीके साथ रहूंगा और खाऊंगा-पिऊंगा। इन शर्तोंके साथ वे खानोसे बाहर निकल आये तभी वे टिक सकते हैं और कौमकी जीत हो सकती है। जिसमें इसकी हिम्मत न हो वह अपने कामपर लौट जाय। जो कामपर वापस जाय, उसका कोई तिरस्कार न करे, उसको तंग न करे। इन शर्तोंको माननेसे किसीने इन्कार किया हो

इसकी याद मुझे नहीं है । जिस दिन मैंने कहा उसी दिनसे हिंजरत करनेवालो—गृहत्यागियोंका ताता लग गया । सब अपने वीवी-वच्चोको साथ लिए सिरपर कपडोकी गठरी रखे पहुंचने लगे । मेरे पास घरके नामपर तो सिर्फ खली जमीन थी । सौभाग्यवश उस मौसममे न वर्षा हो रही थी और न ठंड ही पड रही थी ।

मेरा विस्वास था कि भोजनका भार उठानेमे व्यापारी-वर्ग पीछे न रहेगा । न्यूकैसेलके व्यापारियोंने पकानेके लिए वरतन दिये और चावल-दालके बारे भेजे । दूसरे स्थानोसे भी दाल, चावल, सब्जी, मसाले आदिकी वर्षा होने लगी । जितनेकी आशामें रखता था उससे कही अधिक ये चीजें मेरे पास आने लगीं । सब जेल जानेको तैयार न हो; पर सबकी हमदर्दी तो थी ही । सब इस यज्ञमें यथाशक्ति सहायताके रूपमे अपना भाग अर्पण करनेको तैयार थे । जो कुछ देने लायक न थे उन्होने अपनी सेवा देकर मदद की । इन अनजान अपढ आदमियोंको सम्हालनेके लिए जाने-पहचाने हुए और समझदार स्वयसेवक तो दरकार थे ही । वे मिल गये और उन्होने अमूल्य सहायता की । उनमेंसे बहुतेरे तो गिरफ्तार भी हुए । यो सबने यथाशक्ति सहायता की और हमारा रास्ता आसान हो गया ।

आदमियोंकी भीड बढ़ने लगी । इतने बडे और लगातार बढ़ते जानेवाले मजदूरोके मजमेको एक ही स्थानमे बिना किसी काम-धंधेके समेट रखना नामुमकिन नहीं तो खतरनाक जरूर था । उनकी शौच आदिकी आदत तो सुथरी होती ही नहीं थी । इस समुदायमे कितने ही ऐसे थे जो अपराध करके जेल भी हो आये थे । कोई हत्याका अपराधी था, कोई चोरीके जुर्ममे कैदकी सजा भुगतकर छूटा था, कोई व्यभिचारके अपराधमें जेल काटकर आया था । हडताली मजदूरोमे नीतिका भेद मेरे किये नहीं हो सकता था । भेद करू भी

तो अपना भेद मुझे कौन बतलाता ? मैं काजी बन बैठूँ तो विवेकहीन बनूँ । मेरा काम केवल हडताल चलाना था । इसमेंदू सरे सुवारोको मिलाना मुमकिन नहीं था । छावनी-में नीतिका पालन करना मेरा काम था । आनेवाले पहले कैसे थे, इसकी जाच करना मेरा फर्ज नहीं था । यह गिवकी वरात एक जगह जमकर बैठ जाय तो अपराध होना निश्चित था । अचरजकी बात तो यह थी कि जितने दिन मैंने यहाँ बिताये वे शातिसे बीते । सब लोग ऐसी शातिसे रहे मानों उन्होंने अपना आपद्धर्म समझ लिया हो ।

मुझे उपाय सूझा . इस दस्तेको ट्रांसवाल ले जाऊँ और जैसे पहलेके १६ आदमी गिरफ्तार हो गये वैसे इन्हे भी जेलमें बिठा दूँ । इन लोगोको छोटे-छोटे जत्थोंमें बाँटकर उनसे सरहद पार कराऊँ । यह विचार ज्योंही मनमें आया त्योंही उसे रद्द कर दिया । इसमें बहुत वक्त जाता और सामुदायिक कार्यका जो असर होता वह छोटे-छोटे जत्थोंके जेल जानेका न होता ।

मेरे पास कोई पाँच हजार आदमी इकट्ठा हुए होंगे । इन सबको ट्रेनसे नहीं ले जा सकता था । इतना पैसा कहासे लाऊँ ? और इसमें लोगोकी परीक्षा भी नहीं हो सकती थी । न्यूकैसेलसे ट्रांसवालकी सरहद ३६ मील थी । नेटालका सरहदी गाँव चाल्सट्राउन था, ट्रांसवालका वाक्सरस्ट । अंतमें मैंने पैदल यात्रा करनेका ही निश्चय किया । मजदूरोंके साथ मशविरा किया । उनके साथ स्त्रियाँ, बच्चे आदि थे । अतः कुछने आनाकानी की । मेरे पास दिल कड़ा करनेके सिवा दूसरा उपाय ही नहीं था । मैंने लोगोसे कह दिया कि जिसे खान-पर वापस जाना हो वह जा सकता है । पर कोई वापस जानेको तैयार न था । जो लोग अपंग थे उन्हें ट्रेनसे भेजनेका निश्चय किया । दाकीके सब लोगोंने कहा कि हम पैदल चलकर

चार्ल्सटाउन जानेको तैयार है । यह मजिल दो दिनमें पूरी करनी थी । अंतमें सभी इस निश्चयमें प्रसन्न हुए । लोगोंने यह भी समझा कि इससे बेचारे लाजरस-परिवारको कुछ राहत मिलेगी । न्यूकैसलके गोरोंको प्लेग फैलनेका डर लग रहा था और उसके प्रतीकारके लिए अनेक उपाय करनेकी बात सोच रहे थे । वे भयमुक्त हुए और उनकी कारवाइयोंके टरसे हम भी मुक्त हुए ।

इस कूचकी तैयारी चल रही थी कि मुझे खानमालिकोसे मिलनेका बुलावा आया । मैं डरबन गया; पर इस कहानीका उल्लेख पृथक् प्रकरण में करूंगा ।

: १८ :

### खानमालिकोंके पास और उसके बाद

खानमालिकोंके बुलावेपर मैं उनसे मिलने डरबन गया । मैंने समझा कि मालिकोंपर कुछ असर हुआ है । इस बातचीतसे कुछ मिलेगा यह आशा तो मैं नहीं रखता था । पर सत्याग्रहीकी नम्रताकी कोई हद नहीं होती । वह समझौतेके एक भी अवसरको जाने नहीं देता । इससे कोई उसको डरपोक माने तो वह अपने आपको डरपोक मानने देता है । जिसके हृदयमें विश्वास और निश्चिन्तासे उपजनेवाला बल है वह दूसरोंकी अवगणनाकी परवा नहीं करता । वह अपने अन्तर्बलका भरोसा रखता है । इससे सबके सामने नम्र रहकर वह जगतके जनमतको जगाता और अपने कार्यकी ओर खींचता है ।

इससे मुझे मालिकोंका निमन्त्रण स्वागत करने योग्य जान पड़ा । मैं उनके पास पहुंचा । मैंने देखा कि हवामें गर्मी है । मुझसे स्थिति समझनेके बदले उनके प्रतिनिधियोंने मुझसे

जिरह शुरू कर दी। मैंने उसको मुनासिब जवाब दिये। मैंने कहा—“यह हड़ताल बंद कराना आपके हाथमें है।”

उनकी ओरसे जवाब मिला—“हम कोई अधिकारी नहीं हैं।”

मैंने कहा—“आप अधिकारी नहीं हैं, फिर भी बहुत कुछ कर सकते हैं। आप मजदूरोंका केस लड़ सकते हैं। आप सरकारसे तीन पौडका कर उठा देनेकी मांग करे तो मैं यह नहीं मानता कि वह उसे नार्मजर करेगी। आप दूसरोका मत, अपने अनुकूल बना सकते हैं।”

“पर सरकारके लगाये हुए करके साथ हड़तालका क्या सबब ? मालिक मजदूरोंको कष्ट देते हो तो आप उनसे बाकायदा आवेदन करे।”

“मजदूरोंके पास हड़ताल करनेके सिवा इसका रास्ता मुझे नहीं दिखाई देता। तीन पौडका कर भी मालिकोंकी खातिर ही लगाया गया है। मालिक मजदूरोंकी मेहनत चाहते हैं, पर उनकी आजादी नहीं चाहते। इससे इस करको दूर करानेके लिए मजदूरोंके हड़ताल करनेमें मैं कुछ भी अनीति या मालिकोंके प्रति अन्याय नहीं देखता ?”

“तो आप मजदूरोंसे कामपर वापस जानेको नहीं कहेंगे ?”

“मैं लाचार हूँ।”

“आप इसका नतीजा जानते हैं ?”

“मैं सावधान हूँ। अपनी जिम्मेदारीका मुझे पूरा खयाल है।”

“वेगळ, इसमें आपका जाता ही क्या है ? पर इन वहकामे हुए मजदूरोंकी जो हानि होगी वह क्या आप भर देंगे ?”

“मजदूरोंने सोच-समझकर और अपने नुकसानको जानते-समझते हुए यह हड़ताल की है। मनुष्यके लिए आत्म-मम्मानकी हानिसे बड़ी हानि मैं सोच ही नहीं सकता। मजदूरोंने इस बातको समझ लिया है, इसका मुझे संतोह है।”

इस तरहकी वातचीत हुई। पूरी वातचीत मुझे इस वक्त याद नहीं आ सकती। जो बातें याद रह गई हैं उन्हें थोड़ेमें दे दिया है। मैं इतना जान सका कि मालिकोंको अपना पक्ष पंगु जान पड़ा; क्योंकि सरकारके साथ उनकी वात-चीत पहलेसे चल रही थी।

डर्बन जाते और वहासे लौटते हुए मैंने देखा कि रेलवेके गाड़ों आदिपर इस हड़ताल और हड़तालियोंकी शांतिका बहुत अच्छा असर हुआ। मेरा सफर तो तीसरे ही दरजेमें चल रहा था। पर वहां भी गाड़ आदि रेलकर्मचारी मुझे घेर लेते, दिलचस्पीभरे आग्रहके साथ हमारी लड़ाईके समाचार पछते और सब हमारी विजय मनाते। मुझे अनेक प्रकारके छोटे-मोटे सुभीते कर देते। उनके साथ अपना सवध मैं निर्मल रखता। एक भी सुभीतेके लिए मैं उन्हें लालच न देता। अपनी इच्छासे वे भलमनसी बरते तो मुझे उससे प्रसन्नता थी, पर भलमनसी खरीदनेकी कोशिश कभी नहीं की। गरीब, अपढ़, नासमझ इतनी दृढ़ता दिखायें यह उनके लिए अचभेकी बात थी, और दृढ़ता तथा वीरता ऐसे गुण हैं जिनकी छाप विरोधीपर पड़े बिना नहीं रहती।

मैं न्युक्सेल लौटा। मजदूरोंकी धारा तो चली ही आ रही थी। उनको सारी बातें वारीकीके साथ समझा दी। यह भी कह दिया कि आप लोग कामपूर वापस जाना चाहते हो तो जा सकते हैं। मालिकोंकी घमकीकी बात भी बताई और भविष्यमें जो जोखिम उठानी थी उनका वर्णन भी कर दिया। कह दिया कि लड़ाई कब खतम होगी यह भी नहीं कहा जा सकता। जेलके कष्ट समझा दिया। फिर भी मजदूर अडिग रहे। "जबतक आप लडनेको तैयार होंगे तबतक हम हिम्मत हारनेवाले नहीं। हमें कष्ट सहनेका अभ्यास है। आप हमारी चिंता न करे।" यह निर्भय जवाब मुझे उनसे मिला।

मेरे लिए तो अब कूच करना ही बाकी रह गया था। एक दिन शामको लोगोसे कह दिया कि उन्हें अगले दिन भोरमे कूच शुरू करनी होगी (२८ अक्टूबर १९१३)। रास्तेमे जिन नियमोका पालन करना था वे सुना दिये गये। ५-६ हजारके सजमेको सम्हालना ऐसी-वैसी बात नहीं थी। उनकी गिनती तो मेरे पास थी ही नहीं, न था नाम-बाम। जो रह गये सो रह गये। उतनेहीको अपने लिए काफी मान लिया। रास्तेके लिए हरएकको तीन पाव रोटी (डेढ़ पाँड) और आधी छटांक शक्करके सिवा और कोई खुराक देनेकी गुजाइश नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह कह दिया था कि हिंदुस्तानी व्यापारी अगर रास्तेमे कुछ देगे तो वह ले लूंगा। पर लोगोको रोटी और शक्करसे ही संतोष करना था। बीअर-मुद्ध और जुलू-बगावतमे मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ था वह इस वक्त बहुत काम आया। जरूरतसे ज्यादा कपड़े साथ न रखनेकी शर्त तो थी ही। रास्तेमे कोई किसीका माल न ले, कोई सरकारी कर्मचारी या यूरोपियन मिले और गाली दे या मारे भी तो बर्दाश्त कर ले, पुलिस गिरफ्तार करे तो गिरफ्तार हो जाय। मैं गिरफ्तार कर लिया जाऊ तो भी कूच जारी रहे आदि बातें समझा दी। मेरे स्थानपर एक्के बाद दूसरे कौन लोग नियुक्त होगे यह भी बता दिया।

लोगोने सब बातें समझ ली। काफला सहीसलामत चार्ल्सटाउन पहुंचा। वहाँके व्यापारियोने हमारी खूब मदद की। अपने मकानोको काममें लाने दिया। मस्जिदके सहनमें खाना पकानेकी इजाजत दे दी। कूचके वक्त जो खुराक दी जाती वह पहावपर पहुंचनेतक चूक जाती। इसलिए हमें खाना पकानेके बरतन भी चाहिए थे। व्यापारियोने उन्हें भी खूबीसे हाजिर कर दिया। चावल आदि तो हमारे पास काफी हो गया था। व्यापारियोने इसमे भी अपना हिस्सा दिया।



चार्ल्सटाउन छोटा-सा गांव कहा जा सकता है। इस वक्त उसमें मुश्किलसे एक हजारकी आबादी रही होगी। उसमें इतने आदमियोंका समावेश कर लेना कठिन था। स्त्रियो और बच्चोंको ही मकानोंमें रखा। बाकी सबको मैदानमें ही ठहराया।

यहांकी मधुर स्मृतियां कितनी ही हैं। कुछ कड़वी भी हैं। मधुर स्मरण मुख्यतः चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य-विभाग और उसके अधिकारी डाक्टर ब्रिस्कोके हैं। गांवकी आबादी इतनी बढ़ी हुई देखकर वह घबरा गये; पर कोई कडा उपाय करनेके बजाय मुझसे ही मिले। कुछ सुझाव पेश किये और मेरी मदद करनेकी भी बात कही। यूरोपके लोग तीन बातोंका खास तौरसे खयाल रखते हैं—हम नहीं रखते—पानीकी सफाई, रास्तेकी सफाई और पाखानेकी सफाई। मुझे यह करना था कि रास्तेपर पानी न गिराने दू, जहां-तहां लोगोंको पेशाब न करने दू और कहीं कूड़ा-करकट न फेंकने दू। वह जहां बतायें वही लोगोंको टिकाऊ और उस स्थानकी सफाईके लिए अपने आपको जिम्मेदार समझू। इन सारी सुचनाओंको मैंने धन्य-वाद-सहित स्वीकार किया। मुझे पूरी शांति हो गई।

अपने देशवासियोंसे इन नियमोंका पालन कराना बहुत ही कठिन काम है। पर मजदूर भाइयों और साथियोंने उसे आसान कर दिया। मेरा सदा यह अनुभव रहा है कि सेवक सेवा करे और हुकम न चलाये तो बहुत काम हो सकता है। सेवक खुद अपनी देहको काममें लगाये तो दूसरे भी लगायेंगे। इसका पूरा अनुभव मुझे इस छावनीमें हुआ। मैं और मेरे साथी झाड़ लगाना, मैला उठाना आदि काम करते तनिक भी नहीं हिचकते थे। इससे लोगोंने ये काम उत्साहसे उठा लिये। यदि हम ऐसा न करते तो हुकम किस पर चलाते? सब सरदार बनकर दूसरोंपर हुकम चलायें तो अतर्क काम पडा ही रह

जाता । पर जहाँ सरदार खुद ही सेवक बन जाय वहाँ दूसरे सरदारीका दावा कैसे कर सकते हैं ?

साथियोंमें केलनवेक पहुंच गये थे । मिस इलेजिन भी उपस्थित हो गई थी । इस वहनकी श्रमशीलता, सजग चिन्ता और सचाईकी जितनी भी सराहना करूं कम होगी । हिंदुस्तानियोंमें स्वर्गीय पी. के. नायडू और अलबर्ट क्रिस्टोफरके नाम तो मुझे इस वक्त याद आ रहे हैं । दूसरे भी थे जिन्होंने भरपूर मेहनत की और अच्छी सहायता की ।

भोजनमें चावल और दाल दी जाती । सब्जी हमारे पास काफी जमा हो गई थी, पर उसको अलग पकानेका सुभीता नहीं था । इसलिए दालमें ही डाल दी जाती । अलग पकानेकी समय न मिलता, इतने बरतन भी नहीं थे । रसोईमें चौबीसो घंटे चूल्हा जला रहता; क्योंकि चाहे जिस वक्त भूखे-प्यासे लोग आ पहुंचते । न्यूकैसेलमें किसीको रहना नहीं था । सबको रास्तेकी खबर थी । इसलिए खानसे निकलकर वे सीधे चार्ल्स-ट्राउन पहुंचते ।

मनुष्योंके धीरज और सहनशीलताका विचार करता हू तो भावनाकी महिमा मेरे सामने मूर्तिमान् होकर खड़ी हो जाती है । भोजन पकानेवालोंमें मुखिया मैं था । कभी दालमें पानी ज्यादा हो जाता तो कभी वह कच्ची रहती । कभी तरकारी पकी न होती तो कभी भात ही कच्चा रह जाता । ऐसा भोजन प्रसन्न चित्तसे ग्रहण कर लेनेवाले मैंने दुनियामें अधिक नहीं देखे हैं । इमका उलटा दक्षिण अफ्रीकाकी जेलमें यह अनुभव भी हुआ कि खाना जरा कम, या कच्चा होने या जरा देरसे मिलनेपर सुगिञ्जित माने जानेवालोका भी पारा चढ़ जाता था ।

परसनेका काम पकानेसे भी अधिक कठिन था और वह मेरे ही जिम्मे था । कच्चे-पक्केका हिसाव तो मुझे देना ही

होता। भोजन कम हो और खानेवाले ज्यादा हो जायं तो थोड़ा देकर सबका सतोष कराना भी मेरा ही कर्तव्य होता। वहनोके सामने मैं थोड़ा खाना रखता तो क्षणभर मेरी ओर डाटनेकी निगाहसे देखती और फिर मेरी स्थिति समझकर हँसते हुए चल् देती। वह दृश्य मुझे जिदगीभर भूलनेका नहीं। मैं कह देता कि मैं लाचार हूँ। मेरे पास पका हुआ भोजन थोड़ा है और खानेवाले बहुत हैं। इसलिए मुझको उतना ही देना होगा कि सभी को थोड़ा-थोड़ा मिल जाय। इसपर वे स्थितिको समझ जाती और 'सन्तोषम्' कहकर हँसते हुए चल् देती।

ये सब तो मधुर स्मरण हुए। कड़वे स्मरण ये हैं कि लोगोको थोड़ी फुरसत मिली तो उसका उपयोग आपसके झगड़े-टटमें होने लगा। इससे भी बुरी बात यह हुई कि व्यभिचारकी घटनाएं हुईं। स्त्री पुरुषोको साथ तो रखना ही पडता। मीड भी वैसी ही थी, व्यभिचारीको शर्म क्यों आने लगी? ये घटनाएं ज्योंही घटित हुईं मैं मौकेपर जा पहुँचा। अपराधी शर्मिये। उनको अलग रखा। पर जो मेरे कानतक नहीं पहुँची, ऐसी घटनाएं कितनी हुईं होंगी, यह कौन कह सकता है? इस विषयका अधिक विस्तारसे वर्णन करना बेकार है। इतना यह जतानेके लिए लिख दिया कि सब कुछ आसान नहीं था और ऐसी घटनाएं घटित हुईं तब भी किसीने मेरे साथ उजडुपनका बरताव नहीं किया। नीति-अनीतिका भेद अधिक न जाननेवाले जंगली जैसे लोग भी अच्छे वातावरणमे कैसे सीधे चलते हैं, इसे मंने अनेक अवसरोपर देख लिया है और इसे जान लेना अधिक आवश्यक और लाभदायक है।

: १६ :

दासबालमें प्रवेश—१

अब हम १९१३के नवंबर महीनेके आरंभमें हैं । कूच करनेके पहले दो घटनाओंका उल्लेख कर देना उचित होगा । त्यकसेलमे द्राविड़ वहनोको जेलकी सजा मिली तो डर्वनकी बाईं फातिमा महलावसे न रहा गया । इसलिए वह भी अपनी मां हनीफा बाईं और ७वरसके लड़के के साथ जेल जानेको निकल पड़ी । मां-बेटी तो पकड़ ली गईं, परं बेटेको गिरफ्तार करनेसे सरकारने साफ इन्कार कर दिया । पुलिसने फातिमा बाईंकी उंगलियोंकी निशानी लेनेकी कोशिश की, परं वह निडर रही और उंगलियोंकी निशानी नहीं दी ।

इस वक्त हड़ताल पूरे जोरमें चल रही थी । उसमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियां भी आकर शामिल हो रही थी । दो स्त्रियोंकी गोदमें बच्चे थे । एक बच्चेको कूचमें सर्दी लग गई और वह मौतकी गोदमें चला गया । दूसरा बच्चा एक नालेको लांघते हुए माकी गोदसे गिर गया और प्रवाहमें वहकर डूब गया; परं वीर माताने दिल छोटा नहीं किया । दोनोंने कूच जारी रखी । एकने कहा—“हम मरे हुएका शोक करके क्या करेगी ? वे कहीं लौटकर आ सकते हैं ? जीवितोंकी सेवा करना हमारा धर्म है ।” ऐसी गांत वीरता, ईश्वरमें ऐसी दृढ-आस्था, ऐसे ज्ञानकी मिसाले गरीबोंमें मुझे अकसर मिली है ।

ऐसी ही दृढतासे चार्ल्सटाउनमें स्त्री-पुरुष अपने कठिन धर्मका पालन कर रहे थे । परं हम यहां कुछ शांतिके लिए नहीं आये थे । शांति जिसे दरकार हो वह उसे अपने अंतरमें प्राप्त करे । बाहर तो जहां देखो और देखना आता हो तो “यहां शांति नहीं मिलती” की ही तख्तिया लगी दिखाई देगी ।

पर इसी अशांतिके बीच मीरावाइ-सरीखी भक्त हाथमें जहरका प्याला लेकर हँसते हुए मुहको लगाती है। अपनी अंधेरी कोठरीमें बैठा हुआ सुकरात अपने हाथमें जहरका प्याला थामे अपने मित्रको गूढज्ञानका उपदेश करता है और कहता है—जो शांति चाहता हो वह उसे अपने अंतरमें तलाश करे।

इसी शांतिके बीच सत्याग्रहियोंका दस्ता पड़ाव डालकर, सबेरे क्या होगा इसकी चिन्ता न करते हुए पड़ा था।

मैंने सरकारको चिट्ठी लिखी थी कि हम ट्रांसवालमें बसनेके इरादेसे प्रवेश करना नहीं चाहते। हमारा प्रवेश सरकारके वचनभंगके विरुद्ध अमली फरियाद है और हमारे आत्म-सम्मानके भंगसे होनेवाले दुःखका शूद्र निदग्ध है। हमें तो सरकार यही चालसटाउनमें गिरफ्तार कर ले तो हम निर्बिचत हो जाय। वह ऐसा न करे और हममेंसे कोई छिपकर ट्रांसवालमें दाखिल हो जाय तो हम उसके लिए जिम्मेदार नहीं होंगे। हमारी लड़ाईमें गुप्त कुछ है ही नहीं। व्यक्तिगत स्वार्थ किसीको साधना नहीं है। किसीका छिपकर प्रवेश करना हमें पसंद नहीं होगा, पर जहाँ हजारों अनजान आदमियोंसे काम लेना हो और जहाँ प्रेमके सिवा दूसरा कोई वधन न हो वहाँ किसीके कामके लिए हम जिम्मेदार नहीं हो सकते। फिर सरकार यह भी जान ले कि अगर उसने तीन पौंडका कर उठा दिया तो गिरमिटिए कामपर लौट जायंगे और हड़ताल बंद हो जायगी। अपने दूसरे कष्ट दूर करनेके लिए हम उन्हें सत्याग्रहमें शामिल नहीं करेंगे।

अतः स्थिति ऐसी अनिश्चित थी कि सरकार कब गिरफ्तार करेगी यह कहा नहीं जा सकता था। पर ऐसी स्थितिमें सरकारके जवाबकी राह अधिक दिन नहीं देखी जा सकती थी। एक-दो डाककी ही राह देखी जा सकती थी। इसलिए हमने

निश्चय किया कि सरकार हमें गिरफ्तार न करे तो तुरंत चार्ल्स-टाउन छोड़ दें और ट्रांसवालमें दाखिल हो जाय। रास्तेमें पुलिस न पकड़े तो काफिला रोज आठ दिनतक २० से २४ मील-तक कूच करता जाय। हमारा इरादा आठ दिनमें टाल्स्टाय फार्म पहुंचनेका था। हमने सोचा था कि जवतक लड़ाई खतम नहीं होती तवतक सब वही रहे और फार्ममें काम करके आजीविका लेनेके लिए कच्चे घर बनवाने और यह काम उससे ही पढ़ा करें। मि० केलनवकने सारा प्रबंध कर रखा था। काफिले-के रहनेके लिए कच्चे घर बनवाने और यह काम उससे ही लेनेकी बात सोची गई थी। इस बीच छोटे-छोटे खेतों में सब करके वृद्धे, कमजोर उनमें रखे जायें और सबल गरीबों को खूले मैदानमें पड़े रहे। इसमें कठिनाई यही थी कि बरसातका मौसम आ रहा था और इस मौसममें सबल-निर्बल सबको कोई आश्रय चाहिए ही। पर मि० केलनवक इस कठिनाईका उपाय कर लेनेकी हिम्मत रखते थे।

काफिलेने कूचकी दूसरी तैयारियां भी कर ली। चार्ल्स-टाउनके भले अग्रज डाक्टर ब्रिस्को (जिलेके हेल्थ अफसर) ने हमारे लिए दवाइयोंका एक छोटा-सा बक्स तैयार कर दिया और अपने कुछ औजार भी दिये, जिन्हें मुझ-सा अनाड़ी आदमी भी इस्तेमाल कर सकता था। यह बक्स हमें खुद लादकर ले जाना था, क्योंकि काफिलेके साथ कोई भी सवारी नहीं रखनी थी। इससे पाठक समझ सकते हैं कि इस बक्समें कम-से-कम दवाएं रही होंगी। वे इतनी भी नहीं थी कि एक वक्तमें सौ आदमियोंके लिए काफी हो सके। इतनी कम दवाएं साथ रखनेका खास कारण तो यह था कि हमें रोज किसी-न-किसी गावके पास पड़ाव करना था। इसलिए जो दवा चुकती, वह मिल सकती थी और हमें अपने साथ एक भी रोगी या अपंग आदमी को नहीं रखना था। उन्हें तो रास्तेमें ही छोड़ देनेका निश्चय किया गया था।

खानेके लिए रोटी और शाकके सिवा और कुछ तो था ही नहीं। पर रोटियां आठ दिन बराबर मिलती रहीं, इसका क्या उपाय हो ? रोज-की-रोज वांट देनी थी। इसका उपाय तो एक ही था कि हर मंजिलपर हमारे लिए कोई उन्हें पहुंचा दिया करे। यह कौन करे ? हिंदुस्तानी बावर्ची तो थे ही नहीं। फिर हर गावमे डबल रोटी बनाने-बेचनेवाले नहीं थे। गावोंमे रोटी शहरोसे जाती। अतः कोई बावर्ची तैयार करके दे और रेलवे उन्हें पहुंचा दे तभी हमें रोटिया मिल सकती थी। ब्रोकसरस्ट (ट्रासवालके चार्ल्सटाउनके नजदीकका सरहद्दी स्टेशन) चार्ल्सटाउनसे बड़ा नगर था। वहां डबल रोटी बनाने वालेकी एक बड़ी (यूरोपियन) दुकान थी। उसने खुशीसे हर जगह रोटियां पहुंचा देनेका इकरार किया। हमारी मजबूरी जानकर उसने हमसे वाजार-भावसे अधिक लेनेकी भी कौशिश नहीं की। बढ़िया आटेकी बनी रोटियां दी। उसने बक्तसे रोटियां रेलवेके पास पहुंचाईं और रेलवे कर्मचारियोंने—ये भी यूरोपियन ही थे—उन्हें ईमानदारीके साथ हमारे पास पहुंचा दिया। पहुंचानेमें पूरी सावधानी रखी और हमारे लिए कुछ सुभीते भी कर दिये। वे जानते थे कि हमारी किसीसे शत्रुता नहीं। हमें किसीको नुकसान नहीं पहुंचाना था। हमें तो कष्ट सहन कर न्याय प्राप्त करना था। इससे हमारे आसपासका वातावरण शुद्ध हो गया और बना रहा। मानव-जातिका प्रेमभाव प्रकट हुआ। सबने अनुभव किया कि हम ईसाई, यहूदी, हिंदू, मुसलमान कोई भी हो, सब भाई-भाई ही हैं।

यो क्वचकी सारी तैयारी कर लेनेके बाद मैंने फिर समझातेकी कौशिश की। चिट्ठियां, तार आदि तो भेज ही चुका था। मैंने तय किया कि मेरा अपमान तो होगा ही; पर उसका खतरा उठाकर भी मुझे टेलीफोन भी कर ही लेना

चाहिए । चार्ल्सटाउनसे प्रिटोरियाको टेलीफोन था । मैंने जनरल स्मट्सको टेलीफोन किया । उनके मन्त्रीसे मैंने कहा—“जनरल स्मट्ससे कहिये कि मेरी कूचकी पूरी तैयारी हो चुकी है । बोक्सरस्टके लोग उत्तेजित हैं । वे शायद हमारी जानका भी नुकसान करे । ऐसी धमकी तो दे ही चुके हैं । यह परिणाम वह (जनरल स्मट्स) भी नहीं चाहेंगे । वह तीन पौडका कर उठानेका वचन दे दे तो मुझे कूच नहीं करना है । मुझे कानून तोडनेके लिए ही कानून नहीं तोडना है । मैं इसके लिए लाचार हो गया हूँ । वह मेरी इतनी प्रार्थना न सुनेगे ?” आधे मिनटमें जवाब मिला—“जनरल स्मट्स आपसे कभी कोई सरोकार नहीं रखना चाहते । आपकी मर्जीमें जो आये वह करे ।” टेलीफोन बंद !

यह फल मैंने सोच ही रखा था । हा, ऐसी खलाईकी आशा नहीं रखता था । जनरल स्मट्सके साथ सत्यापहके वादका मेरा राजनैतिक सवध छ सालसे माना जा सकता था । अत मैं उनसे शिष्ट, विनययुक्त उत्तरकी आशा रखता था, पर उनकी विनयसे मुझे फूल नहीं जाना था । वैसे ही इस अविनयसे ढीला भी नहीं पडा । अपने कृतव्यकी सीधी रेखा मुझे साफ दिखाई दे रही थी । अगले दिन (६ नवंबर १९१३) नियतकालका (६॥ वजे सवेरे) घंटा बजनेपर हमने प्रार्थना की और ईश्वरका नाम लेकर कूच कर दिया । काफिलेमें २०३७ पुरुष, १२७ स्त्रियां और ५७ बच्चे थे ।

2037 / 127 / 51

: २० :

टांसवालमें प्रवेश—२

- इस प्रकार मजमा कहिये, काफिला कहिये, यात्रीसमुदाय



कहिये नियत समयपर रवाना हो गया। ज़ाल्स्टाउनसे एक मीलके फ़ासलेपर वोकसरस्टका नाला पडता है। उसको लाधा और वोकसरस्ट या ट्रांसवालमे दाखिल हुए। इस नालेके सिरेपर घुडसवार पुलिस खड़ी थी। मैं पहले उसके पास गया और लोगोंसे कह दिया था कि जब मैं इशारा करू तब वे प्रवेश करे। पर मैं पुलिससे बात कर ही रहा था कि शांति-सेताने हमला बोल दिया और लोग नालेको लांघ आये। घुडसवारोंने उन्हें घेर लिया, पर यह काफिला ऐसा न था कि यो रोके रोका जा सके। पुलिसका इरादा हमे गिरफ्तार करनेका तो था ही नहीं। मैंने लोगोंको शांत किया और पक्तिवद्ध होकर चलनेको समझाया। पाच-सात मिनटमे सारी गड़वड दूर हो गई और ट्रांसवालमें हमारा दाखिल होना शुरू हो गया।

वोकसरस्टके लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी। उसमे हमे अनेक प्रकारकी धमकियां दी गई थी। कुछने कहा था कि हिंदुस्तानी ट्रांसवालमे दाखिल हुए तो हम गोलियोंसे उनका स्वागत करेंगे। मि० केलनबेक इस सभामे गोरोको समझानेके लिए गये थे। कोई उनकी बात सुननेको तैयार नहीं था। कुछ लोग तो उन्हें मारनेके लिए खड़े हो गये। मि० केलनबेक पहलवान है। उन्होंने सैडोसे कसरतकी तालीम ली है। उन्हें डराना कठिन था। एक गोरेने उन्हें द्वन्द्वयुद्धके लिए ललकारा। मि० केलनबेकने जवाब दिया—“मैंने शांति-धर्मको स्वीकार किया है, इसलिए यह (द्वन्द्वयुद्ध) तो मुझसे नहीं हो सकेगा। पर मुझपर जिसको प्रहार करना हो वह खुशीसे कर ले। मगर इस सभामे तो मैं बोलकर ही रहूंगा। आपने सभी यूरोपियनोंको इसमे आनेका साबुं-जनिक निमंत्रण दिया है। सभी यूरोपियन आपकी तरह निर्दोष मनुष्योंको मारनेको तैयार नहीं। यही सुनानेके लिए।”

मैं यहाँ आया हूँ एक यूरोपियन ऐसा भी है जो आपको बता देना चाहता है कि आपने हिंदुस्तानियोंपर जो इलजाम लगाये हैं वे गलत हैं। आप जो सोचते हैं वह हिंदुस्तानी नहीं चाहते। उन्हें न आपका राज्य चाहिए, न वे आपसे लड़ना चाहते हैं। उनकी मांग तो शुद्ध न्यायकी है। जो लोग द्वासवालमें दाखिल होना चाहते हैं वे वहाँ बसनेके लिए नहीं जाना चाहते। उनपर अन्यायकारी क्रूर लगाया गया है। उसक खिलाफ अमली फरियाद करनेके लिए उन्हें दाखिल होना है। वे वहादुर हैं। वे लड़ाई-झगड़ा नहीं करेंगे। आपसे लड़ेंगे नहीं; पर आपकी गोलियाँ खाकर भी द्वासवालमें दाखिल तो होगेही। वे आपकी गोलियों या भालोंसे डरकर पीछे कदम हटानेवाले नहीं। उन्हें स्वयं कष्ट सहनकर आपका दिल पिघलाना है। वह पिघलेगा ही। इतना ही कहनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ। यह कहकर मैंने तो आपकी सेवा ही की है। आप चेतें, अन्यायसे बचें।” इतना कहकर मि० केलनवेक अपनी जगहपर बैठ गये। लोग कुछ लज्जित हुए। लड़नेको ललकारनेवाला पहलवान तो उनका दोस्त हो गया।

पर इस सभाकी हमें खबर थी, इसलिए बोक्सरस्टके गोरोंकी ओरसे कोई उपद्रव हो तो हम उसके लिए तैयार थे। सरहदपर जो इतनी बड़ी पुलिस इकट्ठी कर रखी गई थी उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि गोरोंको मर्यादाका उल्लंघन न करनेसे रोका जाय। जो हो, हमारा जलूस वहाँसे शांति-पूर्वक गुजर गया। किसी गोरोंके कोई शरारत करनेकी याद मुझे नहीं है। सब यह नया कौतुक देखनेको निकल पड़े। उनमेंसे कितनोंकी आँखोंमें मित्रताकी झलक भी थी।

हमारा मुकाम पहले दिन बोक्सरस्टसे कोई आठ मीलपर पडनेवाला पामफोर्ड नामका स्टेशन था और हम शामके ५-६ बजेतक वहाँ पहुँच गये। लोगोंने रोटी और खकरका

आहार किया और मदानमें लेट गये । कोई भजन गाता था, कोई वातें करता था । कुछ स्त्रियाँ रास्तेमें थक गईं । अपने बच्चोको गोदमें लेकर चलनेकी हिम्मत तो उन्होने की थी । पर और आगे जाना उनकी शक्तिके बाहर था । इसलिए अपनी चेतावनीके अनुसार मैंने उन्हें एक भले हिंदुस्तानीकी दुकानमें छोड़ दिया और कह दिया कि हम टाल्सटाय फ़ार्म पहुंच जाएं तो उनको वहां भेज दें । हम गिरफ्तार कर लिये जाएं तो उनको घर भेज दें । उस व्यापारी भाईने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली ।

ज्यों-ज्यों अधिक रात होती गई त्यों-त्यों सब शोरगुल शांत होता गया । मैं भी सोनेकी तैयारीमें था । इतनेमें खड-खडाहट सुनी । मैंने एक यूरोपियनको लालटेन लिए आते देखा । मैं समझ गया । मुझे कौई तैयारी तो करनी ही नहीं थी । पुलिस-अफसरने मुझसे कहा—“आपके लिए मेरे पास वारंट है । मुझे आपको गिरफ्तार करना है ।”

मैंने पूछा—“कब ?”

जवाब मिला—“अभी ।”

“मुझे कहां ले जाइयेंगा ?”

“अभी तो पासके स्टेगन पर और जब ट्रेन आयेगी तब वोक्सरस्ट ले जाऊंगा ।”

मैंने कहा—“तो मैं किसीको जगाये बिना तुम्हारे साथ चलता हूं, पर अपने साथीको कुछ हिदायत दे दू ।”

“शौकसे दीजिए ।”

मैंने बगलमें सोये हुए पी० के० नायडूको जगाया । उनसे अपनी गिरफ्तारीकी खबर देकर कहा कि काफिलेवालोको सबेरा होनेके पहले न जाना और सबेरा होनेपर नियमानुसार कूच कर देना । कूच तो सूर्योदयसे पहले ही करनी थी । जहां विश्राम करने और रोटी वाटनेका समय आये वहां लोगोको

मेरी गिरफ्तारीकी बात बता देना । इस बीच जो कुछे उसको बताते जाओ । काफिलेको पुलिस गिरफ्तार करे तो वह गिरफ्तार हो जाये । न गिरफ्तार करे तो निर्धारित रीतिसे कूच जारी रखे । नायडूको कोई डर तो था ही नहीं । उनको यह भी बता दिया कि वह पकड़ लिये जाएं तो क्या करना होगा ।

वोक्सरस्ट में मि० केलनबेक तो मौजूद ही थे ।

मैं उस पुलिस-अफसरके साथ गया । सवेरा हुआ । वोक्सरस्ट जानवाली ट्रेनमें बैठा । वोक्सरस्ट में मुझपर मुकदमा चलाया गया । सरकारी वकीलने खुद ही १४ तारीखतक मामला मुलतवी रखनेकी प्रार्थना की; क्योंकि उनके पास शहादत तैयार नहीं थी । मुकदमा मुलतवी हो गया । मैंने जमानतपर छोड़े जानकी दरखास्त दी । कारण यह बताया कि मेरे साथ दो हजार मर्द, १२२ औरते और ५० वज्जे हैं । मुकदमेकी तारीखतक मैं उनको ठिकाने पहुंचाकर लौट आ सकता हूं । सरकारी वकीलने जमानतकी दरखास्तका विरोध तो किया, पर मजिस्ट्रेट लाचार था । मुझपर जो आरोप था वह ऐसा नहीं था जिसमें अभियुक्तको जमानतपर छोड़ना भी मजिस्ट्रेटकी मर्जीकी बात हो । अतः उन्होंने मुझे ५० पौडकी जमानतपर रिहा कर दिया । मेरे लिए मोटर तो मि० केलनबेकने तैयार ही रखी थी । उसमें बैठकर तुरंत मुझको मेरे काफिलेके पास पहुंचा दिया ।

दांसवालके अखबार 'दी दांसवाल लीडर' का प्रतिनिधि हमारे साथ आना चाहता था । उसे अपनी मोटरमें बैठा लिया । उसने इस यात्रा, मुकदमे और यात्रीदलसे मिलनेका विगद वर्णन अपने पत्रमें प्रकाशित किया । लोगोंने हर्षपूर्वक मेरा स्वागत किया । उनके उत्साहकी सीमा नहीं रही । मि० केलनबेक तुरंत वोक्सरस्ट लौट गये । उन्हें चार्ल्सटाउनमें ठहरे हुए और नये आनेवाले भारतीयोंकी सम्हाल करनी थी ।

हम आगे बढ़े, पर मुझे आजाद छोड़ना सरकारको अनुकूल नहीं पड़ सकता था। इसलिए अगले दिन मैं फिर स्टैंडर्टनमें गिरफ्तार कर लिया गया। स्टैंडर्टन औरोकी तुलनामें कुछ बड़ा गांव है। यहाँ मैं विचित्र रीतिसे गिरफ्तार किया गया। मैं लोगोको रोटी बांट रहा था। यहाँके हिंदुस्तानी दुकानदारोंने मुरब्बेके कुछ डब्बे भेंट किये थे। इससे वितरणमें कुछ अधिक समय लग रहा था। इस बीच मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खड़े हो गये। उन्होंने वितरणका काम पूरा हो जाने दिया। इसके बाद मुझे एक किनारे बुलाया। उनको मैं पहचानता था। इसलिए मैंने सोचा कि वह मुझसे कुछ बातें करना चाहते होंगे। उन्होंने हँसकर मुझसे कहा—  
“आप मेरे कैदी है।”

मैंने कहा—“तो मेरा दर्जा बढ़ा; क्योंकि पुलिसके बदले खुद मजिस्ट्रेट मुझे गिरफ्तार करने आये है। पर मुझपर अभी मुकदमा चलाइयेगा न?”

उन्होंने जवाब दिया—“मेरे साथ ही चलिए। अदालत तो बैठी ही है।”

लोगोको कूच जारी रखनेकी सलाह देकर मैंने विदाली। अदालतमें पहुँचते ही देखा कि मेरे कुछ साथी भी पकड़ लिए गये हैं। वे थे पी० के० नायडू, बिहारीलाल महाराज, रामनारायणसिंह, रघुनारस और रहीम खाँ—ये पाँच जने।

मैं तुरंत अदालतके सामने पेश किया गया। मैंने वही कारण देकर जो वोक्सरस्टमें दिये थे, मुहलत और जमानतकी दरखास्त दी। यहाँ भी सरकारी वकीलने विरोध किया। पर मजिस्ट्रेटने २१ नवंबरतक मुकदमा मुलतवी कर दिया और मुझे ५० पौंडके जाती मुचलकेपर रिहा कर दिया। भारतीय व्यापारियोने मेरे लिए इक्का तैयार रखा ही था। काफिला अभी तीन मील भी आगे नहीं पहुँचा था कि मैं फिर

उससे जा मिला। अब तो लोगोने और मने भी सोचा कि शायद हम टाल्सटाय फार्म पहुँच जायंगे। पर यह खयाल सही नहीं था। लोग मेरी गिरफ्तारीके आदी हो गये, यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं थी। मेरे पाचो साथी जेलमे ही रहे।

: २१ :

### समी कैद

अब हम जोहान्सवर्गके काफी नजदीक पहुँच गये थे। पाठक याद रखे कि सारा रास्ता हमने आठ दिनमे तै करलेका निश्चय किया था। अबतक हम योजित मजिलें पूरी करते आये थे, इसलिए अब पूरी चार मजिलें बाकी रह गई थी। पर जैसे-जैसे हमारा उत्साह बढ रहा था वैसे-वैसे सरकारकी जागृति भी बढनी ही चाहिए थी। हमें अपनी मंजिलपर पहुँच जाने दे और इसके बाद गिरफ्तार करे तो यह उसकी कमजोरी और अकुशलता समझी जाती। इसलिए अगर हमे गिरफ्तार करना हो तो मंजिलपूरी होनेके पहले ही गिरफ्तार करना चाहिए।

सरकारने देखा कि मुझको गिरफ्तार कर लेनेपर भी काफिला न निराश हुआ, न डरा, न उसने उपद्रव किया। उपद्रव करे तो सरकारको तोप-बंदूकसे काम लेनेको पूरा मौका मिल जाय। जनरल स्मट्सके लिए तो हमारी दृढता और उसके साथ-साथ शांति, यही दुःखकी बात हो गई। उन्होने तो यहाँ तक कह डाला—“शात मनुष्यको कोई कबतक सताये ?” मरे हुएको मारना कैसे हो ? मरेको मारनेमे कोई मजा ही नहीं आता। इसीसे दुश्मनको जिंदा पकड़नेमे गौरव माना जाता है। चूहा विल्लीको देखकर भागना छोड दे तो विल्लीको दूसरा

शिकार बूढ़ना ही होगा। सभी मेमने सिंहकी बगलमे जाकर बैठ जाए तो सिंहको मेमनोका आहार छोड़ ही देना पड़े। सिंह सामना न करता हो तो पुरुषसिंह क्या सिंहका शिकार करे ?

हमारी शांति और हमारे निश्चयमें हमारी विजय छिपी हुई थी।

गोखलेकी इच्छा थी कि पोलक हिंदुस्तान जाकर भारत-सरकार और साम्राज्य-सरकारके सामने दक्षिण अफ्रीकाकी परिस्थिति रखनेमें उनकी सहायता करें। मि० पोलकका स्वभाव ऐसा था कि जहां हों वही उपयोगी हो जाए। वह जो काम हाथमे लेते उसीमे तन्मय हो जाते। इससे उन्हें हिंदुस्तान भेजनेकी तैयारी चल रही थी। मैंने तो उन्हें लिख दिया था कि आप जा सकते हैं। पर मुझसे मिले और जवानी पूरी हिदायतें लिये बिना जाना वह पसंद नहीं करते थे। इसलिए उन्होंने कूचके ही दरमियान आकर मिल जानेकी इजाजत मांगी। मैंने तारसे जवाब दिया कि पकड़ लिये जानेकी जोखिम उठाकर आना चाहें तो आ सकते हैं। लडनेवाले जरूरी खतरे सदा उठा ही लेते हैं। सरकार सबको गिरफ्तार कर ले तो गिरफ्तार हो जानेकी तो यह लडाई ही थी। जबतक न पकड़े तबतक पकड़े जानेके लिए सब सरल और नीतिमय यत्न करते जाना था। अतः मि० पोलकने पकड़े जानेकी जोखिम लेकर आना पसंद किया।

हम हेडलवर्गके पासतक पहुंचे थे। मि० पोलक पासके स्टेशनपर उतरकर और पैदल ही आकर हमसे मिले। हमारी बातें चल रही थी। लगभग पूरी भी हो चली थी। इस वकत दिनके कोई तीन वजे होंगे। हम दोनो काफिलेके आगे-आगे चल रहे थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। मि० पोलकको शामको डबन जानेवाली ट्रेन पकड़नी थी। पर जब राम-

घड़जी-सरीखे पुरुषको राजतिलकके ही समय बनवास मिला तो पोलककी क्या हकीकत थी? हम वाते कर रहे थे कि एक घोडागाडी सामने आकर खड़ी हो गई। उसमे एशियाई महकमेके प्रधान (ट्रांसवालके प्रधान इमिग्रेशन आफिसर) मि० चमनी और एक पुलिस-अफसर थे। दोनो नीचे उतरे। मुझको थोड़ी दूर ले जाकर एकने कहा, "मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।"

इस तरह चार दिनके अंदर मैं तीन बार गिरफ्तार किया गया। मैंने पूछा, "और काफिलेको?"

"वह होता रहेगा।"

मैं कुछ नहीं बोला। पोलकसे कहा कि आप काफिलेके साथ जाये। पुलिस-अफसरने मुझे सिर्फ अपनी गिरफ्तारीकी खबर लोगोको दे देनेकी इजाजत दी। ज्योही लोगोसे शांति रखने आदिके लिए कहना आरम्भ किया, उक्त अफसर साहब बोल उठे—“अब आप कैदी है, भाषण नहीं दे सकते।”

मैंने अपनी मर्यादा समझ ली। समझनेकी जरूरत तो नहीं थी, क्योंकि मुझसे बोलना बंद करनेके साथ ही उक्त अफसरने गाडीवानको जोरसे गाडी हांकनेका हुक्म दिया। क्षणभरमे काफिला अदृश्य हो गया।

उक्त अधिकारी जानता था कि घड़ीभर तो मेरा ही राज्य है, क्योंकि वह तो हमारे अहिंसा व्रतपर विश्वास रखकर ही इस वीरान मैदानमें दो हजारके मजमेके सामने अकेला आया हुआ था। वह यह भी जानता था कि उसने मुझे चिट्ठीसे कैद किया होता तो भी मैं अपने आपको उसके हवाले कर देता। ऐसी हालतमे मैं कैदी हूँ, इसकी याद मुझे दिलाना अनावश्यक था। मैं लोगोसे जो कहता वह अधिकारियोके लिए भी उपयोगी ही होता। पर उन्हें तो अपना रूप दिखाना ही चाहिए। इसके साथ ही मुझे यह भी कह देना चाहिए कि



अनेक अधिकारी हमारी कैदको समझते थे। वे जानते थे कि कैद हमारे लिए अंकुश या दुखरूप नहीं है, हमारे लिए तो वह मुक्तिका द्वार है। इससे हमें हर तरहकी जायज आजादी देते। इतना ही नहीं, गिरफ्तार करनेमें उनको आसानी हो और उनका वक्त बचे इससे हमारी मदद लेते और मिलनेसे उपकार मानते। दोनों तरहके नमूने इन प्रकरणोंमें पाठकोंको मिलेंगे।

मुझे एकसे दूसरी जगह घुमाते हुए अंतमें हेडलवर्गके थानेमें ले जाकर रखा। रात वही बिताई।

पोलक काफिलेको लेकर आगे बढ़े और ग्रेंलिंग्स-टैंड पहुंचे। वहां भारतीय व्यापारियोंका अच्छा जमाव था। रास्तेमें सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ आमद मुहम्मद भायात मिले। क्या होनेवाला है, इसकी खबर उन्हें मिल गई थी। मेरे ही साथ पूरे काफिलेको भी गिरफ्तार कर लेनेका प्रबंध कर लिया गया था। इसलिए मि० पोलकने सोचा कि काफिलेको ठिकाने पहुंचा दिया तो एक दिन देरसे भी डर्वन पहुंचकर हिंदुस्तान जानेवाले जहाजको पकड़ सकते हैं। पर ईश्वरने कुछ और ही सोच रखा था।

१० तारीखको लगभग ९ बजे सवेरे काफिला बालफोर पहुंचा जहा काफिलेको गिरफ्तार कर नेटाल पहुंचा देनेके लिए तीन स्पेशल ट्रेने खड़ी थी। यहा लोगोंने कुछ हठ पकड़ी। कहा—“गांधीको बुलाओ। वह कहे तो हम गिरफ्तार होंगे और ट्रेनमें सवार होंगे।” यह हठ अनुचित थी। उसको न छोड़नेसे हमारी बाजी बिगड़ती, सत्याग्रहीका तेज घटता। जेल जानेमें गांधीको-क्या काम? सिपाही कही सेनानायकका चुनाव करता है या उनमेंसे किसी एकका ही हुकम माननेका आग्रह कर सकता है? मि० चमनीने इन लोगोंको समझनेमें मि० पोलक और सेठ काछलियाकी मदद ली। वे कठि-

नाईसे उन्हें समझा सके कि उनकी तो मुराद ही जेल जाना है और जब सरकार गिरफ्तार करनेको तैयार है तो हमे उसके न्यातेका स्वागत करना चाहिए। इसीमें हमारी सज्जनता और विजय है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि मेरी इच्छा दूसरी हो ही नहीं सकती। लोग समझ गये और ट्रेनमें सवार हो गये।

इधर मैं फिर मजिस्ट्रेटके सामने पेश किया गया। उस वक्त ऊपरकी घटनाकी मुझे कुछ भी खबर नहीं थी। मैंने फिर अदालतसे मुहलतकी प्रार्थना की। बताया कि दो अदालते मुहलत मंजूर कर चुकी है। यह भी कहा कि हमारी मजिल अब थोड़ी ही बाकी है और प्रार्थना की कि सरकार या तो काफिलेको गिरफ्तार कर ले या मुझे उनको उनके स्थान ट्रायस्टाय फार्ममे छोड़ आने दे। अदालतने मेरी प्रार्थना तो स्वीकार नहीं की; पर मेरी दरखास्त तुरंत सरकारके पास भेज देना मंजूर किया। इस वक्त मुझे डडी ले जाना था। मुझपर असल मुकदमा गिरमितिया मजदूरोको नेताल छोड़कर चले जानेका वहकानेका तो वही चलाया जानेवाला था। अत मुझे उसी दिनकी ट्रेनसे डंडी ले गये।

उधर मि० पोलक वालफोरमे गिरफ्तार नहीं किये गये, बल्कि काफिलेकी गिरफ्तारीमें अधिकारियोंको उनसे जो मदद मिली उसके लिए उन्हें धन्यवाद भी दिया गया। मि० चमनीने तो यह भी कहा कि आपको गिरफ्तार करनेका सरकारका इरादा ही नहीं है। पर यह तो था मि० चमनीका, और जहातक उन्हें मालम था, सरकारका विचार था, किन्तु सरकारका विचार तो घड़ी-घड़ी बदला करता है। सरकारने अतमे तै किया कि मि० पोलकको हिंदुस्तान नहीं जाने देना चाहिए और उनको तथा मि० केलनबेकको, जो खूब काम कर रहे थे, गिरफ्तार कर लेना चाहिए। फलतः

मि० पोलक चार्ल्सटाउनमे गिरफ्तार कर लिए गये । मि० केलनवेक भी पकड लिए गये । दोनो वोक्सरस्ट जेलमे बंद किए गये ।

मुझपर डडीमे मुकदमा चलाया गया और नौ महीनेकी कड़ी कैदकी सजा मिली (११ नवंबर) । अभी वोक्सरस्टमें हमरा मुादमा दर्जित व्यक्तियोंको ट्रासवालमे दाखिल होनेकी प्रेरणा और इसमे सहायता करनेका वाकी था । मुझे वोक्सरस्ट ले गये । वहां मैने मि०केलनवेक और मि० पोलकको देखा । यों हम तीनो वोक्सरस्ट जेलमें मिले । इससे हमारे हर्षका पार न रहा ।

वोक्सरस्टमे मुझपर जो मुकदमा चलाया गया उसमें अपने खिलाफ मुझको ही शहादत देनी थी । पुलिसको मिल सकती थी; पर कठिनाईसे । इसलिए उसने मेरी मदद ली । यहांकी अदालत केवल अभियुक्तके अपराधी होना स्वीकार कर लेनेपर सजा नहीं करती थी ।

मेरा काम तो हुआ; पर मि० केलनवेक और मि० पोलकके खिलाफ कौन शहादत दे ? शहादत न मिले तो उनको सजा देना नामुमकिन था । उनके खिलाफ भट्ट शहादत हासिल कर लेना भी कठिन था । मि० केलनवेकको तो अपना अपराध स्वीकार कर लेना था, क्योंकि उनका इरादा काफिलेके साथ रहनेका था । पर मि० पोलकका विचार तो हिंदुस्तान जानेका था । इससे हम तीनोने मिलकर यह तै किया कि मि० पोलकने अपराध किया है या नहीं, इस सवालके जवाबमें हम 'हां' या 'ना' कुछ भी न कहें ।

इन दोनों साथियोंके विरुद्ध मैं गवाह बना । हम यह नहीं चाहते थे कि मुकदमे ज्यादा बक्त ले, इसलिए तीनो मुकदमे एक-एक दिनमें ही खतम हो जायं, इसमें अपनी ओरसे पूरी मदद दी । ऐसा हुआ भी । हम तीनोंको तीन-तीन महीनेकी

कैदकी सजा मिली। हमने सोचा कि ये तीन महीने तो हम साथ रह सकेंगे, पर सरकारका सुभीता इसकी इजाजत नहीं देता था।

इस बीच थोड़े दिन हम वोक्सरस्ट जेलमें सुखसे रहे। यहाँ रोज नये कैदी आते और बाहरकी खबर लाते। इन सत्याग्रही कैदियोंमें एक हरवतसिंह नामका बूढ़ा था। उसकी उम्र ७५ से ऊपर थी। वह किसी खानमें काम नहीं करता था। अपना गिरमिट तो वह बरसों पहले पूरा कर चुका था। इसलिए वह हडतालमें शामिल नहीं था। मेरी गिरफ्तारीके बाद लोगोंमें उत्साह बहुत ही बढ़ गया था और बहुतेरे नेटालसे ट्रांस-वालमें दाखिल होकर गिरफ्तार हो रहे थे। हरवतसिंह भी उन्हीमें था। मैंने उससे पूछा—“आप जेलमें क्यों आये? आप जैसे बूढ़ोको मैंने जेलमें आनेका निमंत्रण नहीं दिया है?”

हरवतसिंहने जवाब दिया—“मैं कैसे रह सकता था, जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके लड़के तक हम लोगोंके लिए जेल चले गये?”

“लेकिन आपसे जेलके दुःख बर्दाश्त नहीं हो सकेंगे। आपके छूटनेके लिए मैं कोशिश करूँ?”

“मैं हरगिज जेल नहीं छोड़ूँगा। मुझे एक दिन तो मरना है ही। फिर ऐसा दिन कहीं, जो मेरी मौत यहाँ हो जाय!”

इस दृढ़ताको मैं कैसे ढिगाता? वह ढिगाए ढिगती भी नहीं। मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानीके सामने झुक गया। जैसी हरवतसिंहकी भावना थी वैसा ही हुआ। हरवतसिंहकी मृत्यु जेलमें हुई। उसका शव वोक्सरस्टसे डर्वन मंगया गया और सैकड़ों भारतीयोंकी उपस्थितिमें उसका गम्मानपूर्वक अग्निमंस्कार किया गया। ऐसे हरवतसिंह इस लड़ाईमें एक ही नहीं, अनेक थे। पर जेलमें मरनेका सौभाग्य

केवल अकेले उसीको मिला । इससे दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहके इतिहासमें वह उल्लेखका अधिकारी हो गया ।

इस प्रकार लोग आकृष्ट होकर जेल आयें यह सरकारको पसंद नहीं हो सकता था । फिर जेलसे छूटनेवाले मेरा सदेसा ले जाय यह भी उसको गवारा नहीं हो सकता था । अतः हम तीनोंको अलग कर देने, एकको भी वोक्सरस्टमें न रहने देने और मुझे ऐसी जेलमें ले जानेका निश्चय किया गया जहाँ कोई हिंदुस्तानी जा ही न सके । फलतः मैं आरेजियाकी राजधानी ब्लूम फोनटीनकी जेलमें भेजा गया । आरेजियामें कुल मिलाकर ५० से अधिक हिंदुस्तानी नहीं थे । वे सभी होटलोमें नौकरी करते थे । ऐसे प्रदेशकी जेलमें हिंदुस्तानी कैदी हो ही नहीं सकते थे । उस जेलमें मैं अकेला ही हिंदुस्तानी था । बाकीके सभी कैदी गोरे या हवशी थे । मुझे इसका दुःख नहीं था, बल्कि मैंने इसको सुख माना । मुझे न कुछ सुनना था, न देखना । नया अनुभव मिले यह मेरे मनको भानेवाली बात थी । फिर मुझे पहचानेका समय तो बरसोंसे, कहिये १८९३ के बादसे, मिला ही नहीं था । अब एक बरस मिलेगा यह जानकर मुझे तो खुशी हुई ।

मैं ब्लूम फोनटीन पहुँचाया गया । वहाँ एकांत तो यथेच्छ मिला । कठिनाइयाँ भी बहुत थी, पर सभी सह्य थी । उनका वर्णन करके पाठकोका समय नहीं लूँगा । फिर भी इतना बता देना जरूरी है कि वहाँका डाक्टर मेरा मित्र हो गया । जेलर तो केवल अपने अधिकारको ही समझता था, पर डाक्टर कैदियोंके हककी रक्षाका ध्यान रखता था । मेरा यह काल शुद्ध फलाहारका था । न दूध लेता, न घी । अन्न भी न खाता । केले, टमाटर, कच्ची मूँगफली, नीबू और जैतूनका तेल, वस यही मेरी खूराक थी । इनमें एक भी चीज सड़ी आये तो भूखों मरना पड़ता । इसलिए डाक्टर खास

तौरसे ध्यान रखते और उन्होंने मेरी खुराकमें वादाम, अखरोट और ब्रेजीलनट बढ़ा दिया। खुद सारे फलोको देखते और उनके अच्छे होनेका इतमीनान करते। मुझे जो कोठरी दी गई थी उसमें हवा बहुत ही कम आती थी। उसका दरवाजा खुला रखवानेकी उन्होने पूरी कोशिश की, पर उनकी चली नहीं। जेलरने धमकी दी कि दरवाजा खुला रखा गया तो मैं इस्तीफा दे दूंगा। जेलर बुरा आदमी नहीं था, पर उसका स्वभाव एक ही सांचेमें ढला हुआ था, वह कैसे बदला जाय ? उसे उपद्रवी कैदियोंसे काम पडता था। इसलिए मुझ जैसे भले कैदीके साथ भेदभाव करता तो दूसरे कैदियोंके उसपर हावी हो जानेका सच्चा डर था। मैं जेलरका दृष्टिबिंदु ठीक तौरसे समझ सकता था और इससे डाक्टर और जेलरके बीच मेरे द्वारेमें जो झगडा होता उसमें मेरी हमदर्दी जेलरकी ओर होती। जेलर अनुभवी और सीधे रास्तेपर जानेवाला था और अपने रास्तेको साफ देख सकता था।

—मि० कैलनबेक प्रिटोरियाकी जेलमें भेजे गये और मि० पोलक जरमिस्टनकी जेलमें।

पर सरकारकी सारी योजना बेकार थी। आसमान टूटे तो पैद क्या काम देगा ? नेटालके गिरमिटिए हिंदुस्तानी पूरे तौरसे जग गये थे। दुनियाकी कोई भी ताकत उनको रोक नहीं सकती थी।

: २२ :

कसौटी

सोनेकी परख करनेवाला सदा उसको कसौटीपर घिसता है। फिर और परीक्षा करनी हो तो उसे भट्टीमें डालता है, उसे

पीटा है, मँल हो तो उसे निकाल डालता है और अतमें उसका कुदन बनाता है। ऐसी ही कसौटी हिंदुस्तानियोकी हुई। वे हथौड़ेसे पीटे गये, भट्टीमें डाले गये, तपाये गये और जब वे परीक्षामे सच्चे उतरे तभी उनकी कीमत आंकी गई।

यात्रियोको जो स्पेशल ट्रेनमें सवार कराके ले गये तो वन-भोजके लिए नहीं; बल्कि उनको निहाई पर चढानेके लिए ले गये। रास्तेमें उनको खाना देनेका भी प्रबंध नहीं था। नेटाल पहुचे कि तुरत उनपर मुकदमा चलाया गया। उनको कैदकी सजा मिली। यह तो समझी हुई बात थी; पर हजारो आदमियोको जेलमें रखना तो खर्च बढाना और हिंदुस्तानियोकी मनचाही करना होता। कोयलेकी खानें बढ रहती। ऐसी स्थिति अधिक दिन चले तो तीन पौडका कर रद करना ही पडता। इस-लिए यूनियन सरकारने एक नयी युक्ति सोची। गिरमिटिये जहां-जहांसे आये थे उन्ही स्थानोको, एक नया कानन बनाकर, उसने जेल बना दिया और इन जेलोका दारोगा खानोके गोरे कर्मचारियोको बना दिया। इस प्रकार जो काम मजदूरोने छोड दिया था वही सरकारने उनसे जबर्दस्ती कराया। गुलामी और नौकरीमे यह फर्क है कि नौकर काम छोड दे तो उसपर दीवानी अदालतमें नालिश ही की जा सकती है और गुलाम काम छोडे तो जबर्दस्ती कामपर वापस लाया जा सकता है, यानी अब मजदूर पूरे तौरपर गुलाम हो गये।

पर इतनाही काफी नहीं था। मजदूर बहादुर थे। उन्होने खानोमे काम करनेसे साफ इन्कार कर दिया। इसके फल-स्वरूप उन्हे कोडोकी मार सहनी पडी। अक्खड आदमियोने जो क्षणभरमे अधिकारी बन बैठे थे उन्हे लाते मारी, गालियां दी और दूसरे अत्याचार किये। उसका तो कही उल्लेखतक नहीं हुआ है। गरीब मजदूरोने इस सबको धीरजके साथ सह लिया। इन अत्याचारोंके तार हिंदुस्तान पहुचे। सब तार गोखलेके

नाम भेजे जाने । उन्हें एक दिन भी ब्योरेवार तार न मिलता तो सीधे पछते । इन तारोंका प्रचार वह अपनी रोगशय्यासे करते, क्योंकि इन दिनों वह सख्त वीमार थे । पर दक्षिण अफ्रीकाका काम इस दशामें भी खुद देखनेका आग्रह रखते थे और इस काममें न रात देखते, न दिन । फल यह हुआ कि सारा हिंदुस्तान भटक उठा और दक्षिण अफ्रीकाका सवाल वहां प्रधान प्रश्न बन गया ।

यही वक्त था जब लार्ड हार्डिंजने मद्रासमें (दिसंबर १९१३) वह प्रसिद्ध भाषण दिया जिसने दक्षिण अफ्रीका और विलायतमें खलबली मचा दी । वाइसराय दूसरे उपनिवेशों या साम्राज्यके अगभूत देशोंकी आलोचना नहीं कर सकता । पर लार्ड हार्डिंजने यूनियन सरकारकी कड़ी टीका ही नहीं की, सत्याग्रहियोंके कामका पूरा बचाव भी किया, यहातक कि सबिनय कानून भंगका भी समर्थन किया । विलायतमें उनके साहसकी कुछ कड़वी आलोचना अवश्य हुई, फिर भी उन्होंने अपने कार्यपर पश्चात्ताप न कर उसका औचित्य प्रकट किया । उनकी इस दृढताका असर बहुत अच्छा हुआ ।

इन अपनी खानोंमें कैद दूखी और हिम्मतवाले मजदूरोंको छोड़कर हम क्षणभर खानोंके बाहरकी स्थितिपर निगाह डाले ।

खाने नेटालके उत्तरी भागमें अवस्थित थी, पर हिंदुस्तानी मजदूरोंकी बड़ी-से-बड़ी तादाद नेटालके नैऋत्य और वायव्य कोणोंमें थी । वायव्य कोणमें फिनिक्स, वेरुलम, टोंगाट इत्यादि स्थान पडते हैं, नैऋत्यमें इसीपियो और अमजिन्टो इत्यादि । वायव्य कोणके मजदूरोंके साथ मेरा खास परिचय था । उनमेंसे बहुतेरे दोअर-युद्धमें भी मेरे साथ रह चुके थे । नैऋत्य दिशाके मजदूरोंके साथ मेरा इतना नजदीकका सावका नहीं पड़ा था । उस ओर



मेरे साथी भी बहुत थोड़े थे। फिर भी हडताल और जेलकी वात विद्युत् गतिसे फैल गई। दोनो कोणोसे हजारो मजदूर यका-यक निकल पड़े। कितनोंने यह सोचकर अपना सामान बेच डाला कि लड़ाई लबी होगी और हमे खाना कोई देगा नही। मैने तो जेल जाते समय साथियोको चेता दिया था कि ज्यादा मजदूरोंको हडताल करनेसे रोकें। मुझे आशा थी कि खानोंके मजदूरोंकी मददसे ही लड़ाईकी सब मंजिल पार कर लूंगा। अगर सारे मजदूर यानी लगभग दस हजार लोग हडताल कर दे तो उनके भरण-पोषणका भार उठाना कठिन होगा। इतनी बडी सेनासे कूच कराने जितनी सामग्री भी अपने पास नही थी। न इतने मुखिया थे, न इतना पैसा। फिर इतने आदमियोको इकट्ठा कर शांति-भंग बचाना भी नामुमकिन होता।

पर बाढ आये तो किसीके रोके रुक सकती हैं ? मजदूर हर जगह अपने आप काम छोडकर निकल पड़े। स्वयंसेवक भी उन स्थानोमें स्वेच्छासे संघटित हो गये।

सरकारने अब बंदकसे काम लेनेकी नीति अपनाई। लोगोंको हडताल करनेसे जबदस्ती रोका। उनके पीछे घुड-सवार दौडाये और वे अपने स्थानपर पहुंचा दिये गये। वे तनिक भी उपद्रव करे तो फौर कर देनेका हुक्म था। हडतालियोके एक समूहने उन्हे कामपर वापस ले जानेकी कोशिशका विरोध किया। किसी-किसीने पुलिसपर ईंट-पत्थर भी फेंके। उनपर गोलियोंकी वौछार कर दी गई। बहुतेरे घायल हुए, दो-चार मरे भी। पर मजदूरोंका जोश इससे ठडा नही हुआ। स्वयंसेवकोंने बडी कठिनाईसे वेरूलमके पास हडताल करनेसे लोगोंको रोका। पर सब मजदूर कामपर वापस नही गये। कुछ तो डरसे छिप गये और फिर कामपर वापस नही गये।

एक घटना उल्लेखयोग्य है। वेरूलममे बहुतसे मज-

दूर काम छोड़कर निकल पड़े थे। वे किसी उपायसे कामपर वापस नहीं जाते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सिपाहियोंके साथ वहाँ मौजूद थे और हड़तालियोंपर गोली चलानेका हुक्म देनेको तैयार थे। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा लड़का वहादुर सोरावजी जो उस वक्त मुश्किलसे १८ वरसका रहा होगा, डबनेसे यहाँ पहुँच गया था। जनरलके घोड़ेकी लगाम थामकर वह बोल उठा, "आप फँर करनेका हुक्म नहीं दे सकते। मैं अपने आदमियोंको शांतिसे कामपर लौटा देनेकी जिम्मेदारी लेता हूँ।" जनरल ल्यूकिन इस नौजवानकी वहादुरीपर मुग्ध हो गये और उसे अपना प्रेम-बल आजमा लेनेकी मूहलत दे दी। सोरावजीने लोगोको समझाया। वे समझ गये और अपने कामपर लौट गये। इसतरह एक नवयुवकी मौकेकी सूझ, निर्भयता और प्रेमसे खूनखराबी होते-होते बची।

पार्ठकोंको जान लेना चाहिए कि ये गोलियोंकी दौछार आदि काम गैरकानूनी ही माने जा सकते हैं। खानोके मजदूरोंके साथ व्यवहार करनेमें सरकारकी कार्रवाईकी जाहिरा शकल बाकायदा थी। वे हड़ताल करनेके लिए नहीं, बल्कि ट्रांसवालकी सरहदमें बिना परवानोके प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार किये गये थे। नैऋत्य और वायव्य कोणोमें हड़ताल करना ही अगर अपराध मान लिया गया था तो वह किसी कानूनके रूसे नहीं; बल्कि अधिकारके बलसे। अतमें तो शक्ति ही कानून बन जाती है। अगरेजीमें एक कहावत है जिसके माने यह है कि बादशाह कभी कोई गलती करता ही नहीं। हुकूमतका सुभीता ही आखिरी कानून है। यह दोष सार्वभौम है। सच पछिये तो इस तरह कानूनको भूल जाना सदा दोष ही नहीं होता। कुछ

१ धी किंग कैन डू नो रोग ।

मौकोंपर कानूनसे छिपके रहना ही दोष बन जाता है। जब राजशक्ति लोकसंग्रह करती हो और जब उसका नियंत्रित करने वाला बंधन उस शक्तिका नाश करनेवाला बन रहा हो तब उस बंधनका अनादर धर्म-सगत और विवेकका अनुसरण है। ऐसे अवसर कभी-कभी ही उपस्थित होते हैं। जहा राज्य अकसर निरंकुश होकर व्यवहार करता है वहा वह लोकोपकारी नहीं हो सकता। यहा राज्यके निरंकुश होनेका कोई कारण नहीं था, हड़ताल करनेका हक अनादि है। यह जान लेनेके लिए सरकारके पास काफी मसाला था कि हड़ताल करनेवालोको उपद्रव कदापि नहीं करना था। हड़तालका बड़े-से-बड़ा परिणाम इतना ही हो सकता था कि तीन पौडका कर रद्द हो जाता। शांतिप्रिय लोगोके विरुद्ध शांतिमय उपाय ही उचित माने जा सकते हैं। फिर यहा राजशक्ति लोकोपकारी नहीं थी। उसका अस्तित्व केवल गोरोके भलेके लिए था। आमतौरसे वह हिंदुस्तानियोंकी विरोधिनी थी। इसलिए ऐसी एक-पक्षीय राजशक्तिकी निरंकुशता किसी तरह उचित और क्षन्तव्य नहीं मानी जा सकती।

अतः मेरी समझसे यहा शक्तिका शुद्ध दुरुपयोग हुआ। जिस कार्यकी सिद्धिके लिए शक्ति या अधिकारका यों दुरुपयोग किया जाता है वह कभी सिद्ध नहीं होता। कभी-कभी क्षणिक सिद्धि मिलती दिखाई देती है, पर स्थायी सफलता कभी नहीं मिलती। दक्षिण अफ्रीकामे गोलिया वरसानेके ६ महीनेके अदर ही जिस तीन पौडके करको कायम रखनेके लिए यह अत्याचार किया गया वही रद्द हो गया। यो अकसर दुःख सुखके लिए होता है। इन क्लेशोकी पुकार हर जगह सुनी गई। मैं तो यह मानता हूं कि जैसे एक रेलमे उसके हर पुरजेका अपना स्थान होता है वैसे ही हर-एक सघर्ष-संग्राममे हर चीजकी अपनी जगह होती है और जैसे कीट, मेल आदि

कलकी गति रोक देते हैं वैसे ही कितनी चीजे युद्धकी गति भी रुद्ध कर देती हैं। हम तो निमित्तमात्र होते हैं, इसलिए हम सदा यह तथी जानते कि क्या हमारे प्रतिकूल है और क्या अनुकूल। अतः हमें केवल साधनको जाननेका अधिकार है और साधन पवित्र हो तो फलके विषयमें हम निर्मय और निश्चित रह सकते हैं।

इस लड़ाईमें मैंने यह देखा कि ज्यों-ज्यों लड़नेवालोका कष्ट बढ़ा त्यों-त्यों उसका अंत निकट आता गया। कष्ट उठानेवालोकी निर्दोषिता ज्यों-ज्यों अधिक स्पष्ट होती गई त्यों-त्यों भी युद्धका अंत निकट आता गया। फिर इस युद्धमें मैंने यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, निःशस्त्र और अहिंसक युद्धमें आड़े वक्तपर आवश्यक साधन अनायास जुट जाते हैं। बहुतसे स्वयंसेवकोंने, जिन्हें मैं आजतक नहीं जानता, अपने आप आकर हमारी मदद की। ऐसे सेवक बहुत करके निस्स्वार्थ होते हैं। इच्छा न होते हुए भी अदृश्य रीतिसे सेवा कर देते हैं। न कोई उनकी सेवा कही लिखता है और न कोई उन्हें प्रमाणपत्र देता है। कितने ही तो इतना भी नहीं जानते कि उनके ये अमूल्य कार्य भगवानकी वहीमें दर्ज किये जाते हैं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय परीक्षामे पास हुए। उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया और उससे बिना बाल बाका हुए बाहर निकले। युद्धका अंत किस तरह आरंभ हुआ यह अलग प्रकरणमें देखेंगे।

: २३ :

## अंतका आरंभ

पाठकोने देखा होगा कि जितना बल लगाया जा सकता था उतना और जितनेकी उससे आशा रखी जा सकती थी उससे अधिक शांत बल कौमने लगा दिया। उन्होंने यह भी देखा होगा कि बल लगानेवालोका बहुत बड़ा भाग ऐसे गरीब और दलित जनोंका था जिससे कुछ भी आशा नहीं रखी जा सकती थी। उन्हे यह भी याद होगा कि दो या तीनको छोड़कर फिनिक्स-आश्रमके सभी जिम्मेदार कार्यकर्ता इस वक्त जेल-मे थे। फिनिक्ससे बाहर रहनेवालोंमे स्वर्गीय सेठ अहमद मुहमद काछलिया बचे थे। फिनिक्समें मि० वेस्ट, मिस वेस्ट और मगनलाल गाधी थे। सेठ काछलिया साधारण देखभाल करते थे। मिस इलेजिन ट्रासवालका सारा हिसाब-किताब और सरहद लांघनेवालोंकी देख-रेख रखती थी। मि० वेस्टपर 'इंडियन ओपीनियन' के अग्रेजी भागका काम सम्हालने और गोखलेके साथ तारद्वारा पत्रव्यवहार रखनेकी जिम्मेदारी थी। जब परिस्थिति क्षण-क्षणमे नया रंग बदला करती हो उस वक्त डाकसे होनेवाले पत्रव्यवहारकी जरूरत ही क्यों होती? तार पत्रके जैसे लंबे भेजने पडते थे।

अब फिनिक्स न्यूकैसेलकी तरह वायव्यकोणके हडता-लियाँका केन्द्र हो गया। सैकड़ों वहाँ आकर सलाह और आश्रय लेने लगे। इस दशामे सरकारकी निगाह फिनिक्सकी ओर गये बिना कैसे रहती? आसपास रहनेवाले गोरोंकी तयारी भी चढने लगी। फिनिक्समें रहना कुछ अशोभे खतरनाक हो गया। फिर भी छोटे-छोटे लडके-लडकिया भी जोखिमभरे काम कर रहे थे। इतनेमे वेस्ट पकड़े गये। सच

पूछिये तो वेस्टको गिरफ्तार करनेका कोई कारण नहीं था। हमने यह तै कर रखा था कि वेस्ट और मगनलाल गांधी अपने आपको गिरफ्तार करानेका एक भी प्रयत्न न करे। इतना ही नहीं, जहातक हो सके गिरफ्तारीके मौकोंसे दूर भी रहे। इसलिए वेस्टने गिरफ्तार करनेके लिए सरकारको कोई कारण दिया ही नहीं था, पर सरकार कुछ सत्याग्रहियोंका सुभीता थोड़े ही देखनेवाली थी या उसे गिरफ्तार करनेका मौका थोड़े ही दूढना था। अधिकारवालेको कोई काम करनेकी इच्छा होना ही उसका अवसर है। अत वेस्टकी गिरफ्तारीका तार ज्योंही गोखलेके पास पहुंचा, उन्होंने हिंदुस्तानके कुछ योग्य आदमियोंको दक्षिण अफ्रीका भेजनेका यत्न आरंभ कर दिया। लाहौरमें जब दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहियोंकी सहायताके लिए सभा हुई थी तो सी० एफ० एंड्रजने, जितना पैसा उनके पास था, सब दे दिया था। तभीसे गोखलेकी नजर उनपर पड रही थी। अत वेस्टकी गिरफ्तारीकी खबर मिलते ही उन्होंने एड्रजसे तारसे पूछा कि आप तुरत दक्षिण अफ्रीका जानेकी तैयार हैं? एड्रजने जवाबमें तुरत 'हां' कह दिया। इसी क्षण उनके परम प्रिय मित्र पियर्सन भी तैयार हो गये और वे दोनो पहले स्टीमरसे दक्षिण अफ्रीका जानेको रवाना हो गये।

पर अब तो युद्ध समाप्तिके पास पहुंच गया था। हजारो निरपराध लोगोंको जेलमें बंद रखनेकी शक्ति दक्षिण अफ्रीकाके सरकारके पास नहीं थी। वाइसराय भी इसे सहन नहीं कर सकते थे। सारी दुनिया यह देख रही थी कि जनरल स्मट्स क्या करते हैं। ऐसे मौकेपर राज्य आमतौरसे जो किया करते हैं, दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने भी वही किया। जाच-पडताल तो कुछ करनी नहीं थी। जो अन्याय हुआ था वह जाहिर था। उसे दूर करनेकी आवश्यकता हर आदमी देख रहा था। जनरल

स्मट्स भी देख सकते थे कि अन्याय हुआ है और वह दूर होना चाहिए; पर उनकी दशा सांप-छछूदरकी-सी हो रही थी। उन्हें न्याय करना था, पर न्याय करनेकी शक्ति वह खो बैठे थे, क्योंकि दक्षिण अफ्रीकाके गैरोको उन्होंने यह इतमीनान 'दिला दिया था कि वह खुद तीन पौडका कुर रद नही करेंगे और न दूसरे सुधार ही। पर अबतो उक्त करको उठाकर और दूसरे सुधार करके ही छुटकारा था। ऐसी विकट स्थितिसे निकलनेके लिए लोकमतसे डरकर चलनेवाले राज्य सदा कमीशन नियुक्त किया करते हैं। उसके जरिये महज नामकी जाच कराई जाती है, क्योंकि वह क्या सलाह देगा यह पहलेसे जाना-समझा हुआ होता है। यह आम रवाज है कि कमीशन जो सिफारिश करे उसपर अमल होना ही चाहिए। इसलिए कमीशनकी सिफारिशकी आड लेकर राज्य पीछे वही न्याय किया करते हैं जिसे करनेसे पहले इन्कार कर चुके होते हैं। जनरल स्मट्सने कमीशनमें तीन सदस्य नियुक्त किये। भारतीय जनताने कमीशनके वारेमें कुछ शर्तें पेश की और जबतक वे पूरी न कर दी जाएं तबतक कमीशनका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा की। इन शर्तोंमेंसे एक यह थी कि सब सत्याग्रही कंदा छोड़ दिये जाएं और दूसरी यह कि कमीशनमें कम-से-कम एक सदस्य तो हिंदुस्तानी कौमकी ओरसे होना ही चाहिए। पहली शर्त तो अशत. कमीशनने ही मंजूर कर ली थी। उसने सरकारसे सिफारिश की थी कि कमीशनके कामको आसान बनानेके लिए मि० केलनवेक, मि० पोलक और गांधी विज्ञा. किसी शर्तके छोड़ दिये जायें। सरकारने इस सिफारिशको मंजूर किया और हम तीनोंको एक साथ (१८ दिसंबर १९१३) छोड़ दिया। हम मुश्किलसे दो महीने जेलमें रहे होंगे। दूसरी ओर मि० वेस्टको सरकारने गिरफ्तार तो कर लिया, पर उनपर मुकदमा

चलानेके लिए कोई मसाला नहीं था। इसलिए उन्हें भी छोड़ना पडा।

ये घटनाएं एंड्रज और पियर्सनके पहुंचनेके पहले ही हो चुकी थीं। इसलिए इन दोनों मित्रोंको मेने ही डबन जाकर जहाजसे उतारा। उन दोनोंको इन घटनाओंकी कुछ भी खबर नहीं थी। इसलिए सुनकर उन्हें सुखद आश्चर्य हुआ। इन दोनों मित्रोंके साथ मेरी यह पहली ही मुलाकात थी।

छोटे जानेसे हम तीनोंको मायूसी ही हुई। बाहरकी हमें कुछ भी खबर नहीं थी। कमीशनकी खबरसे हमें अचरज हुआ। पर हमने देखा कि हम कमीशनकी कोई सहायता करनेमे असमर्थ हैं। इतना जरूर समझा कि उसमें हिदुस्तानियोंकी ओरसे कोई एक आदमी तो होना ही चाहिए। इसपर हम तीनों डबन पहुंचे और वहासे जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा :

“हम कमीशनका स्वागत करते हैं। पर उसके दो सदस्यो—मि० एसेलेन और मि० वाइलीकी नियुक्ति जिस रीतिसे हुई है उसपर हमें सख्त एतराज है। उनके व्यक्तित्वसे हमारा कुछ भी विरोध नहीं। वे प्रसिद्ध और सुयोग्य नागरिक हैं। पर दोनों अनेक बार भारतीयोंको नापसंद करनेका भाव प्रकट कर चुके हैं। इसलिए उनसे बिना जाने अन्याय हो जाना संभव है। मनुष्य अपना स्वभाव यकायक बदल नहीं सकता। ये दोनों सज्जन अपना स्वभाव बदल लेंगे यह मानना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। फिर भी हमारी माग यह नहीं है कि वे कमीशनसे अलग कर दिये जाएं। हमारा सुझाव इतना ही है कि एक-दो तटस्थ पुरुष उसमे वडा दिये जाएं और इसके लिए हम सर जेम्स रोज़ इनिस और ऑनरेबल डब्ल्यू०पी० आइजरके नाम पेश करते हैं। दोनों नामी व्यक्ति अपनी न्यायवृत्तिके लिए सुविख्यात हैं। हमारी



दूसरी प्रार्थना यह है कि सभी सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये जाए। यह न होनेसे हमारा अपना जेलके बाहर रहना कठिन हो जायगा। अब उन्हे जेलमें बंद रखनेका कोई कारण नहीं है। तीसरे अगर हमें कमीशनके सामने गवाही देनी है तो हमें खानोंमें और जहा-जहा गिरमिटिए काम करते हैं वहां-वहां जानेकी आजादी होनी चाहिए। हमारी ये प्रार्थनाएँ स्वीकार न की गईं तो हमे खेदके साथ फिर जेल जानेके उपाय ढूढने होंगे।”

जनरल महोदयने कमीशनमें और किसीको लेनेसे इन्कार किया और कहा कि कमीशन किसी पक्षके लिए नहीं नियुक्त हुआ है। वह केवल सरकारके सतोषके लिए बनाया गया है। यह जवाब मिलनेपर हमारे पास एक ही डलाज रह गया और हमने जेलकी तैयारी करके यह विज्ञप्ति निकाली कि १९१४ को पहली जनवरीको जेल जानेवालोंकी डर्वनसे कूच शुरू होगी। १८ दिसबर (१९१३)को हम छोडे गये थे, २१ को हमने उपर्युक्त पत्र लिखा और २४ को जनरल स्मट्सका जवाब मिला। >

पर इस उत्तरमें एक बात ऐसी थी जिससे मैंने जनरल स्मट्सको फिर पत्र लिखा। उनके जवाबमें इस आशयका वाक्य था—“कमीशन निष्पक्ष और अदालती बनाया गया है, और उसकी नियुक्ति करते समय अगर भारतीयोंसे भ्रमविरा नहीं किया गया तो खानवालो और शक्करवालोसे भी नहीं किया गया।” इस वाक्यको देखकर मैंने जनरल महोदयको निजी पत्रमें लिखा कि अगर सरकार न्याय ही करना चाहती हो तो मुझे आपसे मिलना है और कुछ तथ्य आपके सामने रखने है।” इसके जवाबमें जनरल स्मट्सने मुलाकातका अनुरोध स्वीकार किया। इससे कूच कुछ दिनोंके लिए तो मुलतवी हो ही गई।

उधर गोखलेने जब सुना कि हम नई कूच करनेवाले हैं तब उन्होंने लंबा तार भेजा । उसमें लिखा कि ऐसा करनेसे लाई हार्डिंजकी और मेरी स्थिति भी कठिन हो जायगी और दूसरी कूच मुलतवी रखने और कमीशनके सामने इजहार देनेकी जोरदार सलाह दी ।

हमारे ऊपर धर्मसंकट आ पड़ा । कमीशनके सदस्योंमें और आदमी नहीं लिए गये तो भारतीय जनता उसका बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा कर चुकी थी । लाई हार्डिंज नाराज हों, गोखले दुःखी हों तो भी प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय ? मि० एड्जने गोखलेकी भावना, उनके नाजुक स्वास्थ्य और हमारे निश्चयसे उनके दिलको लगनेवाले धक्केपर विचार करनेकी सलाह दी । मैं तो जानता ही था । नेताओंने इकट्ठे होकर स्थितिपर विचार किया और अंतमें निश्चय किया कि चाहे जो जोखिम उठानी पड़े, पर बहिष्कार तो कायम रहना ही चाहिए । इसलिए हमने गोखलेको लगभग सौ पौंड खर्च करके लंबा तार भेजा । उससे श्रीएड्ज भी सहमत हुए । उसका आशय यह था :

“आपका दुःख समझता हूँ । मैं सदा ही चाहूंगा कि बड़ी-से-बड़ी वस्तुका त्याग करके भी आपकी सलाहका अनुसरण करूँ । लाई हार्डिंजने हमारी जो सहायता की है वह अमूल्य है । मैं यह भी चाहता हूँ कि यह मदद हमें अंततक मिलती रहे । पर मैं चाहता हूँ कि आप हमारी स्थितिको समझे । इसमें हजारों आदमियोंकी प्रतिज्ञाका प्रश्न आता है । प्रतिज्ञा शुद्ध है । हमारी सारी लडाईंकी इमारत प्रतिज्ञाओकी नीवपर खड़ी की गई है । प्रतिज्ञाओका वंघन नहीं होता तो हमसेसे बहुतेरे आज गिर गये होते । हजारोंकी प्रतिज्ञापर एक वार पानी फिर जाय तो नैतिकवंघन-जैसी कोई चीज रहेगी ही नहीं । प्रतिज्ञा करते समय लोगोंने पूरी तरह

विचार कर लिया था। उसमें कोई अनीति तो है ही नहीं। वहिष्कारकी प्रतिज्ञा करनेका कौमको अधिकार है। मैं चाहता हूँ कि आप भी हमें यह सलाह दें कि ऐसी प्रतिज्ञा किसीकी खातिर भी नहीं तोड़ी जानी चाहिए और हर हानि-जोखिम उठाकर भी उसका पालन होना चाहिए। यह तार आप लार्ड हार्डिंजको दिखाइयेगा। मैं चाहता हूँ कि आपकी स्थिति कठिन न हो जाय। हमने अपनी लड़ाई ईश्वरको साक्षी और उसकी सहायताका भरोसा रखकर शुरू की। बड़ोंकी और बड़े आदमियोंकी सहायता हम चाहते और मांगते हैं। वह मिल जाय तो प्रसन्न होते हैं। पर मेरी नम्र राय है कि वह मिले या न मिले, प्रतिज्ञाका वंचन कदापि न टटना चाहिए। उसके पालनमें आपका समर्थन और आर्गुवाद चाहता हूँ।”

यह तार गोखलेको मिला। इसका असर उनके स्वास्थ्य-पर तो हुआ; पर उनकी सहायतापर नहीं हुआ या हुआ तो यही कि उसका जोर और बढ़ गया। लार्ड हार्डिंजको उन्होने तार भेजा; पर हमारा त्याग नहीं किया। उलटे हमारी दृष्टिका वचाव किया। लार्ड हार्डिंज भी दृढ़ रहे।

मैं एंड्रजको साथ लेकर प्रिटोरिया गया। इसी वक्त यूनियन रेलवेमें गोरे कर्मचारियोंकी जवर्दस्त हड़ताल हुई। इस हड़तालसे सरकारकी स्थिति नाजूक हो गई। मुझसे कहलाया गया कि हिंदुस्तानियोंकी कूच बोल दो। मैंने जाहिर किया कि मुझसे हड़तालियोंकी इस रीतिसे मदद नहीं होने की। हमारा उद्देश्य सरकारको हैरान करना नहीं है। हमारी लड़ाई जुदी और दूसरे तरीकेकी है। हमें कूच करना ही होगा तो भी हम जब रेलवेकी गड़बड़ गांत ही जायगी तब करेंगे। इस निश्चयका गहरा असर हुआ। रायटर्ने उसका तार विलायत भेजा। लार्ड अम्पटहिलने वहाँसे

धन्यवादका तार भेजा । दक्षिण अफ्रीकाके अंग्रेज मित्रोंने भी धन्यवाद दिया । जनरल स्मट्सके एक मंत्रीने मजाकमे कहा—“मुझे तो आपके लोग तनिक भी नहीं भाते । मैं उनकी जरा भी मदद करना नहीं चाहता । पर उनका हम करें क्या ? आप लोग हमारे संकटकालमें हमारी सहायता करते हैं । हम आपको कैसे मारें ? मैं तो बहुत बार चाहता हूँ कि आप लोग भी अंग्रेज हड़तालियोंकी तरह दंगा-फसाद करें । तब हम तुरंत सीधा कर दे । आप तो दुश्मनको भी दुःख देना नहीं चाहते । आप तो स्वयं दुःख सहकर विजय प्राप्त करना चाहते हैं । भलमनसी और शिष्टताकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करते । यहां हम लाचार हो जाते हैं ।”

इसी तरहके भाव जनरल स्मट्सने भी प्रकट किये ।

पाठकोंको मालूम होना चाहिए कि सत्याग्रहीके सौजन्य और विनयका यह पहला उदाहरण नहीं था । जब वायव्य कोणके हिंदुस्तानी मजदूरोंने हड़ताल की तो बहुत-सी ईंख जो काटी जा चुकी थी, ठिकाने—कारखानेमें—नहीं पहुंच जाती तो मालिकोंको भारी नुकसान उठाना पड़ता । इसलिए १२०० भारतीय मजदूर उस कामको पूरा करनेके लिए कामपर वापस गये और उसके पूरा हो जानेपर ही अपने साथियोंके साथ शामिल हुए । फिर जब डब्लु म्युनिसिपैलिटीके गिर-मिटियोंने हड़ताल की तो उसमे भी जो लोग भंगीका और अस्पतालका काम करते थे वे वापस भेजे गये और वे खुशीसे अपने कामोपर लौट गये । भंगी और अस्पतालके काम करने-वाले अपना काम छोड़ दे तो शहरमे बीमारी फैलती और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा न हो पाती । सत्याग्रही ऐसे परिणामकी इच्छा नहीं कर सकता । इसलिए ऐसे कर्मचारी हड़तालसे अलग रखे गये । सत्याग्रही जो भी कदम उठाये उसमें उसे विरोधीकी हिम्मतका विचार कर ही लेना चाहिए ।

ऐसी भलमनसीके अनेक दृष्टातोंका अदृश्य प्रभाव चारों ओर पडता हुआ मैं देख सकता था और उससे भारतीयोंकी प्रतिष्ठा बढती और समझौतेके लिए हवा अनुकूल होती जा रही थी ।

: २४ :

### प्राथमिक समझौता

इस प्रकार समझौतेके लिए वातावरण अनुकूल होता जा रहा था । मैं और मि० एंड्रज जब प्रिटोरिया पहुंचे उसी वक्त सर बेजामिन राबर्टसन, जिन्हें लार्ड हार्डिंजने स्पेशल स्टीमरमें भेजा था, पहुंचनेवाले थे । पर हमें तो जनरल स्मट्सने जो दिन नियत किया था उसी दिन पहुंचना था । इससे सर बेजामिनकी राह देखे बिना ही हम खाना हो गये थे । राह देखनेका कारण भी नहीं था । लडाइंका अंतिम परिणाम तो हमारी शक्तके अनुसार ही होनेवाला था ।

हम दोनों प्रिटोरिया पहुंचे; पर जनरल स्मट्ससे मुझे अकेले ही मिलना था । वह रेलवेके गोरे कर्मचारियोंकी हडतालमें उलझ रहे थे । यह हडताल ऐसी भयानक थी कि यूनियन सरकारने फौजी कानून जारी किया था । इन कर्मचारियोंका उद्देश्य मजदूरी बढवाना मात्र नहीं था; बल्कि राज्यकी लगाम अपने हाथमें कर लेना था । मेरी पहली मुलाकात बहुत ही छोटी हुई । पर मैंने देखा कि जनरल स्मट्सकी जो स्थिति पहले यानी कूच शुरू कर देनेके समय थी वह आज नहीं थी । पाठकोंको याद होगा कि उस वक्त उन्होंने मुझसे बात करनेसे भी इन्कार कर दिया था । सत्याग्रहकी घमकी तो जैसे उस वक्त थी वैसे ही आज थी । फिर

भी उस वक्त उन्होंने समझौतेकी बातचीत करनेसे इन्कार कर दिया था। इस वक्त वह मुझसे मशविरा करनेको तैयार थे।

भारतीय जनताकी मांग तो यह थी कि कमीशनमें हिंदुस्तानियोंका कोई प्रतिनिधि होना चाहिए। पर इस बातपर जनरल स्मट्स अटल थे। उन्होंने कहा—“यह वृद्धि किसी तरह नहीं हो सकती। उसमें सरकारकी प्रतिष्ठा घटेगी और मैं जो सुधार करना चाहता हूँ उन्हें नहीं कर सकूंगा। आपको मालूम होना चाहिए कि मि० एसेलैन हमारे आदमी हैं। सुधार करनेके वारेमें वह सरकारके खिलाफ नहीं जायेंगे; बल्कि उसके अनुकूल ही रहेंगे। कर्नल वाइली नेटालके प्रतिष्ठित पुरुष हैं और आप लोगोंके विरोधी भी माने जा सकते हैं। अतः वह भी तीन पौंडका कर उठा देनेमें सहमत हो जायें तो हमारा काम आसान हो जायगा। हमारे अपने झगड़े-झगड़ इतने हैं कि हमें क्षणभरकी फुरसत नहीं है। अतः हम चाहते हैं कि आपका सवाल ठिकाने लगजाय। आप जो मांगते हैं उसे देनेका हमने निश्चय कर लिया है; पर कमीशनकी सम्मतिके बिना वह दिया नहीं जा सकता। आपकी स्थिति भी मैं समझ सकता हूँ। आपने कसम खा ली है कि जबतक हम आपकी ओरसे किसीको कमीशनमें नहीं ले लें तबतक आप उसके सामने शहादत न देंगे। आप शहादत भले ही पेश न करें; पर जो लोग देने आयें उन्हें रोकनेका आदोलन न करें और सत्याग्रहको मूलतवी रखें। मैं मानता हूँ कि इससे आपका लाभ ही होगा और मुझे शांति मिलेगी। आप लोग हड़तालियोंपर जुल्म होनेकी बात कहते हैं। इस बातको आप साबित नहीं कर सकेंगे; क्योंकि आप शहादत नहीं दे रहे हैं। इस वारेमें आपको खुद सोच-विचार लेना है।”

इस प्रकारके भाव जनरल स्मट्सने प्रकट किये। मुझे तो ये सारे भाव कूल मिलाकर अनुकूल मालूम हुए। सिपाहियों

और जेलके दारोगाओके दुर्व्यवहारके बारेमे हमने बहुत शिकायतें की थी, पर कमीशनका बहिष्कार करनेके कारण उन्हें साबित करनेका सुयोग हमारे पास नहीं था। यह धर्मसंकट था। हममें इस विषयमें मतभेद था। एक पक्षका विचार था कि भारतीयोंने सिपाहियोंपर जो इलजाम लगाया है वे साबित किये ही जाने चाहिए। इसलिए उसकी सलाह थी कि अगर हम कमीशनके सामने शहादत न दे सकें तो कौम जिन्हे अपराधी मानती है उनके खिलाफ अपनी शिकायतें इस रूपमें प्रकाशित कर दे कि अभियुक्तकी मरजी हो तो मानहानिकी नालिश दायर कर सके। मैं इस पक्षका विरोधी था। कमीशनके सरकारके विरुद्ध निर्णय करनेकी संभावना बहुत कम थी। मानहानिका दावा दायर करने लायक तथ्य प्रकाशित करनेमें कौमको भारी झमेलेमे पडना पडता और इसका नतीजा इतना ही होता कि हमे अपनी शिकायते साबित कर देनेका संतोष मिल जाता। वकीलकी हैसियतसे मैं जानता था कि मानहानिवाली बातोंको साबित करनेमें कैसी कठिनाइयां होती हैं; पर मेरी सबसे बजनदार दलील तो यह थी कि सत्याग्रहीको कष्ट सहन करना था। सत्याग्रह आरंभ करनेके पहले सत्याग्रही जानते थे कि हमें मरणान्त कष्ट सहना होगा और उसे सहनेको वे तैयार भी थे। ऐसी दशामें यह साबित करनेमें कोई विशेषता नहीं थी कि हमे कष्ट सहने पडे। बदला लेनेकी वृत्ति तो सत्याग्रहीमें होनी ही नहीं चाहिए। इसलिए जहां अपने कष्ट साबित करनेमें असाधारण कठिनाइयां सामने आ जायें वहां शांत रहे, यही सही रास्ता माना जायगा। सत्याग्रहीको तो मूलवस्तुके लिए ही लडना होता है। मूलवस्तु तो थी उक्त कानून। जब उनके रद्द कर दिए जाने या उनमें यथोचित सुधार हो जानेकी पूरी संभवना हो तो वह दूसरे भंगटोंमें क्यों पडेंगा? दूसरे सत्याग्रहीका मौन

अभ्यायकारी कानूनोंके विरुद्ध उसकी लड़ाईमें समझौता होते समय तो सहायक ही होगा। इस तरहकी दलीलोंसे विरोधी पक्षके बड़े भागको मैं समझा सका और अंतमें हमने कर्षोंकी शिकायतें बाकायदा साबित करनेका विचार त्याग दिया।

: २५ :

### पत्र-व्यवहार

प्राथमिक समझौतेके लिए जनरल स्मट्सके और मेरे बीच पत्रव्यवहार हुआ। मेरे पत्रका आशय यह था :

“अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम आपके सूचनानुसार कमीशनके काममें मदद नहीं कर सकते। इस प्रतिज्ञाको आप समझ सकते हैं और उसकी कद्र भी करते हैं; पर आपने हिंदुस्तानी कौमके साथ मशविरा करनेका सिद्धांत स्वीकार कर लिया है। इसलिए मैं अपने देशवासियोंको यह सलाह दे सकता हू कि कमीशनके सामने शहादतें पेश करना छोड़कर दूसरी तरहसे उसकी सहायता करें और कम-से-कम उसके काममें रुकावट तो नहीं ही डालें। इसके सिवा जबतक कमीशनका काम चलता रहे और नया कानून नहीं बने तबतक सरकारकी स्थिति कठिन न हो जाय इस खयालसे सत्याग्रह मूलतवी रखनेकी सलाह भी मैं उन्हें दे सकता हूँ। सर वेंजामिन राबर्टसनकी, जिन्हें वाइसरायने यहाँ भेजा है, सहायता करनेकी सलाह भी मैं अपने देशवासियोंको दूंगा। जेलमें और हडतालके दौरानमें हमारे ऊपर जो जुल्म-ज्यादतियाँ हुईं उनके बारेमें मुझे कहना होगा कि अपनी प्रतिज्ञाके कारण हम इन शिकायतोंको साबित भी नहीं कर सकते। सत्याग्रहीकी हैसियतसे हमसे जहातक हो सकता है, अपने



कष्टोंकी शिकायत नहीं करते और न उनका मुआवजा मांगते हैं। पर इस समयके हमारे मौनका अर्थ यह न किया जाय कि हमारे पास साबित करनेका कोई मसाला तो है ही नहीं। मैं चाहता हूँ कि आप मेरी स्थिति समझ सकें। इसके अतिरिक्त चूंकि हम सत्याग्रह मुलतवी रख रहे हैं इसलिए लडाईंके सिलसिलेमें जो लोग इस वक्त जेलमें हैं उन्हें रिहाई मिलनी ही चाहिए। हमारी मांग क्या है, यह भी यहां जता देना आवश्यक जान पड़ता है :

१. तीन पौंडका कर उठा दिया जाय।
२. विवाह हिंदू-धर्म, इस्लाम इत्यादिकी रीतिसे हुआ हो तो जायज माना जाय।
३. पढे-लिखे भारतीय इस देशमें दाखिल हो सकें।
४. अरिजिया (आरेज फ्री स्टेट)के बारेमें जो कौल-करार हुआ है उसमें सुधार किया जाय।
५. यह आश्वासन दिया जाय कि मौजूदा कानूनोंका व्यवहार इस तरह किया जायगा कि जो हक आज भोगे जा रहे हैं उनको नुकसान न पहुंचे।

इन बातोंके विषयमें आपसे संतोषजनक उत्तर मिले तो मैं कौमको सत्याग्रह मुलतवी रखनेकी सलाह दूँ।”

यह पत्र मैंने १९१४की २१वीं जनवरीको लिखा। उसी दिन उसका जो जवाब मिला उसका आशय यह था।

“आप कमीशनके सामने इजहार नहीं दे सकते इसका सरकारको खेद है, पर वह आपकी स्थिति समझ सकती है। आप जो कष्टोंकी बात न उठानेका विचार प्रकट कर रहे हैं उसको भी सरकार समझती है। इन कष्टोंसे सरकार तो इन्कार ही करती है; पर जब आप उसका सबूत नहीं पेश कर रहे हैं तो सरकारको इस विषयमें कुछ करना नहीं रह जाता। सत्याग्रही कैदियोंकी रिहाईके बारेमें तो सरकार आपका पत्र मिलनेसे

पहले ही हुकम दे चुकी है। हिंदुस्तानी कौमके कष्ट जो आपने गिनाये हैं उनके बारेमें सरकार कमीशनकी रिपोर्ट मिलनेतक कोई कदम नहीं उठायेगी।”

ग्रह-पत्रव्यवहार होनेसे पहले हम दोनों—मैं और मि० एड्ज—अनेक बार जनरल स्मट्ससे मिल चुके थे, पर इस बीच सर बेजामिन राबर्टसन भी प्रिटोरिया पहुँच गये थे। सर बेजामिन यद्यपि लोकप्रिय अधिकारी माने जाते थे, गोखलेकी सिफारिशी चिट्ठी भी अपने साथ लाये थे, फिर भी मैंने देखा कि आम अंग्रेज अफसरोकी कमजोरियोसे वह सर्वथा मुक्त नहीं थे। पहुँचनेके साथ ही उन्होंने कौममें फट डालना और सत्याग्रहियोको डरवाना शुरू कर दिया। प्रिटोरियामें हुई मेरी पहली मुलाकातमें उनकी अच्छी छाप नहीं पड़ी। डरानेके बारेमें मुझे जो तार मिले थे उनका जिक्र भी मैंने उनसे कर दिया। मुझे तो सबके साथ एक ही रीतिसे यानी सफाई और सचाईका व्यवहार करना था। अतः हम मित्र हो गये; पर मैंने अनेक बार देखा है कि डरनेवालेको तो अधिकारी डराते हैं और सीधे तथा न डरनेवालेके साथ वह सीधे रहते हैं।

इस प्रकार प्राथमिक-अस्थायी समझौता हुआ और सत्याग्रह आखिरी बार सदाके लिए मुलतवी किया गया। बहुतेरे अंग्रेज मित्रोको प्रसन्नता हुई और उन्होंने अंतिम समझौतेमें मदद करनेका मुझे भरोसा भी दिलाया। कौमसे इस समझौतेको मंजूर करा लेना जरा टेढ़ी खीर थी। जगा हुआ जोश ठंडा पड़ जाय, यह किसीको भी रुचनेवाली बात नहीं थी। फिर जनरल स्मट्सका विद्वान्सा कोई क्यों करने लगा? कुछ भाइयोने १९०८के समझौतेकी याद दिलाई और कहा—“एक बार जनरल स्मट्सने कौमको घोखा दिया, अनेक बार आपपर अपनी मागोमें नई बातें शामिल कर लेनेका दोष लगाया, कौमपर भारी मुसीबतें गुजारी, फिर भी आपने नहीं समझा,

यह कैसे दुःखकी बात है ? यह आदमी फिर घोखा देगा और आप फिर सत्याग्रह करनेकी बात कहेंगे । उस वक्त कौन आपका विश्वास करेगा ? लोग बार-बार जेल जायें और बार-बार घोखा खायें, यह कैसे हो सकता है ? जनरल स्मट्स-जैसे आदमी-के साथ तो एक ही समझौता हो सकता है जो मांगना वह ले लेना । उनसे वचन नहीं लेने चाहिए । जो वादा करके मुकर जाय उसे उधार कोई कैसे दे सकता है ?”

मै जानता ही था कि इस तरहकी दलीलें कितनी ही जगह पेश की जायेंगी इससे मुझे अचरज नहीं हुआ । सत्याग्रही कितनी ही बार घोखा क्यों न खाये जबतक वचनपर विश्वास न करनेका स्पष्ट कारण नहीं हो तबतक विपक्षीके वचनका विश्वास करेगा ही । जिसने दुःखको सुख मान लिया हो वह जहां अविश्वास करनेका कारण न हो वहां केवल दुःखके नामसे डरकर अविश्वास नहीं करेगा, बल्कि अपनी शक्तिपर भरोसा रखकर विपक्षके विश्वासघातकी ओरसे निश्चित रहकर कितनी ही बार विश्वासघात क्यों न किया जाय फिर भी विश्वास करता ही जायगा और यह मानेगा कि ऐसा करनेसे सत्यका बल बढ़ेगा और विजय निकट आयेगी । अतः जगह-जगह सभाएं करके मै अंतमें लोगोंको समझौता स्वीकार करानेके लिए समझा सका और वे भी सत्याग्रहका रहस्य अब अधिक समझने लगे । इस वक्तके समझौतेमें मि० एंड्रयूज मध्यस्थ और साक्षी थे । वैसे ही वाइसरायके राजदूतके रूपमें सर वेंजामिन रावर्टसन भी थे । इसलिए इस समझौतेके मिथ्या होनेका डर कम-से-कम था । मैने हठकरके समझौता करनेसे इन्कार कर दिया होता तो यह उल्टा कौमका दोष समझा जाता और जो विजय छ महीने बाद हमें मिली उसकी प्राप्तिमें अनेक प्रकारके विघ्न आते । सत्याग्रही किसी भी कालमें इसका कारण नहीं प्रस्तुत करता कि कोई उसकी ओर उगलीतक

उठा सके। सिमा बीरस्य भूषणम् वाक्य ऐसे ही अनुभवके आधारपर लिखा गया है। सत्याग्रहमें निर्भयता रहनी ही चाहिए। फिर निर्भयको भय क्या? और जहां विरोधीका विरोध जीतना है, उसका नाश नहीं करना है, वहां अविश्वास कैसा?

इस तरह कौमके समझीता स्वीकार कर लेनेके बाद हमे महज यूनियन पार्लामेंटके बैठनेकी राहभर देखनी बाकी रही। इस बीच पूर्वोक्त कमीशनका काम जारी था। हिंदुस्तानियोंकी ओरसे बहुत ही कम गवाह उसके सामने गये। उस वक्त कौमपर सत्याग्रहियोंका कितना ज्यादा असर था इसका अकाट्य प्रमाण इससे मिल गया। सर बेजामिन रावर्टसनने भी हिंदुस्तानियोंको गवाही देनेके लिए समझाया; पर लडाइके कट्टर विरोधी थोड़ेसे भारतीयोंके सिवा और सब लोग अविचल रहे। इस वहिष्कारका असर तनिक भी बुरा नहीं हुआ। कमीशनका काम मरुतसर हो गया और रिपोर्ट ऋटपट प्रकाशित हो गई। रिपोर्टमें कमीशनके सदस्योंने भारतीय जनताके कमीशनके काममें सहायता न करनेकी अवश्य कड़ी आलोचना की थी। सैनिकोंके दुर्व्यवहारके आरोपको उड़ा दिया, पर कौमको जो-जो चीज चाहिए थी उस सबको देनेकी सिफारिश कमीशनने की। यानी उसने तीन पाँडका कर उठा देने, व्याहके विषयमें हिंदुस्तानियोंकी मांग मंजूर करने और दूसरी अनेक छोटी-मोटी रियायते देने और सारा काम बिना ढिलाई किये करनेकी सिफारिश की। इस तरह कमीशनकी रिपोर्ट जैसा कि जनरल स्मट्सने कहा भारतीयोंके अनुकूल निकली। मि० एंड्रजने विलायत जानके लिए विदा ली। सर बेजामिन रावर्टसन भी रवाना हो गये। हमे यह आश्वासन दिया गया था कि कमीशनकी रिपोर्टके अनुसार कानून बनाया जायगा। यह कानून क्या था, इसपर अगले प्रकरणमें विचार करूंगा।

: २६ :

## युद्धका अंत

कमीशनकी रिपोर्ट निकलनेके थोड़े ही दिन बाद जिस कानूनके जरिये समझौता होनेवाला था उसका मसविदा यूनियन गजटमें प्रकाशित हुआ। इस मसविदेके प्रकाशित होते ही मुझे केप टाउन जाना पड़ा। यूनियनकी विधान-सभा (यूनियन पार्लामेंट) की बैठके वही हो रही थी, अब भी वही होती है। इस विलमें ९ धाराएँ हैं और पूरा बिल 'नवजीवन'के दो कालमोंमें आजायगा। उसका एक भाग भारतीयोंके बीच हुए ब्याहके विषयमें है, जिसका आशय यह है कि जो ब्याह हिंदुस्तानमें वैध माना जाता है वह दक्षिण अफ्रीकामें भी जायज समझा जायगा; पर एक ही वक्तमें किसीके एकसे अधिक पत्नियाँ हों तो उनमेंसे एक ही दक्षिण अफ्रीकामें कानूनन जायज पत्नी मानी जायगी। दूसरे भागके द्वारा उस तीन पीडके करको रद्द करना है जो हर एक गिरमिटिएको, अगर वह स्वतंत्र भारतीयके रूपमें दक्षिण अफ्रीकामें रहना चाहता हो तो हर साल देना पड़ता था। तीसरे भागमें जिन लोगोंको दक्षिण अफ्रीकामें रहनेके प्रमाणपत्र मिले हुए थे उन प्रमाणपत्रोंका महत्व बताया गया है। यानी यह बताया गया है कि जिसके पास यह प्रमाणपत्र हो उसका दक्षिण अफ्रीकामें रहनेका हक किस दरजेतक सावित होता है। इस विलपर यूनियन पार्लामेंटमें खासी और मीठी बहस हुई।

दूसरी बातोका, जिनके लिए कानूनकी जरूरत नहीं थी, स्पष्टीकरण जनरल स्मट्सके और मेरे बीच हुए पत्रव्यवहारमें किया गया। उसमें इन विषयोका खुलासा किया गया था। पढ़े-लिखे भारतीयोंके केप कालोनीमें प्रवेशके अधिकारकी रक्षा,

जिन्हे दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल-होनेकी खास परवानगी प्राप्त थी उनका अधिकार, जो हिंदुस्तानी १९१४के पहले दक्षिण अफ्रीकामें दाखिल हो चुके हैं उनकी हैसियत और जिन्होंने एकाधिक स्त्रियोंसे व्याह कर लिया हो उन्हें कृपारूपमें अपनी दूसरी पत्नीको भी लाने देना । जनरल स्मट्सके पत्रमें इस आशयका वाक्य भी है :

“प्रचलित कानूनोंके बारेमें यूनियन सरकारकी सदा यह इच्छा रही है और आज भी है कि उनपर न्यायपूर्वक और जो अधिकार आज भोगे जा रहे हैं उनकी रक्षा करते हुए ही अमल किया जाय ।” यह पत्र ३० जून १९१४ को लिखा गया था । उसके जवाबमें उसी दिन मैंने जनरल स्मट्सको जो पत्र लिखा उसका आशय यह है

“आपका आजकी तारीखका पत्र मुझे मिला । आपने धीरज और सौजन्यके साथ मेरी बातें सुन ली इसके लिए अहसानमंद हूँ ।

“हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानून (इंडियन रिलीफ बिल्स) के पास हो जाने और हमारे बीच हुए पत्रव्यवहारसे सत्याग्रह-संग्रामकी समाप्ति हो रही है । यह लड़ाई १९०९ ई० के सितंबर महीनेमें शुरू हुई । हिंदुस्तानी कामको इसमें बहुत कष्ट और पैसैका नुकसान उठाना पड़ा । सरकारको भी चिंताग्रस्त रहना पड़ा ।

“आप जानते हैं कि मेरे कुछ भाइयोंकी मांग बहुत ज्यादा थी । अलग-अलग प्रांतोंमें व्यापारके परवानके कानूनोंमें जैसे ट्रांसवालका ‘गोल्ड लॉ’, ट्रांसवाल टाउन शिक्षा ऐक्ट और १८८५का ट्रांसवालका नं० ३ कानून, इनमें कुछ भी बदल-बदल नहीं हुआ, जिससे भारतीयोंको निवास, व्यापार और जमीनकी मालिकीका पूरा-पूरा हक मिले । इससे उनको असंतोष हुआ है । कुछ लोगोंकी तो इस कारण असंतोष है कि एकमे

हमारे सूत्रमें जानेकी पूरी आजादी नहीं दी गई। कुछ लोगोंको इस बातमें असंतोष है कि हिंदुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानूनमें विवाहके प्रश्नके विषयमें जितना किया गया है उससे अधिक होना चाहिए था। उनकी मुझसे यह मांग है कि ये सभी बातें सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल कर ली जायं। परमैंने उनकी मांग मंजूर नहीं की। अतः यद्यपि ये बातें सत्याग्रहके विपक्के रूपमें शामिल नहीं की गईं तो भी इस बातसे तो हार्गिज इन्कार नहीं किया जा सकता कि किसी दिन सरकारको इन प्रश्नोंपर और विचार करने राहत देना मुनासिब होगा। जबतक यहाँ बसनेवाली हिंदुस्तानी क्रीमकी नागरिकके पूरे-पूरे हक नहीं दे दिये जायं तबतक पूरे संतोषकी आशा नहीं रखी जा सकती।

“अपने भाइयोंने मैंने कहा है कि आप लोगोंको धीरे-धीरे रखना है और दूरएक योग्य साधनके द्वारा लोकमतको ऐसा बनाना है जिससे इस पत्रव्यवहारमें दरसायी हुई अर्थात् भी भविष्यकी सरकार आगे जा सके। मैं आशा रखता हूँ कि दक्षिण अफ्रीकाके गोरे जब यह समझेंगे कि हिंदुस्तानसे गिरमिटिए मजदूरोंका आना अब बंद हो चुका है और दक्षिण अफ्रीकामें मरे आनेवालोंसे संबंध रखनेवाले कानून (इमिग्रेशन रेगुलेशन एक्ट)ने स्वतंत्र भारतीयोंका डम देनेमें आना भी लगभग बंद हो गया है और यह भी समझेंगे कि भारतीयोंकी महत्वाकांक्षा यहांके राजकाजमें कोई अधिकार स्थापित करनेकी नहीं है तब वे देखेंगे कि मैंने जो बनाये हैं वे हक हिंदुस्तानियोंको मिलने ही चाहिए और उसीमें न्याय भी है। इस बीच इस मसलेको हल करनेमें पिछले कुछ महीनोंसे सरकारने जो उदार नीति ग्रहण कर रखी है वही उदार नीति, जैसा कि आपने पत्रमें बताया गया है, वर्तमान कानूनोंपर अमल करनेमें बरती गई तो मेरा विश्वास है कि संपूर्ण यूनियनमें

हिंदुस्तानी कौम कुछ शांति भोगते हुए रह सकेंगी और सरकारके लिए हैरानीका कारण नहीं होगा ।

## उपसंहार

इस प्रकार आठ बरसके बाद सत्याग्रहका यह महान संधाम समाप्त हुआ और ऐसा जान पड़ा कि सारे दक्षिण अफ्रीकामें बसनेवाले भारतीयोंको शांति मिली। मैं खेद और हर्ष दोनोंके साथ इंग्लैण्डमें गोखलेसे मिलकर हिंदुस्तान जानेके लिए दक्षिण अफ्रीकासे रवाना हुआ। जिस देशमें मैं पूरे २१ बरस रहा, अगणित कड़वे-मीठे अनुभव प्राप्त किये, जिस देशमें मैं अपने जीवनके कार्य, उद्देश्यके दर्शन कर सका उस देशको छोड़नेमें मुझे बहुत दुःख हुआ और मैं खिन्न हुआ। हर्ष यह सोचकर हुआ कि इतने बरसोंके बाद हिंदुस्तान वापस जाकर मुझे गोखलेकी मातहृती और रहनुमाईमें सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा।

इस युद्धका जो ऐसा सुंदर अंत हुआ उसके साथ दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी आजकी स्थितिकी तुलना करते हुए क्षणभरके लिए दिलमें यह सवाल उठता है कि भारतीयोंने इतने सारे दुःख किस लिए उठाये ? अथवा सत्याग्रहके शस्त्रकी श्रेष्ठता ही कहां सिद्ध हुई ? इसके उत्तरपर यहाँ विचार कर लेना चाहिए। सृष्टिका एक नियम है कि जो वस्तु जिस साधनसे मिलती है उसकी रक्षा उस साधनसे ही होती है। अर्थात् दंडसे मिली हुई वस्तुकी रक्षा दंड ही कर सकता है, सत्यसे प्राप्त वस्तुका सग्नह सत्यके द्वारा ही हो सकता है। इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके भारतीय आज भी सत्याग्रहके हथियारसे काम ले सकें तो अपने आपको सुरक्षित बना सकते हैं। सत्या-



ग्रहमे ऐसी विशेषता तो है ही नहीं कि सत्यसे मिली हुई वस्तु सत्यका त्याग कर देनेपर भी बनाये रखी जा सके। ऐसा परिणाम हो सकता हो तो वह इष्ट भी नहीं समझा जायगा। अतः अगर दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंकी स्थिति आज दुर्बल है तो हमे समझ लेना चाहिए कि इसका कारण सत्याग्रहियोंका अभाव है। यह कथन दक्षिण अफ्रीकाके आजके भारतीयोंके दोषका सूचक नहीं है, बल्कि वहाकी वस्तुस्थिति बताता है। व्यक्ति या समुदाय, जो चीज अपने आपमें नहीं है, वह कहासे लायेगा ? सत्याग्रही सेवक एकके बाद एक इस दुनियासे कूच कर गये। मेरे ब्रिजी काछलिया, नायडू, पारसी रुस्तमजी, इत्यादिके स्वर्गवाससे सत्याग्रहके अनुभवियोंमेसे थोड़े ही बच रहे हैं। जो रह गये हैं वे आज भी जूझ रहे हैं।

अंतमें इन प्रकरणोंको पढ जानेवाले इतना तो समझ ही गये होंगे कि अगर यह संग्राम नहीं किया होता और बहुतेरे भारतीयोंने जो कष्ट सहे वे न सहे गये होते तो आज दक्षिण अफ्रीकामें हिंदुस्तानियोंके कदम ही न रह गये होते। इतना ही नहीं, दक्षिण अफ्रीकामें भारतीयोंकी विजयसे दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशोंके हिंदुस्तानी भी कमोबेश बच गये। कुछ न बच सके तो यह दोष सत्याग्रहका नहीं है, बल्कि इससे साबित हो गया कि उन उपनिवेशोंमें सत्याग्रहका अभाव है और हिंदुस्तानमें उनकी रक्षा करनेकी शक्ति ही नहीं है। सत्याग्रह अमूल्य शस्त्र है, उसमे नैराश्य या हारके लिए अवकाश नहीं, यह बात अगर इस इतिहासमें थोड़े-बहुत अंशमें भी सिद्ध हो सकी हो तो मैं अपने आपको कृतार्थ समझूंगा।

समाप्त

